सावधान! सावधान!!

सुनहरी नाम और रेशमी कपडेकी जिल्दका चाक्यचिक्य देखकर धोका न खावें, क्योंकि सुनहरी नाम छपानेसे नियमसे मुर्गीके अंडेको फोडकर उसमेंका चेप लगाते हैं, तब सोनेका वर्क चिपकता है और रेशमी कपडा विना सरेसके चिपकता नहीं, इसीकारण हमने सोनेरी अक्षर और रेशमी कपडा नहीं लगाया है। अतएव वाहरी सुंदरता देखकर नहिं छूने लायक, अन्य संग्रहोंको न लेकर इस पवित्र वृहज्जिनवाणीसंग्रहपरसे ही पाठ, स्वाध्यायादि किया करें। मंत्री—

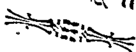
आवेदन।

[illegible] शुरू किया है। [illegible] है। [illegible] हैं। [illegible] है। [illegible] नहीं [illegible] गया है।

धन्यवाद।

[illegible] १०-११ [illegible] पहले [illegible] संवत् १९४२ में [illegible] हुआ था, [illegible] संवत् १९५३ में [illegible] था। [illegible] गया है। [illegible] होगा। [illegible] हुआ है [illegible] लिये [illegible] धन्यवादके पात्र हैं। [illegible] है [illegible] हो कर [illegible] कीजिये।

निवेदक—
पन्नालाल बाकलीवाल महामंत्री—
भारतीय जैनसिद्धान्तप्रकाशिनी संस्था—कलकत्ता।



विषय-सूची।

प्रथम अध्याय प्रातःक्रिया और दर्शन पाठादि संग्रह।

संख्या		पृष्ठ
१।	नमस्कारादि मंत्र	१
२।	सामायिक पाठ भाषा	१
३।	सामायिक करनेकी विधि	७
४।	आलोचना पाठ	११
५।	सुप्रभातस्तोत्रं संस्कृत	१४
६।	प्रभातीसंग्रह	१६
७।	मेरी भावना	१८
८।	दृष्टाष्टकस्तोत्रं संस्कृत	१९
९।	मंदिरजीमें प्रवेश करना आदि	२०
१०।	अद्याष्टकस्तोत्रं संस्कृत	२०
११।	नमस्कार मंत्र दर्शनपाठादि	२१
१२।	दर्शनदशक	२४
१३।	दर्शन स्तुति	२६
१४।	दौलतरामजी कृत स्तुति	२८
१५।	भूधरकृत दर्शनस्तुति	३०
१६।	दर्शनपाठ बुधजनकृत	३०
१७।	ब्रह्मचारी ज्ञानानंदकृत दर्शन	३१
१८।	धर्मदर्शनचालीसा	३२
१९।	गंधोदक लेनेका मंत्र	३६
२०।	आशिका लेनेका दोहा	३६
२१।	शास्त्रजीको नमस्कार करनेके दो कवित्त	३५
संख्या		
२२।	पंच परमेष्ठीकी आरती	
२३।	दीप धूप खेनेका श्लोक मंत्र	

दूसरा अध्याय। अभिषेक पूजादि संग्रह।

संख्या		पृष्ठ
२४।	पंच मंगल रूपचंदजी कृत	३८
२५।	लघुअभिषेकपाठ संस्कृत	४७
२६।	लघुपंचामृताभिषेक भाषा	५१
२७	जलाभिषेक वा प्रक्षालन करनेका पाठ	५१
२८।	विनयपाठ दोहावली	५२
२९।	नित्यनियमपूजा संस्कृत	५७
३०।	देवशास्त्रगुरुकी भाषा पूजा	५८
३१।	बीसतीर्थंकरपूजा भाषा	६८
३२।	विद्यमानबीस तीर्थंकरोंका अर्घ	७२
३३।	अकृत्रिमचैत्यालयोंके अर्घ	७५
३४।	सिद्धपूजा द्रव्याष्टक जयमाला	७५
३५।	सिद्धपूजाका भावाष्टक	७७
३६।	सोलहकारणका अर्घ	८१
३७।	दशलक्षणधर्मका अर्घ	८२
३८।	रत्नत्रयका अर्घ	८२
३९।	पंचपरमेष्ठिजयमाला आरती	८२
४०।	शान्तिपाठस्तुति संस्कृत भाषा	८३
४१।	विसर्जन	८४
४२।	भाषस्तुति पाठ	८६

तीसरा अध्याय।

देवशास्त्रगुरुस्तुतिसंग्रह।

संख्या	पृष्ठ
४३ । नामावली स्तुति	८९
४४ । जिनेंद्रस्तुति विहारीलाल कृत	९०
४५ । दुःखहरणस्तुति वृन्दावन कृत	९१
४६ । जिनेन्द्रस्तुति भूधरकृत	९४
४७ । करुणाष्टक „	९५
४८ । पार्श्वनाथस्तुति „	९५
४९ । महावीर प्रार्थना न्यायालंकार पं० मक्खनलालजी कृत	९७
५० । शारदाष्टक बनारसीदास कृत	९९
५१ । शारदास्तवनप्रभाती ज्ञानार्णवकृत	९९
५२ । शास्त्रभक्ति पन्नालालजी दूनीवाल कृत	९९
५३ । बड़ी साधुवन्दना बनारसी कृत	१०१
५४ । भूधरकृत गुरुस्तुति	१०४
५५ । भूधरकृत दूसरी गुरुस्तुति	१०५
५६ । गुर्वावली वृन्दावनकृत	१०६
५७ । मंगलाष्टक „	११०
५८ । आचार्यवर्य शान्तिसागरस्तुति	११२
५९ । आचार्यवर्य जिनसेन स्तुति	११२
६० । आचार्य शान्तिसागर महाराजकी स्तुति दयालाल कृत	११२

चौथा अध्याय।

स्तोत्रसंग्रह संस्कृत और भाषा

संख्या	पृष्ठ
६१ । जिनसहस्रनामस्तोत्र	११५
६२ । आदिनाथस्तोत्र (भक्तामरस्तोत्र) संस्कृत मूल	१२७
६३ । भक्तामरभाषा हेमराजकृत	१३२
६४ । कल्याणमंदिरस्तोत्र संस्कृत	१३८
६५ । कल्याणमंदिरस्तोत्र भाषा	१४३
६६ । एकीभावस्तोत्र संस्कृत	१४८
६७ । एकीभावस्तोत्र भाषा	१५१
६८ । विषापहारस्तोत्र संस्कृत	१५६
६९ । विषापहार भाषा	१५९
७० । जिनचतुर्विंशतिका संस्कृत	१६५
७१ । भूपालचतुर्विंशति भाषा	१७०
७२ । महावीराष्टकस्तोत्र संस्कृत	१७५
७३ । मंगलाष्टक संस्कृत	१७६
७४ । अकलंकस्तोत्र „	१७८
७५ । पार्श्वनाथस्तोत्र द्यानतकृत	१८०
७६ । पार्श्वनाथस्तोत्र भूधरकृत	१८१
७७ । अहिछितिपार्श्वनाथ स्तोत्र	१८३
७८ । मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र)	१८७
७९ । भावना द्वात्रिंशतिका	२००

पंचम अध्याय

भाषा पर्वपूजा-संग्रह

संख्या	पृष्ठ
८० देवपूजा द्यानत कृत	०३
८१ । सरस्वती पूजा द्यानत कृत	२०६
८२ । गुरुपूजा हैमराज कृत	२०९
८३ । बीसविद्यमान तीर्थंकर पूजा भाषा कविवर द्यानतकृत	२११
८४ । अष्टाह्निक पर्वपूजा	२१५

संख्या (ग)

८५ । जिनपूजा द्यानतकृत — पृष्ठ २२०

संख्या

८६ । समुच्चयचौबीसीपूजा वृन्दावन २२४
८७ । श्रीआदिनाथजीकी पूजा ,, २२६
८८ । श्रीचन्द्रप्रभ पूजा ,, २३०
८९ । श्रीशांतिनाथ जिनपूजा ,, २३४
९० । निर्वाणक्षेत्र पूजा ,, २३८
९१ । सप्तर्षि पूजा २४१
९२ । पंचमेरु पूजा द्यानतकृत २४४
९३ । श्रीनंदीश्वरद्वीपकी पूजा ,, २४७
९४ । सोलहकारण पूजा ,, २४९
९५ । दशलक्षणधर्म पूजा ,, २५२
९६ । संस्कृत स्वयंभू स्तोत्र ,, २५७
९७ । स्वयंभू स्तोत्र भाषा २६०
९८ । रत्नत्रयपूजा द्यानतकृत २६६
९९ । दीपावली श्रीवर्द्धमान पूजा २६८
१०० । सिद्धपूजाष्टक (भाषा) २७२
१०१ । सिद्धपूजादि भाषा २७४
१०२ । [illegible] २७८
१०३ । [illegible] पूजा ([illegible]) २८३
१०४ । समुच्चय लघु पूजा २८८
१०५ । [illegible] २९१
१०६ । [illegible] पूजा २९९
१०७ । [illegible] पूजा ३०१
१०८ । [illegible] पूजा ३०६
१०९ । [illegible] पूजा ३०८

छठा अध्याय-आरती संग्रह।

[illegible]

१११ । आरती मुनिराजकी
११२ । निश्चय आरती
११३ । [illegible] आरती
११४ । आरती श्रीवर्द्धमानकी
११५ । आरती जिनवर भगवानकी
११६ । दोय धूप घटानेके मंत्रादि

सातवां अध्याय बीनतीसंग्रह।

११७ । बीनती ३१[illegible]
११८ । बीनती ३१८
११९ । बीनती ३१९
१२० । अहो जगतगुरु देव ३२०
१२१ । प्रभु पतितपावन मैं अपावन ३२१
१२२ । हो संसारबंधु [illegible]
धन्य
१२३ । [illegible] ३२२
१२४ [illegible] ३२६
१२५ । [illegible] ३२८
३२९

आठवां अध्याय-भजनसंग्रह।

१२६ । [illegible]
१२७ । [illegible] ३३३
१२८ । [illegible] ३३५
१२९ [illegible] ३३६
[illegible]
१३० [illegible] ३३८
१३१ [illegible] ३४१
१३२ [illegible] ३४३
३४८

संख्या	पृष्ठ
१३३ । बारह भावना मंगतरायकृत	३४६
१३४ । भावनाद्वात्रिंशतिका भाषा	३५१

नवमा अध्याय-परमारथ जकड़ी संग्रह ।

१३५ । जकड़ी रूपचंदजी कृत (१)	३५५
१३६ । जकड़ी रूपचंदजी कृत (२)	३५६
१३७ । जकड़ी दौलतरामजी कृत (१)	३५८
१३८ । जकड़ी दौलतरामजीकृत (२)	३५९
१३९ । जकड़ी भूधरदासजी कृत	३६२
१४० । जकड़ी रामकृष्ण कृत	३६४
१४१ । जकड़ी जिनदास कृत	३६६

दशवां अध्याय-जैनव्रत कथा संग्रह ।

१४२ । पुष्पांजलिव्रतकथा	३६८
१४३ । दशलक्षणव्रतकथा	३७२
१४४ । सुगंधदशमीव्रतकथा	३७६
१४५ । अनंतव्रतकथा	३७९
१४६ । रत्नत्रयव्रतकथा	३८२
१४७ । मुक्तावलीव्रतकथा	३८५
१४८ । रविव्रतकथा	३८८
१४९ । नंदीश्वरव्रतकथा	३९१

ग्यारहवां अध्याय-जैनकथा संग्रह ।

१५० । [illegible] व्रतकथा	३९६

संख्या	पृष्ठ
१५१ । अठारहनातेकी कथा	३९८

बारहवां अध्याय उपदेश संग्रह ।

१५२ । तेरह काठिया चौर महाकवि बनारसीदासकृत	४०२
१५३ । मोक्षपेडी "	४०४
१५४ ज्ञानपचीसी "	४०८
१५५ । धर्मपचीसी द्यानतराय कृत	४०९
१५६ । अध्यात्मपंचाशिका "	४१२
१५७ । सुमावतीसी भैयाजी कृत	४१५
१५८ । ममविलासके चौबोले स० पं० जिनेश्वरदासजी कृत	४१८
१५९ । उपदेशी बारहखड़ी कविवर सूरतकृत	४२२

तेरहवां अध्याय फुटकर संग्रह ।

१६० । छहढाला दौलतरामजी कृत	४३१
१६१ । समाधिमरण भाषा (बड़ी)	४४३
१६२ । बारहमासा नेमिराजुलका [illegible]	४५२
१६३ । बारहमासा सीता सतीका	४५७
१६४ । चौबीसदंडक दौलतरामजीकृत	४६६
१६५ । [illegible] विधि	४७१
१६६ । सूतक विधि	४७२



बृहज्जिनवाणीसंग्रह।

प्रथम अध्याय।

प्रातःक्रिया और दर्शनपाठादि संग्रह।

प्रत्येक जैनबंधुको सुबह उठ कर नीचे लिखे मंत्र और पाठ बोलने चाहिये और सातवें पृष्ठमें बतलाई गई विधिके अनुसार सामायिक करना चाहिये।

१। नमस्कारादि मंत्र।

गाथा।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥
अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः।

स्वर्गीय पं० महाचंद्रकृत

२ सामायिक पाठ।

१ प्रतिक्रमण कर्म।

काल अनंत भ्रम्यो जगमें सहिये दुख भारी।
जन्ममरण नित किये पापको है अधिकारी॥
कोटि भवांतरमांहि मिलन दुर्लभ सामायिक।
धन्य आज मैं भयो योग मिलियो सुखदायक ॥ १ ॥
हे सर्वज्ञ जिनेश! किये जे पाप जु मैं अब।
ते सब मन-वच-काय-योगकी गुप्ति बिना लभ॥
आप समीप हजूर मांहि मैं खडो खडो सब।

दोष कहूं सो सुनो करो नठ दुःख देहिं जब ॥ २ ॥
क्रोधमानमदलोभमोहमायावशि प्रानी ।
दुःखसहित जे किये दया तिनकी नहिं आनी ॥
विना प्रयोजन एकेन्द्रिय वितिचउपंचेंद्रिय ।
आप प्रसादहि मिटै दोष जो लग्यो मोहि जिय ॥ ३ ॥
आपसमें इकठौर थापि करि जे दुख दीने ।
पेलि दिये पगतलें दाबि करि प्राण हरीने ॥
आप जगतके जीव जिते तिन सबके नायक ।
अरज करूं मैं सुनो दोष मेटो दुखदायक ॥ ४ ॥
अंजन आदिक चोर महा घनघोर पापमय ।
तिनके जे अपराध भये ते क्षमा क्षमा किय ॥
मेरे जे अब दोष भये ते क्षमहु दयानिधि ।
यह पणिकोणो क्रिया आदि षटकर्ममांहिं ॥ ५ ॥

२ प्रत्याख्यान द्वितीय कर्म।

इसके आदि वा अन्तमें आलोचनापाठ बोलकर फिर
तृतीय सामायिक कर्मका पाठ करना चाहिये।

जो प्रमादवशि होय विराधे जीव घनेरे ।
तिनको जो अपराध भयो मेरे अघ ढेरे ॥
सो सब झूठो होउ जगतपतिके परसादै ।
जा प्रसादतैं मिलै सर्व सुख, दुःख न लाधै ॥ ६ ॥
मैं पापी निर्लज्ज दयाकरि हीन महाशठ ।
किये पाप अघढेर पापमति होय चित दुठ ॥
निंदूं हूं मैं बारबार निज जियको गरहूं ।
सबविधि धर्म उपाय पाय फिर पापहि करहूं ॥ ७ ॥

दुर्लभ है नरजन्म तथा श्रावककुल भारी।
सतसंगतिसंयोग धर्मजिनश्रद्धा, धारी॥
जिनवचनामृतधारसमा वर्तें जिनवानी।
तो हू जीव संघारे धिक धिक धिक हम जानी॥ ८॥
इंद्रियलंपट होय खोय निज ज्ञान जमा सब।
अज्ञानी जिमि करें तिसी विधि हिंसक व्है अब॥
गमनागमन करंतो जीव विराधे भोले।
ते सब दोष किये निंदू अब मन वच तोले॥ ९॥
आलोचनविधिथकी दोष लागे जु घनेरे।
ते सब दोष विनाश होउ तुमतें जिन! मेरे॥
वारवार इस भांति मोह मद दोष कुटिलता।
ईर्षादिकतें भय निंदिये जे भयभीता॥ १०॥

३ तृतीय सामायिक भावकर्म।

सब जीवनमें मेरे समताभाव जग्यो है।
सब जिय मोसम समता राखो भाव लग्यो है॥
आर्त्त रौद्र द्वय ध्यान छांडि करिहूं सामायिक।
संयम मो कब शुद्ध होय यह भावबधायक॥ ११॥
पृथिवी जल अरु अग्नि वायु चउकाय वनस्पत।
पंचहिं थावरमांहि तथा त्रस जीव बसें जित॥
बेइंद्रिय तिय चउ पंचेन्द्रियमांहि जीव सब।
तिनतें छिमा कराऊं मुझपर छिमा करो अब॥ १२॥
इन अवसरमें मेरे सब सम कंचन अरु तृण॥
महल मसान समान शत्रु अरु मित्रहिं सम गण॥
जामन मरण समान जानि हम समता कीनी।

सामायिकका काल जिते यह भाव नवीनी ॥ १३ ॥
मेरो है इक आतम तामें ममत जु कीनो।
और सबै मम भिन्न जानि समतारस भीनो ॥
मात पिता सुत बंधु मित्र तिय आदि सबै यह।
मोतें न्यारे जानि जथारथ रूप कर्यो गह ॥ १४ ॥
मैं अनादि जगजालमांहिं फंसि रूप न जाण्यो।
एकेंद्रिय दे आदि जंतुको प्राण हराण्यो ॥
ते सब जीवसमूह सुनो मेरी यह अरजी।
भवभवको अपराध क्षमा कीज्यो करि मरजी ॥ १५ ॥

४ चतुर्थ स्तवनकर्म।

नमों रिषभ जिनदेव अजित जिन जीति कर्मको।
संभव भवदुखहरण करण अभिनंद शर्मको ॥
सुमति सुमतिदातार तार भवसिंधु पार कर।
पद्मप्रभ पद्माभ भानि भवभीति प्रीति धर ॥ १६ ॥
श्रीसुपार्श्व कृतपाश नाश भव जास शुद्धकर।
श्रीचन्द्रप्रभ चंद्रकांतिसम देहकांतिधर ॥
पुष्पदंत दमि दोष कोश भविपोष रोषहर।
शीतल शीतलकरण हरण भवताप दोषहर ॥ १७ ॥
श्रेयरूप जिनश्रेय ध्येय नित सेय भव्यजन।
वासुपूज्य शतपूज्य वासवादिक भवभयहन ॥
विमल विमलमति देन अंतगत है अनंतजिन।
धर्मशर्मशिवकरण शांतिजिन शांतिविधायिन ॥ १८ ॥
कुंथु कुंथुमुख जीवपाल अरनाथ जालहर।

मल्लि मल्लसम मोहमल्लमारन प्रचार धर ॥
मुनिसुव्रत व्रतकरण नमत सुरसंघहि नमि जिन ।
नमिनाथ जिन नेमि धर्मरथमाहिं ज्ञानघन ॥ १९ ॥
पार्श्वनाथ जिन पार्श्वउपलसम मोक्षरमापति ।
वर्द्धमान जिन नमूं वमूं भवदुःख कर्मकृत ॥
या विधि मैं जिनसंघरूप चउवीस संख्यधर ।
स्तवूं नमूं हूं वार वार वंदूं शिवसुखकर ॥ २० ॥

५ पंचम वंदनाकर्म ।

वंदूं मैं जिनवीर धीर महावीर सु सनमति ।
वर्द्धमान अतिवीर वंदि हूं मनवचतनकृत ॥
त्रिशलातनुज महेश धीश विद्यापति वंदूं ।
वंदों नितप्रति कनकरूप तनु पापनिकंदूं ॥ २१ ॥
सिद्धारथ नृपनंदद्वंदुख दोष मिटावन ।
दुरितदवानल ज्वलितज्वाल जगजीव उधारन ॥
कुंडलपुर करि जन्म जगतजिय आनंदकारन ।
वर्ष बहत्तरि आयु पाय सबही दुखटारन ॥ २२ ॥
सप्तहस्त तनु तुंग भंगकृतजन्ममरणभय ।
बालब्रह्ममय ज्ञेय हेय आदेय ज्ञानमय ॥
दे उपदेश उधारि तारि भवसिंधु जीवघन ।
आप बसे शिवमाहिं ताहि वंदों मन वच तन ॥ २३ ॥
जाके वंदनथकी दोष दुखदूरिहि जावै ।
जाके वन्दनथकी मुक्तितिय सन्मुख आवै ॥
जाके वंदनथकी वन्द्य होवै सुरगनके ।

ऐसे वीर जिनेश वन्दि हूं क्रमयुग तिनके ॥ २४ ॥

सामायिक षट्कर्म माहिं वन्दन यह पंचम।

वन्दों वीरजिनेंद्र इन्द्रशतवन्द्य वन्द्य मम ॥

जन्ममरणभय हरो करो अघशांति शांतिमय।

मैं अघकोश सुपोष दोषको दोष विनाशय ॥ २५ ॥

६ छठा कायोत्सर्ग कर्म।

कायोत्सर्गविधान करूं अंतिम सुखदाई।

कायत्यजनमय होय काय सबको दुखदाई ॥

पूरब दक्षिण नमूं दिशा पश्चिम उत्तर में।

जिनगृहवंदन करूं हरूं भवपापतिमिर मैं ॥ २६ ॥

शिरोनती मैं करूं नमूं मस्तक कर धरिकैं।

आवर्तादिक क्रिया करूं मन वच मद हरिकैं ॥

तीनलोक जिनभवनमाहिं जिन हैं जु अकृत्रिम।

कृत्रिम हैं द्वय अर्द्धद्वीप माहीं वन्दों जिमि ॥ २७ ॥

आठ कोडि परि छप्पन लाख जु सहस सत्यानूं।

च्यारि शतक परि असी एक जिनमन्दिर जानूं ॥

व्यंतर ज्योतिषिमाहिं संख्यरहित जिनमंदिर।

ते सब वंदन करूं हरहु मम पाप संघकर ॥ २८ ॥

सामायिकसम नाहिं और कोउ वैर मिटायक।

सामायिकसम नाहिं और कोउ मैत्री-दायक ॥

श्रावक अणुव्रत आदि अंत सप्तम गुणथानक।

यह आवश्यक किये होय निश्चय दुखहानक ॥ २९ ॥

जे भवि आतमकाज-करण उद्यमके धारी।

ते सब काज विहाय करो सामायिक सारी ॥
राग दोष मद मोह क्रोध लोभादिक जे सब ।
बुध 'महाचन्द्र' विलाय जाय तातैं कीज्यो अब ॥३

= इति सामायिक पाठ समाप्त =

३ सामायिक करनेकी विधि।

गृहस्थके नित्यकर्म छह हैं। देवपूजा १, गुरुकी भक्ति करना २, स्वाध्याय करना ३, संयम पालना ४, तप करना ५, और दान करना ६। सामायिक करना इन षटकर्मोंमेंसे तपके अंतर्गत है। इसलिये प्रत्येक गृहस्थको प्रतिदिन सवेरे ही एकवार दूसरी प्रतिमाके धारीको सवेरे साम दो वार और तीसरी सामायिकप्रतिमाधारीको दुपहर रातमें कमसेकम तीन वार सामायिक करना चाहिये। उपवास वा उपवाससे पूर्वके दिन इनसे जियादा और जियादा समय तक करना चाहिये।

सामायिकका काल जघन्य दो घड़ी अर्थात् एक मुहूर्तका (४८ मिनिटका) है, मध्यमकाल चार घड़ी वा दो मुहूर्तका और उत्कृष्ट काल ६ घड़ीका है और जो प्रतिमाधारी नहीं हैं अव्रती हैं, उनकेलिये ४८ मिनिटका नियम नहीं है वे अपने अवकाशके अनुसार कम जियादा भी कर सकते हैं।

सामायिक करनेका सबसे उत्तमकाल सवेरेका है सो ...रे चार बजे वा सूर्योदयसे पहले शय्यासे उठकर ही करना ...हिये। गृहस्थ यदि स्त्रीसहवासादिसे अपवित्र हो तो हाथ ...धोकर कपड़ा बदल कर घरके किसी एकांत स्थानमें ...ां कि—डांस मच्छर आदिकी कोई भी

अथवा जिनमंदिरजी या धर्मशालामें उत्तर या पूर्वमुख कुशासन पर बैठकर सामायिक धारण करना चाहिये। जिनमंदिरजीमें उत्तर पूर्वमुख देखकर बैठनेका कोई नियम नहीं है क्योंकि मंदिरजी नवदेवोंमेंसे एक देव हैं। देवके सन्मुख बैठकर सामायिक करना सर्वोत्तम है। इसलिये मंदिरजीमें जहां कुछ विक्षेपका कारण न हो, उस जगह चाहे जिधरको मुँह करके बैठ सकते हैं।

सामायिक करनेवाला प्रथम ही दर्भासन या चटाई पर सीधे खड़ा होकर पांवके अग्रभाग चार अंगुलके अंतरसे रख, दोनों हाथ लटका देवे, दृष्टि नाशाके अग्रभागपर रख कर खड़ा हो अपने मनमें प्रतिज्ञा करे कि 'मैं इतने समय तक सामायिक करूंगा सो जब तक सामायिककी क्रिया करूं तबतक मुझे इस स्थानके सिवाय अन्य स्थान और समस्त प्रकारके परिग्रहका सर्वथा त्याग है।' तत्पश्चात् नव अथवा तीन बार नमस्कार मंत्रका उच्चारण करके साष्टांग नमस्कार करे। तत्पश्चात् खडे २ ही अथवा बैठकर तीन बार नमस्कार मंत्र पढकर हाथ जोडकर जुडे हुये हाथोंसे तीन आवर्त (चक्र) देकर जुडे हुए हाथों पर मस्तक रखकर एकबार शिरोनति करे। इसका अर्थ यह है कि मैं मनवचनकायसे सन्मुखदिशाकी तरफ जितने कृत्रिम अकृत्रिम चैत्यालय (जिनमंदिर) सिद्धक्षेत्र हैं, उन सबको नमस्कार करता हूं। इसी प्रकार तीन आवर्त और एक शिरोनति दहने हाथकी दिशामें करे, फिर पीठ पीछेकी दिशामें

और फिर वायें हाथकी दिशामें करे। यदि मंदिरजीमें बैठकर सामायिक करनेका काम पडे और चारों तरफ अन्य भाई सामायिक स्वाध्यायादिक करते हों और चारों तरफ फिर फिर कर शिरोनति करनेमें शास्त्रजी वगैरहके पीठ लगती हो तो जिस दिशामें मुख करके बैठे हों, उसी दिशामें ही चारवार आवर्त और चार शिरोनति कर लें परंतु मनमें यही भावना रक्खे कि इस पूर्वदिशाके व दक्षणदिशाके या अमुकदिशाके चैत्यालय आदिको नमस्कार करता हूं अथवा अपने हाथों को पहिले आवर्तके वाद एकवार दहने हाथकी तरफ झुका कर फिर तीसरी वार पीठ पीछे नमस्कार करते समय माथे पर हाथ रख कर और चौथी वार वांयी तरफ हाथ झुका कर जुडे हुये हाथोंपर मस्तक रख कर शिरोनति कर लें।

इसप्रकार चारों तरफ चार वारमें वारह आवर्त और चार शिरोनति करनेके पश्चात् पहले जिस तरफ मुँह करके वैठे हो उसी तरफ पद्मासन वा अर्द्धपद्मासन वैठकर शांतचित्त होकर सामायिकका पाठ संस्कृत वा भाषा धीरे धीरे पढै, जवानी याद न हो तो पुस्तक सामने रखकर मनमें उसके अर्थको समझता हुवा पढे।

सामायिक पाठमें प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, सामायिक, स्तवन, वंदन और कायोत्सर्ग ये छह कर्म हैं। प्रतिक्रमणमें भगवानके सन्मुख अपने किये हुये पापकार्योंको स्मरण करके आलोचना (प्रार्थना) करना है। प्रत्याख्यान कर्ममें ये सब दोष मैंने प्रमादके वशीभूत होकर किये हैं सो मैं आपके

पास अपनी निंदा करके प्रार्थना करता हूं कि मेरे ये दोष मिथ्या होवो। सामायिक कर्ममें समस्त जीवोंमें और उत्तम मध्यम समस्त पदार्थोंमें रागद्वेष छोडकर समस्त जीवोंसे अपने किये हुये अपराधोंकी क्षमा मांग कर समता भाव धरनेकी प्रतिज्ञा है। चौथे स्तवन कर्ममें चोवीसों तीर्थंकर भगवानको नमस्कार पूर्वक स्तुति (गुणप्रशंसा) करना है। पांचवें वंदनाकर्ममें अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीरस्वामी को प्रशंसापूर्वक वारंवार नमस्कार करना है। सो पाठ करते समय इन पांचों अध्यायोंकी पूर्तिमें नमस्कार करना चाहिये और छठ्ठा कायोत्सर्ग कर्म है सो पहिलेकी तरह खडे होकर शरीरसे ममता छोडकर, चारों दिशाओंमें तीन तीन आवर्त और एक एक शिरोनति करे। इसप्रकार आदि अंतमें चार आवर्त और चार शिरोनति करनेसे सबसे थोडे समयकी सामायिक करना तो पूरा हो जाता है परंतु इतने पाठ पढने में बहुत थोडा समय ही लगा इसलिये अधिक काल शांत-परिणाम (समताभाव) रखनेकेलिये इन समतारूप भावोंमें ही एक वा दो नमस्कार मंत्रकी माला फेर लेना चाहिये तथा वारह भावनाका पाठ अथवा अन्यान्य पाठ भी पढ लेना चाहिये। इसके सिवाय सामायिक धारण करनेसे पहिले आलोचनापाठ भी जो प्रतिक्रमण कर्म ही है, पढ लेना चाहिये। नमस्कारमंत्रकी माला फेरनेमें समय बहुत लगता हो और अन्यान्य पाठ पढने हों तो ३५ अक्षरी नमस्कार मंत्रकी जगह, 'अरहंत सिद्ध' ऐसे छह अक्षरोंके मंत्रकी

अथवा 'असियाउसा' इसप्रकार पांच अक्षरोंके मंत्रकी, तथा 'अरहंत' ऐसे चार अक्षर 'सिद्ध सिद्ध' ऐसे दो अक्षर अथवा 'ओम्' ऐसे एक अक्षरकी माला जप लेना चाहिये। जब कि सामायिक पाठ पढनेके बाद माला फेरना तथा बारह भावना आदि और और पाठ पढना हो तो इन सबके बाद अंतका कायोत्सर्ग और आवर्तादि क्रिया करकें सामायिक पूर्ण करे।

इसप्रकार नित्य एक बार वा दो बार या तीन बार आलोचनापाठ सहित सामायिक करनेसे परिणामोंमें बडी शांति होती है, प्रमाद छूटता जाता है जो कि महा सुखका कारण है।

४ अथ आलोचना पाठ।

यह आलोचना पाठ सामायिक कालमें षटकर्म प्रतिक्रमण कर्म है उस कर्मके आदि वा अन्तमें बोलना चाहिये।

दोहा—वंदों पांचों परम गुरु, चौवीसों जिनराज।
करूं शुद्ध आलोचना, शुद्धिकरनके काज ॥ १ ॥

सखी छंद चौदहमात्रा।

सुनिये जिन अरज हमारी। हम दोष किये अति भारी॥
तिनकी अब निवृत्ति काजें। तुम सरन लही जिनराजें ॥२॥
इक वे ते चउ इंद्री वा। मनरहित सहित जे जीवा॥
तिनकी नहिं करुणा धारी। निरदइ ह्वै घात विचारी॥ ३॥
समरंभ समारंभ आरंभ। मनवचतन कीने प्रारंभ॥
कृत कारित मोदन करिकैं। क्रोधादि चतुष्टय धरिकैं॥ ४॥
शत आठ जु इम भेदननें। अघ कीने परछेदननें॥

तिनकी कहुं कोलौं कहानी । तुम जानतु केवलज्ञानी ॥ ५ ॥
विपरीत एकांत विनयके । संशय अज्ञान कुनयके ॥
वश होय घोर अघ कीने । वचतैं नहिं जात कहीने ॥ ६ ॥
कुगुरुनकी सेवा कीनी । केवल अदयाकरि भीनी ॥
याविधि मिथ्यात भ्रमायो । चहुंगति मधि दोप उपायो ॥७॥
हिंसा पुनि झूठ जु चोरी । परवनितासौं दृगजोरी ॥
आरंभपरिग्रहभीनो । पनपाप जु या विधि कीनो ॥ ८ ॥
सपरस रसना घ्राननको । चखु कान विपयसेवनको ॥
वहु करम किये मन मानी । कछु न्याय अन्याय न जानी ॥९॥
फल पंच उदंवर खाये । मधु मांस मद्य चित चाहे ॥
नहिं अष्ट मूलगुणधारी । विसनन सेये दुखकारी ॥ १० ॥
दुईवीस अभख जिन गाये । सो भी निशिदिन भुंजाये ॥
कछु भेदाभेद न पायो । ज्यों त्यों करि उदर भरायो ॥ ११ ॥
अनंतान जु वंधी जानो । प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो ॥
संज्वलन चौकरी गुनिये । सव भेद जु पोडश मुनिये ॥१२॥
परिहास अरति रति शोग । भय ग्लानि तिवेदसंयोग ॥
पनवीस जु भेद भये इम । इनके वश पाप किये हम ॥ १३ ॥
निद्रावश शयन कराई । सुपनेमधि दोप लगाई ॥
फिर जागि विपयवन धायो । नानाविधि विपफल खायो ॥१४॥
कियेऽहार निहार विहारा । इनमें नहिं जतन विचारा ॥
विन देखी धरी उठाई । विनशोधी भोजन खाई ॥ १५ ॥
तव ही परमाद मनायो । वहुविध विकलप उपजायो ॥
कछु सुधिवुधि नाहिं रही है । मिथ्यामति छाय गई है ॥ १६ ॥

मरजादा तुम ढिंग लीनी । ताहूमें दोष जु कीनी ॥
भिन भिन अब कैसें कहिये । तुम ज्ञानविषै सब पइये ॥ १७॥
हा हा ! मैं दुठ अपराधी । त्रसजीवनराशि विराधी ॥
थावरकी जतन न कीनी । उरमें करुना नहिं लीनी ॥ १८ ॥
पृथिवी बहु खोद कराई । महलादिक जागां चिनाई ।
पुन विन गाल्यो जल ढोल्यो । पंखातैं पवन विलोल्यो ॥१९॥
हा ! हा ! मैं अदयाचारी । बहु हरितकाय जु विदारी ॥
तामधि जीवनके खंदा । हम खाये धरि आनंदा ॥ २० ॥
हा ! हा ! मैं परमाद वसाई । विन देखे अगनि जलाई ॥
तामधि जे जीव जु आये । ते हू परलोक सिधाये ॥ २१ ॥
बींध्यो अन राति पिसायो । ईंधन विन सोधि जलायो ॥
झाडू ले जागां बुहारी । चींटी आदिक जीव विदारी ॥ २२ ॥
जल छानि जिवानी कीनी । सो हू पुनि डारि जु दीनी ॥
नहिं जलथानक पहुँचाई । किरिया विन पाप उपाई ॥ २३ ॥
जल मल मोरिन गिरवायो । कृमिकुल बहु घात करायो ॥
नदियनबिच चीर धुवाये । कोसनके जीव मराये ॥ २४ ॥
अन्नादिक शोध कराई । ता में जु जीव निसराई ॥
तिनका नहिं जतन कराया । गरियालैं धूप डराया ॥ २५ ॥
पुनि द्रव्य कमावन काजे । बहु आरंभ हिंसा साजे ॥
कीये तिसनावश भारी । करुना नहिं रंच विचारी ॥ २६ ॥
इत्यादिक पाप अनंता । हम कीने श्रीभगवंता ॥
संतति चिरकाल उपाई । वानीतैं कहिये न जाई ॥ २७ ॥
ताको जु उदय अब आयो । नानाविधि मोहि सतायो ॥

फल भुंजत जिय दुख पावै। वचतें कैसें करि गावै ॥ २८ ॥
तुम जानत केवलज्ञानी। दुख दूर करो शिवथानी ॥
हम तो तुम शरन लही है। जिन तारन विरद सही है ॥ २९ ॥
जो गांवपतो इक होवै। सो भी दुखिया दुख खोवै ॥
तुम तीन भुवनके स्वामी। दुख मेटो अंतरजामी ॥ ३० ॥
द्रोपदीको चीर बढायो। सीताप्रति कमल रचायो ॥
अंजनसे किये अकामी। दुख मेट्यो अंतरजामी ॥ ३१ ॥
मेरे अवगुन न चितारो। प्रभु अपनो विरद विचारो ॥
सब दोपरहित करि स्वामी। दुख मेटहु अंतरजामी ॥३२॥
इंद्रादिक पदवी न चाहूं। विपयनिमें नाहिं लुभाऊं ॥
रागादिक दोप हरीजे। परमातम निजपद दीजे ॥ ३३ ॥

दोहा।

दोपरहित जिनदेवजी, निजपद दीज्यो मोहि।
सब जीवनके सुख बढ़ै, आँनद मंगल होय ॥ ३४ ॥
अनुभवमाणिक पारखी, जोंहरी आप जिनंद।
यही वर मोहि दीजिय, चरन सरन आनंद ॥ ३५ ॥

इति आलोचना पाठ समाप्त।

५। सुप्रभातस्तोत्रम्।

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे यद्दीक्षाग्रहणोत्सवे यदखिलज्ञानप्रकाशोत्सवे। यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः पूजाद्भुतं तद्भवैः संगीतस्तुतिमंगलैः प्रसरतां मे सुप्रभातोत्सवः ॥१॥ श्रीमन्नतामरकिरीटमणिप्रभाभिरालीढपादयुग ! दुर्धरकर्मदूर। श्रीनाभिनन्दन ! जिनाजित शंभवाख्य ! त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातं ॥ २ ॥ छत्रत्रयप्रचलचामर-

वीज्यमानदेवाभिनन्दनमुने सुमते जिनेन्द्र ! पद्मप्रभार
द्युतिभासुरांग त्व० ॥ ३ ॥ अर्हन् सुपार्श्व कदलीदलव
प्रालेयतारगिरिमौक्तिकवर्णगौर । चन्द्रप्रभ स्फटिकपाण्डु
दंत ! त्व० ॥ ४ ॥ संतप्तकाञ्चनरुचे जिनशीतलाख्य
न्विनष्टदुरिताष्टकलंकपंक । बंधूकबंधुररुचे जिन वासु
त्व० ॥ ५ ॥ उदण्डदर्पकरिपो विमलामलांग स्थेमन्ननंत
दनंतसुखाम्बुराशे । दुष्कर्मकल्मषविवर्जित. धर्मनाथ त्व०
देवामरीकुसुमसंनिभ शांतिनाथ कुन्थो दयागुणविभूषणभू
तांग । देवाधिदेव भगवन्नरतीर्थनाथ त्व० ॥ ७ ॥ यन्मोह
मल्लमदभञ्जनमल्लिनाथ क्षेमंकरोवितथशासनसुव्रताख्य । यत्स-
म्पदा प्रशमितो नमिनामधेय त्व० ॥ ८ ॥ तापिच्छगुच्छरुचि-
रोज्ज्वल नेमिनाथ घोरोपसर्गविजयिन् जिन पार्श्वनाथ । स्या-
द्वाद सूक्तिमणिदर्पणवर्द्धमान त्व० ॥ ९ ॥ प्रालेयनीलहरिता-
रुणपीतभासं यन्मूर्तिमव्ययसुखावसथं मुनीन्द्राः । ध्यायन्ति
सप्ततिशतं जिनवल्लभानां त्व० ॥ १० ॥ सुप्रभातं सुनक्षत्रं मांग-
ल्यं परिकीर्तितम् । चतुर्विंशतितीर्थानां सुप्रभातं दिने दिने
॥ ११ ॥ सुप्रभातं सुनक्षत्रं श्रेयः प्रत्यभिनन्दितम् । देवता
ऋषयः सिद्धाः सुप्रभातं दिने दिने ॥ १२ ॥ सुप्रभातं तवै-
कस्य वृषभस्य महात्मनः । येन प्रवर्तितं तीर्थं भव्यसत्वसुखा-
वहम् ॥ १३ ॥ सुप्रभातं जिनेंद्राणां ज्ञानोन्मीलितचक्षुषाम् ।
अज्ञानतिमिरान्धानां नित्यमस्तमितो रविः ॥ १४ ॥ सुप्रभा-
तं सुनक्षत्रं सुकल्याणं सुमंगलम् । त्रैलोक्यहितकर्तॄणां जिना-
मेव शासनम् ॥ १५ ॥

६ । प्रभाती संग्रह ।

राग रामकली ।

ऋपभदेव ऋपिदेवसहाई । अजित अजितरिपु संभव संभव, अभिनंदन नंदन लवलाई ॥ ऋपभदेव ॥ १ ॥ सुमति सुमति भवि पदम पदम अलि, देत सुपास सुपास भलाई । चित चकोर चंदा चंदप्रभ पुहुपदंत पुहुपनि–भजि भाई ॥ऋपभ०॥ शीतल शीतल जडता नाशै, श्रेयान् श्रेयान् जोति जगाई । वासुपूज्य वासवपदपूजे, विमल विमल कीरति जगछाई ॥ ऋपभ० ॥३ ॥ गुण अनंत अघ अंत अनंत है, धरम धरम वरसा वरसाई । शांति शांत कुंथ्वादि जंतुपर, कुंथुनाथ करुणा करवाई ॥ ऋपभ० ॥ ४ ॥ अरह अरहविधि मल्लि मल्लवर, मुनिसुव्रत मुनिसुव्रतदाई । नमि नमि सुरनर, नेमि-धरम रथ, नेमि प्रभू काटें भवकाई ॥ ऋपभ० ॥ ५ ॥ पास पास छेदी चहुं गतिकी, महावीर महावीर वड़ाई । द्यानत परमानंद पदकारन, चौवीसौं नामारथ गाई ॥ ऋपभ० ॥६॥

राग भैरों ।

उठो रे सुज्ञानी जीव, जिनगुन गावो रे ॥ उठो रे० ॥ टेक ॥ निसि तो नसाय गई, भानुको उद्योत भयो, ध्यानको लगावो प्यारे, नींदको भगावो रे । उठो रे ॥ १ ॥ भववन चौरासी बीचि, भ्रमनो फिर न नीच, मोहजाल फंद पर्यो, जन्म मृत्यु पावो रे ॥ उठो रे० ॥ २ ॥ आरज पृथ्वीमें आय, उत्तम नर जन्म पाय, श्रावक कुलको लहाय, मुक्ति क्यों न जावो रे ॥ उठो रे० ॥ ३ ॥ विपयनि राचि राचि, वहुविधि पाप सांचि,

नरकनि जाय क्यों, अनेक दुःख पावोरे ॥ उठोरे० ॥ ४ ॥ परको मिलाप त्याग आतमके जाप लाग, सुबुधि बतावै गुरु, ज्ञान क्यों न लावोरे ॥ उठोरे ॥ ५ ॥

राग बसंत।

भोर भयो भज श्री जिनराज, सफल होहिं तेरे सब काज ॥ टेक ॥ धन संपति मन वंछित भोग, सब विधि जान बने संजोग ॥ भोर० ॥ १ ॥ कल्पवृच्छ ताके घर रहै। कामधेनु नित सेवा वहै। पारसचिंतामनि-समुदाय, हितसों आय मिलै सुख दाय ॥ भोर० ॥२॥ दुर्लभतें सुलभ्य है जाय, रोगसोग दुखदूर पलाय। सेवा देव करें मनलाय, विघन उलटि मंगल ठहराय ॥ भोर० ॥ ३ ॥ डायनिभूत पिशाच न छलै, राज चोरको जोर न चलै। जस आदर सौभाग्य प्रकास, द्यानत सुरग मुकतिपदवास ॥ भोर० ॥ ४ ॥

राग भैरों।

भोर भयो सब भविजन मिलकर, जिन वरपूजन आवो (जावो), अशुभ मिटावो पुण्य बढावो, नैनन नींद गमावो ॥ भोर० ॥ टेक ॥ तनको धोय धारि उजरे पट, सुभगजलादिक लावो। वीतराग छवि हरखि निरखिकै, आगमोक्त गुन गावो ॥ भोर भयो० ॥ १ ॥ शास्तर सुनो भनो जिनवानी, तपसंजम उपजावो। धरि सरधान देव गुरु आगम, मात तत्त्वरुचि लावो ॥ भोर भयो० ॥ २ ॥ दुःखित जनकी दया ल्याय उर, दान चारविधि द्यावो। रागरोष तजि भजि निजपदको, 'बुधजन' शिवपद पावो ॥ भोर भयो० ॥ ३ ॥

६ । प्रभाती संग्रह ।

राग रामकली ।

ऋषभदेव ऋषिदेवसहाई । अजित अजितरिपु संभव संभव, अभिनंदन नंदन लवलाई ॥ ऋषभदेव ॥ १ ॥ सुमति सुमति भवि पदम पदम अलि, देत सुपास सुपास भलाई । चित चकोर चंदा चंदप्रभ पुहुपदंत पुहुपनि—भजि भाई ॥ऋषभ०॥ शीतल शीतल जडता नाशै, श्रेयान् श्रेयान् जोति जगाई । वासुपूज्य वासवपदपूजे, विमल विमल कीरति जगछाई ॥ ऋषभ० ॥३ ॥ गुण अनंत अघ अंत अनंत है, धरम धरम वरसा वरसाई । शांति शांत कुंथ्वादि जंतुपर, कुंथुनाथ करुणा करवाई ॥ ऋषभ० ॥ ४ ॥ अरह अरहविधि मल्लि मल्लवर, मुनिसुव्रत मुनिसुव्रतदाई । नमि नमि सुरनर, नेमि-धरम रथ, नेमि प्रभू काटें भवकाई ॥ ऋषभ० ॥ ५ ॥ पास पास छेदी चहुं गतिकी, महावीर महावीर बड़ाई । द्यानत परमानंद पदकारन, चौवीसों नामारथ गाई ॥ ऋषभ० ॥६॥

राग भैरों ।

उठो रे सुज्ञानी जीव, जिनगुन गावो रे ॥ उठो रे० ॥ टेक ॥ निसि तो नसाय गई, भानुको उद्योत भयो, ध्यानको लगावो प्यारे, नींदको भगावो रे । उठो रे ॥ १ ॥ भववन चौरासी वीचि, भ्रमनो फिर न नीच, मोहजाल फंद पर्यो, जन्म मृत्यु पावो रे ॥ उठो रे० ॥ २ ॥ आरज पृथ्वीमें आय, उत्तम नर जन्म पाय, श्रावक कुलको लहाय, मुक्ति क्यों न जावो रे ॥ ॥ उठो रे० ॥ ३ ॥ विषयनि राचि राचि, बहुविधि पाप मांचि,

नरकनि जाय क्यों, अनेक दुःख पावोरे ॥ उठोरे० ॥ ४ ॥ परको मिलाप त्याग आतमके जाप लाग, सुबुधि बतावै गुरु, ज्ञान क्यों न लावोरे ॥ उठोरे ॥ ५ ॥

राग बसंत।

भोर भयो भज श्री जिनराज, सफल होहिं तेरे सब काज ॥ टेक ॥ धन संपति मन बंछित भोग, सब विधि जान बने संजोग ॥ भोर० ॥ १ ॥ कल्पवृच्छ ताके घर रहै। कामधेनु नित सेवा वहै। पारस चिंतामनि-समुदाय, हितसों आय मिलै सुख दाय ॥ भोर० ॥२॥ दुर्लभतैं सुलभ्य ह्वै जाय, रोगसोग दुखदूर पलाय। सेवा देव करैं मनलाय, विघन उलटि मंगल ठहराय ॥ भोर० ॥ ३ ॥ डायनिभूत पिशाच न छलैं, राज चोरको जोर न चलै। जस आदर सौभाग्य प्रकास, द्यानत सुरग मुकतिपदवास ॥ भोर० ॥ ४ ॥

राग भैरो।

...र भयो सब भविजन मिलकर, जिन वरपूजन आवो ...ावो), अशुभ मिटावो पुन्य बढावो, नैनन नींद गमावो ...ोर० ॥ टेक ॥ तनको धोय धारि उजरे पट, सुभगजल ...क लावो। वीतराग छवि हरखि निरखिकै, आगमोक्त ...ावो ॥ भोर भयो० ॥ १ ॥ ...ानी, तपसंजम उपजावो। धरि सरधान देव गुरु ...नान तत्त्वनि लावो ॥ भोर भयो० ॥ २ ॥ दुखित ...दया ल्याय उर, दान चारविधि द्यावो। रागदोष ...ति निजपदको, 'बुधजन' शिवपद पावो ॥ भोर ...॥ ३ ॥

७। मेरी भावना।

(स्नान करते समय बोलना)

मैं देव नित अरहंत चाहूं सिद्धका सुमिरन करों। मैं सूर गुरु मुनि तीनि पद थे साधुपद हिरदय धरों॥ मैं धर्म करुणामय जु चाहूं, जहां हिंसा रंच ना। मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूं जासुमें परपंच ना॥ १॥ चौवीस श्रीजिनदेव चाहूं और देव न मन वसै। जिन वीस क्षेत्रविदेह चाहूं, वंदिते पातक नशै॥ गिरनार शिखर समेद चाहूं, चंपापुर पावापुरी। कैलाश श्रीजिनधाम चाहूं, भजत भाजें भ्रमजुरी॥ २॥ नवतत्त्वका सरधान चाहूं, और तत्त्व न मन धरों। षट्‌द्रव्य गुन परजाय चाहूं ठीक तासों भय हरों॥ पूजा परम जिनराज चाहूं और देव न हूं सदा। तिहुंकालकी मैं जाप चाहूं पाप नहिं लागे कदा॥ ३॥ सम्यक्त दरशन ज्ञान चारित, सदा चाहूं भावसों। दशलक्षणी मैं धर्म चाहूं महा हर्ष उछावसों॥ सोलह जु कारन दुखनिवारण सदा चाहूं प्रीतिसों। मैं चित अठाई पर्व चाहूं महा मंगल रीतिसों॥ ४॥ मैं वेद चारों सदा चाहूं आदि अंत निवाहसों। पाये धरमके चार चाहूं अधिक चित्त उछाहसों॥ मैं दान चारों सदा चाहूं भुवनवशि लाहो लहूं। आराधना मैं चारि चाहूं अंतमें येही गहूं॥ ५॥ भावना बारह जु भाऊं भाव निरमल होत हैं। मैं व्रत जु बारह सदा चाहूं त्याग भाव उद्योत हैं॥ प्रतिमा दिगंबर सदा चाहूं ध्यान आसन सोहना। वसुकर्मतें मैं छुटा चाहूं शिवलहूं जहँ मोहना॥ ६॥ मैं साधुजनको संग चाहूं प्रीति तिनहीं सों करों। मैं पर्वके

उपवास चाहूं अवर आरंभ परिहरों ॥ इस दुक्ख पंचमकालमाहीं कुल शरावक में लहों । अरु महाव्रत धरि सकों नाहीं. निबल तन मैंने गहो ॥ ७ ॥ आराधना उत्तम सदा चाहूं सुनो जिनरायजी । तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत' दया करना न्याय जी ॥ वसुकर्मनाश विकाश ज्ञानप्रकाश मोको कीजिये । करि सुगति गमन समाधिमरन सुभक्ति चरनन दीजिये ॥ ८ ॥

८ । दृष्टाष्टकस्तोत्रम ।

(दर्शनार्थ जाते हुये जबसे जिनमंदिर दीखने लगे तबसे इसका पाठ करना आरंभ कर दे)

दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवतापहारी भव्यात्मनां विभवसंभवभूरिहेतुः । दुग्धाब्धिफेनधवलोज्ज्वलकूटकोटीनद्धध्वजप्रकरराजिविराजमानम् ॥ १ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भुवनैकलक्ष्मीधामर्द्धिवर्द्धितमहामुनिसेव्यमानम् । विद्याधरामरवधूजनमुक्तदिव्यपुष्पांजलिप्रकरशोभितभूमिभागम् ॥ २ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं भवनादिवासविख्यात नाकगणिकागणगीयमान् । नानामणिप्रचयभासुररश्मिजालव्यालीढनिर्मलविशालगवाक्षजालम् ॥ ३ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं सुरसिद्धयक्षगन्धर्वकिन्नरकरार्पितवेणुवीणा । संगीतमिश्रितनमस्कृतधारनादैरापूरितांबरतलोरुदिगन्तरालम् ॥ ४ ॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं विलिसद्विलोलमालाकुलालिललितालकविभ्रमाणम् ॥ माधुर्यवाद्यलयनृत्यविलासनीनां लीलाचलद्वलयनूपुरनादरम्यम् ॥५॥ दृष्टं जिनेन्द्रभवनं मणिरत्नहेममारोज्ज्वलैः कलशचामरदर्पणाद्यैः । सन्मंगलैः सततमष्टशतप्रभेदैर्विभ्राजितं विमलमौक्तिक-

जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ५ ॥ अद्य सौम्या ग्रहाः सर्वे शुभाश्चैकादशस्थिताः । नष्टानि विघ्नजालानि जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ६ ॥ अद्य नष्टो महाबन्धः कर्मणां दुःखदायकः । सुखसंगं समापन्नो जिनेंद्र तव दर्शनात् ॥ ७ ॥ अद्य कर्माष्टकं नष्टं दुःखोत्पादनकारकम् । सुखाम्भोधिनिमग्नोऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ८ ॥ अद्य मिथ्यान्धकारस्य हन्ता ज्ञानदिवाकरः । उदितो मच्छरीरेऽस्मिन् जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ९ ॥ अद्याहं सुकृती भूतो निर्धूताशेषकल्मषः । भुवनत्रयपूज्योऽहं जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥१०॥ अद्याष्टकं पठेद्यस्तु गुणानन्दितमानसः तस्य सर्वार्थसंसिद्धिर्जिनेन्द्र तव दर्शनात् ॥ ११ ॥

इति अद्याष्टकं स्तोत्रं संपूर्णम् ।

—:०:—

११ । नमस्कारमंत्रदर्शनपाठादि ।

नमस्कार मंत्र ।

णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं ।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं ॥ १ ॥

चत्तारि मंगलं—अरहंत मंगलं । सिद्ध मंगलं । साहू मंगलं । केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥ १ ॥ चत्तारि लोगुत्तमा—अरहंत लोगुत्तमा । सिद्ध लोगुत्तमा । साहू लोगुत्तमा । केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥ २ ॥ चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरहंत सरणं पव्वज्जामि । सिद्ध सरणं पव्वज्जामि । साहु सरणं पव्वज्जामि । केवलिपण्णत्तो धम्मो सरणं पव्वज्जामि ॥ ओं ह्रीं स्वाहा ॥

वर्तमान चौवीस तीर्थंकरोंके नाम।

कवित्त ३१ मात्रा।

ऋषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पद्म सुपास प्रभुचंद।
पुहपदंत शीतल श्रेयांस प्रभु, वासुपूज्य प्रभु विमल सुछंद॥
स्वामि अनंत धर्म प्रभु शांति सु, कुंथु अरह जिन मल्लि अनंद।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पास, वीरेश सकल वंदों सुखकंद॥

श्रीऋषभः १ अजितः २ संभवः ३ अभिनंदनः ४ सुमितः ५ पद्मप्रभः ६ सुपार्श्वः ७ चंद्रप्रभः ८ पुष्पदंतः ९ शीतलः १० श्रेयांसः ११ वासुपूज्यः १२ विमलः १३ अनंतः १४ धर्मः १५ शांतिः १६ कुंथुः १७ अरः १८ मल्लिः १९ मुनिसुव्रतः २० नमिः २१ नेमिः २२ पार्श्वनाथः २३ महावीरः २४ इति वर्तमानकालसंबंधिचतुर्विंशतितीर्थंकरेभ्यो नमो नमः॥

इसप्रकार बोलकर साष्टांग नमस्कार करना चाहिये। नमस्कारके पश्चात् पूजनके लिये चावल चढाना हो, तो नीचे लिखे पद्य तथा मंत्र पढकर चढावे।

गीता छंद

यह भवसमुद्रअपार तारण, के निमित्त सुविधि ठई। अति दृढ परमपावन जथारथ भक्ति वर नौका सही॥ उज्वल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूं। अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ-नितपूजा रचूं॥ १॥

दोहा।

तंदुल सालि सुगंध अति, परम अखंडित बीन। जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन॥ १॥ ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

[illegible]

[illegible]

[illegible] है। [illegible]

[illegible] जिन पूजा रचूं॥ १॥

[illegible]

[illegible]॥ ॐ ह्रीं [illegible] निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

[illegible]

[illegible] है। [illegible]

[illegible] है॥ [illegible]

[illegible] रचूं॥ २॥

[illegible]

[illegible]॥ २॥ ॐ ह्रीं [illegible]

[illegible] निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

[illegible]

[illegible] रचूं॥ ३॥

[illegible]॥ ३॥ ॐ ह्रीं [illegible]

[illegible] निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

१२। अथ दर्शनदशक।

छप्पय।

देखे श्रीजिनराज, आज सब विघन विलाये। देखे श्रीजिनराज, आज सब मंगल आये॥ देखे श्रीजिनराज, काज करना कछु नाहीं। देखे श्रीजिनराज, हौंस पूरी मनमाहीं॥
तुमदेखे श्रीजिनराजपद, भोजल-अंजुलिजल-भया।
चिंतामनिपारसकल्पतरु, मोहसबनिसों उठि गया॥ १॥

२

देखे श्रीजिनराज, भाज अघ जाहिं दिसंतर। देखे श्रीजिनराज, काज सब होंइ निरंतर॥ देखे श्रीजिनराज, राज मनवांछित करिये। देखे श्रीजिनराज, नाथ दुख कबहु न भरिये॥ तुम देखे श्रीजिनराजपद, रोम रोम सुख पाइए। धनि आज दिवस धनि अब घरी, माथ नाथकौं नाइए॥ २॥

३

धन्य धन्य जिनधर्म, कर्मकौं छिनमें तोरै। धन्य धन्य जिनधर्म परमपदसों हित जोरै॥ धन्य धन्य जिनधर्म भर्मको मूल मिटावै। धन्य धन्य जिनधर्म शर्मकी राह बतावै॥ जग धन्य धन्य जिनधर्म यह, सो परगट तुमनें किया। भवखेत पाप-तप-तपतकौं, मेघरूप ह्वै सुख दिया॥ ३॥

४

तेज सूरसम कहूं, तपत दुखदायक प्रानी। कांति चंदसम कहूं, कलंकित मूरति मानी। वारिधिसम गुणकहूं, खारमें

१ कल्याणको, आत्महितको। २ पापरूपअग्निसे तप्त। ३ सूर्यसदृश।

कौन भलप्पन ॥ पारससम जस कहूं, आपसम करै न पर-तनै॥ इन आदि पदारथ लोकमें, तुमसमान क्यों दीजिये। तुम महाराज अनुपमदसा, मोहि अनूपम कीजिये ॥ ४ ॥

५

तव विलंब नहिंकियो, चीर द्रौपदिको बाढ्यो। तव विलंब नहिं कियो, सेठ सिंहासन चाढ्यो ॥ तव विलंब नहिं कियो, सीय पावकतें टारयो। तव विलंब नहिं कियो, नीरै मातंग उबारयो ॥ इहिविधि अनेकदुख भगतके, चूर दूर किय सुख अवनि। प्रभु मोहि दुःख नासनिविषें, अब विलंब कारन कवन ॥५॥

६

कियो भौनतैं गौन, मिटी आरति संसारी। राह आन तुम ध्यान, फिकर भाजी दुखकारी ॥ देखे श्रीजिनराज, पाप मिथ्यात विलायो। पूजाश्रुति बहु भगति, करत सम्यकगुन आयो ॥ इस मारवाडसंसारमें कल्पवृक्ष तुम दरस है। प्रभु मोहि देहु भौ भौ विषें, यह वांछा मन सरस है ॥ ६ ॥

७

जै जै श्रीजिनदेव, सेव तुमरी अघनाशक। जै जै श्रीजिनदेव, भेव षटद्रव्य प्रकासक ॥ जै जै श्रीजिनदेव एक जो प्रानी ध्यावै जै जै श्रीजिनदेव, टब अहमेव मिटावै। जै जै श्रीजिनदेव प्रभु, हेय करमरिपु दलनकों। हूजे सहाय नैंनरायजी, हम तयार शिवचलनकों ॥ ७ ॥

१ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible] ४ हाथी। ५ वृक्षान। ६ [illegible] ७ [illegible] ८ [illegible] ९ भेद।

१२। अथ दर्शनदशक।

छप्पय।

देखे श्रीजिनराज, आज सब विघन विलाये। देखे श्रीजिनराज, आज सब मंगल आये॥ देखे श्रीजिनराज, काज करना कछु नाहीं। देखे श्रीजिनराज, हौंस पूरी मनमाहीं॥
तुमदेखे श्रीजिनराजपद, भोजल-अंजुलिजल-भयां।
चिंतामनिपारसकल्पतरु, मोहसबनिसों उठि गया॥ १॥

२

देखे श्रीजिनराज, भाज अघ जाहिं दिसंतर। देखे श्रीजिनराज, काज सब होंइ निरंतर॥ देखे श्रीजिनराज, राज मनवांछित करिये। देखे श्रीजिनराज, नाथ दुख कबहु न भरिये॥ तुम देखे श्रीजिनराजपद, रोम रोम सुख पाइए। धनि आज दिवस धनि अब घरी, माथ नाथकों नाइए॥ २॥

३

धन्य धन्य जिनधर्म, कर्मकों छिनमें तोरै। धन्य धन्य जिनधर्म परमपदसों हित जोरै॥ धन्य धन्य जिनधर्म भर्मको मूल मिटावै। धन्य धन्य जिनधर्म शर्मकी राह बतावै॥ जग धन्य धन्य जिनधर्म यह, सो परगट तुमनें किया। भवखेत पाप-तप-तपनकों, मेघरूप ह्वै सुख दिया॥ ३॥

४

तेज सूर्यसम कहूं, तपन दुखदायक भानी। कांति चंदसम कहूं, कलंकित मूरति मानी। वारिधिसम गुणकहूं, खारमें

१ [illegible]। २ [illegible]। ३ [illegible]।

कौन भलप्पन ॥ पारससम जस कहुं, आपसम करै न पर-तनं॥
इन आदि पदारथ लोकमें, तुमसमान क्यों दीजिये। तुम
महाराज अनुपमदसा, मोहि अनूपम कीजिये ॥ ४ ॥

५

व विलंव नहिंकियो, चीर द्रौपदिको वाढ्यो। तव विलंव
हिं कियो, सेठ सिंहासन चाढ्यो ॥ तव विलंव नहिं कियो,
य पावकतैं टारयो। तव विलंव नहिं कियो, नीरं मातंग उवा-
॥ इहिविधि अनेकदुख भगतके, चूर दूर किय सुख अवनि।
मोहि दुःख नासनिविषें, अव विलंव कारन कवन ॥५॥

६

भौंनतैं गौनँ, मिटी आरति संसारी। राह आन तुम
फिकर भाजी दुखकारी ॥ देखे श्रीजिनराज, पाप
विलायो। पूजाश्रुति वहु भगति, करत सम्यकगुन
इस मारवाडसंसारमें कल्पवृक्ष तुम दरस है। प्रभु
भौ भौ विषैं, यह वांछा मन सरस है ॥ ६ ॥

७

नदेव, सेव तुमरी अघनाशक। जै जै श्रीजिनदेव
प्रकासक ॥ जै जै श्रीजिनदेव एक जो प्रानी ध्यावै
नदेव, टेव अहमेव मिटावै। जै जै श्रीजिनदेव
रिपु दलनकौं। हूजे सहाय सँधरायजी, हम
नकौं ॥ ७ ॥

। अर्थात दूसरे धातुओंको। २ पटन्तर, उपमा। ३ जलमेंसे।
। ६ घरसे। ७ गमन। ८ मारवाडरूपी (वृक्षरहितसूखे रेत
।

१४। श्रीदौलतरामकृत स्तुति।

सकल ज्ञेयज्ञायक तदपि, निजानंद रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरिरजरहसिविहीन ॥ १ ॥

पद्धरि छन्द।

जय वीतराग विज्ञानपूर। जय मोहतिमिरको हरन सूर ॥
जय ज्ञान अनंतानंतधार। दृगसुखवीरजमंडित अपार ॥२॥
जय परम शांतमुद्रासमेत। भविजनको निजअनुभूतिहेत ॥
भविभागनवचजोगेवशाय। तुमधुनि ह्वै सुनि विभ्रम नसाय ॥
तुमगुण चिंतत निजपरविवेक। प्रगटैं विघटैं आपद अनेक ॥
तुम जगभूषण दूषणवियुक्त। सब महिमायुक्त विकल्पमुक्त ॥
अविरुद्ध शुद्ध चेतनस्वरूप। परमातम परम पावन अनूप ॥
शुभअशुभविभाव अभाव कीन। स्वाभाविकपरिणतिमयअ-
छीन ॥५॥ अष्टादशदोषविमुक्त धीर। सुचतुष्टयमय राजत
गंभीर ॥ मुनिगणधरादि सेवत महंत। नवकेवललब्धिरमा
धरंत ॥ ६ ॥ तुम शासन सेय अमेय जीव। शिव गये जाहिं
जैहैं सदीव ॥ भवसागरमें दुख छार वारि। तारनको अव
रन आप टारि ॥ ७ ॥ यह लखि निज दुखगदहरणकाज।
तुमही निमित्तकारण इलाज ॥ जाने. तातैं मैं शरण आय।
उचरों निज दुख जो चिर लहाय ॥ ८ ॥ मैं भ्रम्यो अपनपो
विसरि आप। अपनाये विधिफल पुण्यपाप। निजको परको
करता पिछान। परमें अनिष्टता इष्ट ठान ॥ ९ ॥ आकुलित
भयो अज्ञान धारि। ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि। तन-
परणतिमें आपो चितार। कबहू न अनुभयो स्वपदसार ॥१०॥

तुमको विन जाने जो कलेश । पाये सो तुम जानत जिनेश ॥ पशुनारकनरसुरगतिमझार । भव धर धर मर्यो अनंतवार ॥ ११ ॥ अब काललब्धिवलतैं दयाल । तुम दर्शन पाय भयो खुश्याल ॥ मन शांत भयो मिटि सकल द्वंद । चाख्यो स्वातमरस दुखनिकंद ॥ १२ ॥ तातैं अब ऐसी करहु नाथ । विछुरै न कभी तुअ चरण साथ ॥ तुम गुणगणको नहिं छेव देव । जग तारनको तुअ विरद एव ॥ १३ ॥ आतमके अहित विषय कषाय । इनमें मेरी परिणति न जाय ॥ मैं रहूं आपमें आप लीन । सो करो होउं ज्यों निजाधीन ॥ १४ ॥ मेरे न चाह कछु और ईश । रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश ॥ मुझ कारजके कारन सु आप । शिव करहु, हरहु मम मोहताप ॥ १५ ॥ शशि शांतकरन तपहरन हेत । स्वयमेव तथा तुम कुशल देत ॥ पीवत पियूप ज्यों रोग जाय । त्यों तुम अनुभवतैं भव नसाय ॥ १६ ॥ त्रिभुवनतिहुंकालमंझार कोय । नहिं तुमविन निज सुखदायहोय ॥ मो उर यह निश्चय भयो आज । दुखजलधिउतारन तुम जिहाज ॥ १७ ॥

दोहा ।

तुम गुणगणमणि गणपती, गणत न पावहिं पार ।
'दौल' स्वल्पमति किम कहै, नमूं त्रियोगसंभार ॥ १८ ॥

इति दौलतरामकृत स्तुति ॥

१५। भूधरकृत दर्शन स्तुति।

हरिगीतिका।

पुलकंत नयन चकोर पक्षी, हँसत उर इंदीवरो। दुर्बुद्धि चकवी विलख विछुरी, निविड़ मिथ्यातम हरो॥ आनंद अंबुधि उमगि उछरयो, अखिल आतप निरदले। जिनवदन पूरनचंद्र निरखत, सकल मनवांछित फले॥ १॥ मम आज आतम भयो पावन, आज विघन विनाशिया। संसारसागर नीर निवड़्यो, अखिल तत्त्व प्रकाशिया॥ अब भई कमला किंकरी मम, उभय भव निर्मल थये। दुख जरयो दुर्गतिवास निवरयो, आज नव मंगल भये॥ २॥ मनहरन मूरति हेरि प्रभुकी, कौन उपमा लाइये। मम सकल तनके रोम हुलसे हर्ष ओर न पाइये॥ कल्याणकाल प्रतच्छ प्रभुको लखें, जे सुरनर घने। तिह समयकी आनंद महिमा, कहत क्यों मुखसों बने॥ ३॥ भर नयन निरखे नाथ तुमको, और वांछा ना रही। मन ठठ मनोरथ भये पूरन, रंक मानो निधि लही॥ अब होऊ भव भव भक्ति तुम्हरी, कृपा ऐसी कीजिये कर जोर भूधरदास विनवै, यही वर मोहि दीजिये॥ ४॥

१६। दर्शनपाठ।

प्रभु पतितपावन मैं अपावन, चरन आयो सरनजी। यो विरद आप निहार स्वामी, मेट जामन मनरजी॥ तुम ना पिछान्या आन मान्या, देव विविधप्रकारजी। या बुद्धिसेती निज न जाण्यो, भ्रम गिण्यो हितकारजी॥ १॥ भवविकटवनमें

करम वैरी, ज्ञानधन मेरो हरयो। तब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्टगति धरतो फिरयो॥ धन घडी यो धन दिवस यो ही, धन जनम मेरो भयो। अब भाग मेरो उदय आयो दरश प्रभुको लखलयो॥ २॥ छवि वीतरागी नगन मुद्रा, दृष्टि नासापैं धरैं। वसु प्रातिहार्य अनंत गुणजुत, कोटि रवि छविको हरैं॥ मिट गयो तिमिर मिथ्यात मेरो, उदयरवि आतम भयो। मो उर हरप ऐसो भयो, मनु रंक चिंतामणि लयो॥ ३॥ मैं हाथ जोड नवाय मस्तक, वीनऊं तुअ चरनजी। सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहु तारन तरनजी॥ जाचूं नहीं सुरवास पुनि नरराज परिजन साथजी। 'बुध' जाचहूं तुअ भक्ति भवभव, दीजिये शिवनाथजी॥

१७। ब्रह्मचारी ज्ञानानन्दकृत दर्शन।

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अबतक तुमको विनजाने, दुख पाये निज गुण हाने॥
पाये अनंते दुःखअबतक, जगतको निज जानकर।
सर्वज्ञभाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर॥
भवबंधकारक सुखप्रहारक, विषयमें सुख मानकर।
निजपर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधिसुधा नहि पानकर॥१॥
तव पद मम उरमें आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निजज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहितमें लागी॥
रुचि लगी हितमें आतमके, सतसंगमें अब मन लगा।
मनमें हुई अब भावना, तव भक्तिमें जाऊं रँगा॥
प्रियवचनकी हो टेव गुणि गुण गानमें ही चितपगै।

शुभशास्त्रका नितहो मनन, मनदोषवादनतें भगे ॥ २ ॥
कब समता उरमें लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूतभगाकर, मुनि व्रत धारूं वन जाकर॥
धरकर दिगंबररूप कब, अठवीसगुण पालन करूं।
दो बीस परिसह सह सदा, शुभधर्म दशधारन करूं॥
तप तपूं द्वादशविधि सुखद, नित बंधआस्रव परिहरूं॥
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्मरिपुकों निर्जरूं॥ ३ ॥
कब धन्य सुअवसर पाऊं, जबनिजमेंही रम जाऊं।
कर्त्तादिक भेद मिटाऊं, रागादिक दूर भगाऊ॥
कर दूर रागादिक निरंतर, आतमको निर्मलकरूं।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरूं॥
आनंदकंद जिनेंद बन उपदेशको नित उच्चरूं।
आवे 'अमर' कब सुखद दिन, जब दुखद भवसागरतरूं॥४॥

इति ज्ञानानंद इत्यस्तु।

१८। श्रीदर्शनपचीसी।

तुम निरखत मुझको मिली, मेरी संपति आज।
कहा चक्रवर्ति संपदा, कहा स्वर्ग साम्राज ॥ १ ॥
तुम वंदत जिन देवजी, नित नव मंगल होय।
विघ्न कोटि ततछिन टरें, लहहिं सुजस सब लोय ॥२॥
तुम जाने बिन नाथजी, एक स्वांसके मांहिं।
जन्म मरण अठरा किये, साता पाई नाहिं ॥ ३ ॥
अन्यदेव पूजत लहे, दुःख नरकके बीच।
भूख प्यास पशुगति सही, कर्‌यो निरादर नीच ॥ ४ ॥

नाम उचारत सुख लहै, दर्शनसें अघ जाय।
पूजत पावे देव पद, ऐसे हैं जिनराय ॥ ५ ॥
वंदत हूं जिनराजमैं, धर उर समताभाव।
तन धन जन-जगजालतैं, धर विरागता भाव ॥ ६ ॥
सुनो अरज हे नाथजी, त्रिभुवनके आधार।
दुष्ट कर्मका नाश कर, वेगि करो उद्धार ॥ ७ ॥
जाचत हूं मैं आपसे, मेरे जियके मांहि।
राग रोषकी कल्पना, क्यों हूं उपजै नांहि ॥ ८ ॥
अति अद्भुत प्रभुता लखी, वीतरागतामांहि।
विमुख होंहिं ते दुख लहैं, सन्मुख सुखी लखाहिं ॥ ९ ॥
कलमल कोटिक नहिं रहैं, निरखत ही जिनदेव।
ज्यों रवि ऊगत जगतमें, हरै तिमर स्वयमेव ॥ १० ॥
परमाणू पुद्गलतणी, परमातमसंयोग।
भई पूज्य सब लोकमें, हरै जन्मका रोग ॥ ११ ॥
कोटि जन्ममें कर्म जो, बांधे हुते अनंत।
ते तुम छवी विलोकितें, छिनमें हो है अंत ॥ १२ ॥
आन नृपति किरपा करै, तब कछु दै धन धान।
तुम प्रभु अपने भक्तको, करल्यो आप समान ॥ १३ ॥
यंत्र मंत्र मणि औषधी, विषहर राखत प्रान।
त्यों जिनछवि सब भ्रम हरै, करै सर्व परधान ॥ १४ ॥
त्रिभुवनपति हो ताहितें, छत्र विराजैं तीन।
अमरा नाग नरेश पद, रहैं चरन आधीन ॥ १५ ॥
भवि निरखत भव आपने, तुव भामंडल बीच।

भ्रम मेटै समता गहै, नाहिं लहै गति नीच ॥ १६ ॥
दोइ ओर ढोरत अमर, चौसठ चमर सफेद ।
निरखत भविजनका हरै, भव अनेकका खेद ॥ १७ ॥
तरु अशोक तुव हरत है, भवि जीवनका शोक ।
आकुलता कुल मेटिकैं, करै निराकुल लोक ॥ १८ ॥
अंतर बाहिर परिगहन, त्यागा सकल समाज ।
सिंहासन पर रहत हैं, अंतरीक्ष जिनराज ॥ १९ ॥
जीत भई रिपु मोहतैं, यश सूचत है तास ।
देव दुंदुभिनके सदा, बाजे बजैं अकाश ॥ २० ॥
विन अक्षर इच्छारहित, रुचिर दिव्यध्वनि होय ।
सुर नर पशु समझैं सबै, संशय रहै न कोय ॥ २१ ॥
बरसत सुरतरुके कुसुम, गुंजत अलि चहुंओर ।
फैलत सुयश सुवासना, हरपत भवि सब ठौर ॥ २२ ॥
समुद बाघ अरु रोग अहि, अर्गल बँध सँग्राम ।
विघ्न विपम सब ही टरैं, सुमरत ही जिननाम ॥ २३ ॥
सिरीपाल चंडाल पुनि, अंजन भील कुमार ।
हाथी हरि अहि सब तरे, आज हमारी बार ॥ २४ ॥
बुधजन यह विनती करै, हाथ जोड़ शिर नाय ।
जबलौं शिव नहिं होय तुव, भक्ति हृदय अधिकाय ॥ २५ ॥

इस प्रकार एक या दो कोई भी स्तुति पढ़कर पुनः साष्टांग नमस्कार करना चाहिये। तत्पश्चात् नीचे लिखा श्लोक पढ़कर गंधोदक मस्तकपर डालना तथा ललाट इत्यादि उत्तम अंगोंमें भी लगाना चाहिये।

—:०:—

१९। गंधोदक लेनेका मंत्र।

निर्मलं निर्मलीकरं पवित्रं पापनाशकम्।
जिनगन्धोदकं वन्दे कर्माष्टकविनाशकम् ॥ १ ॥

यदि आशिका लेनी हो तो नीचे लिखा दोहा पढ़कर लेना चाहिये।

२०। आशिका लेनेका दोहा।

श्रीजिनवरकी आशिका, लीजे शीस चढ़ाय।
भवभवके पातक कटैं, दुःख दूर हो जांय ॥ १ ॥

तत्पश्चात् नीचे लिखे दो कवित्त पढ़कर शास्त्रजी विराजमान हों, वहां शास्त्रजीको (जिनवाणीको) साष्टांग नमस्कार करके शास्त्रजी सुनना चाहिये अथवा थोड़ी बहुत किसी भी शास्त्रकी स्वाध्याय करना चाहिये।

२१। शास्त्रजीको नमस्कार करनेके

कवित्त।

वीरहिमाचलतैं निकरी, गुरुगौतमके मुखकुंड ढरी है।
मोहमहाचल भेद चली, जगकी जड़तातप दूर करी है ॥
ज्ञानपयोनिधिमाहिं रली, बहुभंगतरंगनिसों उछरी है।
ता शुचि शारद-गंगनदी प्रति, मैं अंजुलिकर शीस धरी है ॥१॥
या जगमंदिरमें अनिवार अज्ञान अँधेर छयो अति भारी ॥
श्रीजिनकी धुनि दीपशिखासम, जो नहिं होत प्रकाशनहारी॥
तो किसभाँति पदारथपाँति, कहां लहते, रहते अविचारी।
या विधि संत कहैं धनि हैं, धनि हैं, जिनबैन बड़े उपकारी ॥२॥

कवित्त [illegible] इस प्रकार नमस्कार करके तत्पश्चात् इस पुस्तकमें आगे लिखे अथवा जिस पर [illegible] हो उस [illegible] करना चाहिये

२२। पंचपरमेष्ठीकी आरती

चाल खड़ी।

मनवचतनकर शुद्ध पंचपद, पूजें भविजन सुखदाई।
सबजन मिलकर दीप धूप ले, करहिं आरती गुणगाई ॥टेक॥
प्रथमहि श्रीअरहंत परमगुरु, चौंतिम अतिशयसहित बसें।
प्रातिहार्य वसु अतुल चतुष्टय, सहित समवसृत मांहिं लसें॥
क्षुधा तृषा भय जन्म जरा मृति, रोग शोक रति अरति महा।
विस्मय खेद स्वेद मद निद्रा, राग द्वेष मिल मोह दहा॥
इन अष्टादश दोषरहित नित, इंद्रादिक पूजत आई। सब०
दूजे-सिद्ध सदा सुखदाता, सिद्धशिलापर राजत हैं।
सम्यगदर्शन ज्ञान वीर्य अरु, सूक्ष्मपणाकर छाजत हैं॥
अगुरुलघू अवगहनशक्ति धर, वाधाविन अशरीरा हैं।
तिनका सुमिरण नित्य कियेतें, शीघ्र नशत भवपीरा है॥
या कारण नित चित्तशुद्ध कर, भजहु सिद्ध शिवके राई। सब०
तीजे-श्री आचार्य परमगुरु, छत्तिस गुणके धारी हैं।
दर्शन ज्ञान चरण तप वीरज, पंचाचार-प्रचारी हैं॥
द्वादशतप दशधर्म गुप्ति त्रय, पद् आवश्यक नित पालें।
सब मुनिजनको प्रायश्चित दे, मुनिव्रतके दूषण टालें॥
ऐसे श्रीआचार्य गुरुनकी, पूजा करिये चित लाई। सब०
चौथे-श्रीउवझायचरणपंकजरज, सुखदा भविजनको।
ग्यारह अंग सु पूर्वचतुर्दश, पढ़ें पढावें मुनिगनको॥
मुनिके सब आचरण आचरें, द्वादश तपके धारी हैं।
स्यादवाद सुखकारी विद्या, सबजगमें विस्तारी हैं॥

ऐसे श्रीउवझाय गुरुनके. चरणकमल पूजहुं भाई । मंत्र०
पंचमि आरति सर्वसाधुकी. आठवीस गुण मूल धरें ।
पंचमहाव्रत पंचसमितिधर इंद्रिय पांचों दमन करें ॥
षट्आवश्यक केशलोंच इकवार, खड़े भोजन करते ।
दाँतण स्नान त्याग भू सोवत, यथाजात-मुद्रा धरते ॥
या विधि "पन्नालाल" पंचपद, पूजत भवदुख नशजाई ।
सब जन मिलकर दीप धूप ले, करहिं आरती गुणगाई ॥५॥

इस प्रकार आरती बोलकर नीचे लिखा श्लोक, दोहा और मंत्र पढ़कर आरतीको मस्तक चढ़ावें ।

ध्वस्तोद्यमांधीकृतविश्वविश्वमोहांधकारप्रतिघातदीपान् ।
दीपैःकनत्कांचनभाजनस्थैर् जिनेन्द्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥
दोहा—स्वपरप्रकाशनज्योति अति, दीपक तमकरहीन ।
जासों पूजूं परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ १ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

इसी प्रकार नीचे लिखा श्लोक मंत्र पढ़कर धूप खेना चाहिये ।

२३। धूप खेनेका श्लोक मंत्र ।

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टजालसंधूपने भासुरधूमकेतून् ।
धूपैर्विधूतान्यसुगंधगंधैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहं ॥ २ ॥
दोहा—अगनिमांहि परिमलदहन, चंदनादि गुणलीन ।
जासों पूजूं परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन ॥ २ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।



२। दूसरा अध्याय।

अभिषेक नित्यपूजादि संग्रह।

२४। अथ पंचमंगल।

(पांचों मंगल अभिषेककी जगह न बोलकर सामग्री बनाते समय बोलना चाहिये)

पणविवि पंच परमगुरु गुरु जिनसासनो।
सकलसिद्धिदातार सु, विघनविनासनो॥
सारद अरु गुरु गौतम, सुमति प्रकासनो।
मंगलकर चउ-संघहिं, पापपणासनो॥
पापहिपणासन गुणहिं गरुआ, दोष अष्टादश-रहिउ।
धरिध्यान करमविनासि केवल-ज्ञान अविचल जिन लहिउ।
प्रभु पंचकल्याणक विराजित, सकल सुर नर ध्यावहीं।
त्रैलोक्यनाथ सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥ १॥

१। गर्भकल्याण।

जाके गरभकल्याणक धनपति आइयो।
अवधिज्ञान-परवान, सु इंद्र पठाइयो॥
रचि नव बारह जोजन, नयरि सुहावनी।
कनकरयणमणिमंडित, मंदिर अति बनी॥
अति बनी पौरि पगारि परिखा, सुवन उपवन सोहये।
नर नारि सुंदर चतुर भेख सु, देख जनमन मोहये।
तहँ जनकगृह छहमास प्रथमहि, रतन धारा बरसियो।
पुनि रुचिकगामिनि जननि-सेवा करहिं सब विधि हरसियो॥२
सुर कुंजरसम कुंजर, धवल धुरंधरो।

केहरि केसरसोभित, नख सिख सुंदरो ॥
कमलाकलश न्हवन, दुइ दाम सुहावनी ।
रविससि मंडल मधुर, मीन जुग पावनी ॥
पावनि कनक घट जुगम पूरन कमल कलित सरोवरो ।
कल्लोलमालाकुलित सागर, सिंहपीठ मनोहरो ॥
रमनीक अमर विमान फनिपतिभुवन रवि छवि छाजई ।
रुचि रतन रासि दिपंत, दहन सु तेज पुंज विराजई ॥
ये सखि सोलह सुपने सूती सयनही ।
देखे माय मनोहर, पश्चिम रयनही ॥
उठि प्रभात पिय पूछियो, अवधि प्रकाशियो ।
त्रिभुवनपति सुत होसी, फल तिहँ भासियो ॥
भासियो फल तिहिं चिंत दंपति परम आनंदित भये ।
छह मासपरि नवमास पुनि तहँ, रैन दिन सुखसों गये ॥
गर्भावतार महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं ॥ २ ॥

२ जन्मकल्याणक

मतिश्रुतअवधिविराजित, जिन जब जनमियो ।
तिहुँलोक भयो छोभित सुरगन भरमियो ॥
कल्पवासिघर घंट अनाहद बज्जिया ।
जोतिषघर हरिनाद, सहज गल गज्जिया ॥
गज्जिया सहजहिं संख भावन, भुवन सबद सुहावने ।
विंतरनिलय पटु पटह बज्जहि, कहत महिमा क्यों बने ॥
जिन-जनम निहचै जानियो

धनराज तब गजराज माया-मयी निरमय आनियो ॥ ५ ॥
जोजन लाख गयंद, वदन-सौ निरमए।
वदन वदन वसु दंत, दंत सर संठए ॥
सर सर सौ-पनवीस, कमलिनी छाजहीं।
कमलिनि कमलिनि कमल पचीस विराजहीं ॥
राजहिं कमलिनी कमलऽठोतर, सौ मनोहर दल बने।
दल दलहिं अपछर नटहिं नवरस, हावभाव सुहावने ॥
मणि कनककिंकणि वर विचित्र, सु अमरमंडप सोहये।
घन घंट चँवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहये ॥ ६ ॥
तिहि करि हरि चढि आयउ, सुरपरिवारियो।
पुरिहि प्रदच्छन दे त्रय, जिन जयकारियो ॥
गुप्त जाय जिन-जननिहिं, सुखनिद्रा रची।
मायामइ सिसु राखि तौ, जिन आन्यो सची ॥
आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तृपत न हूजिये।
तब परम हरषित हृदय हरणा सहस लोचन पूंजिये।
पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इंद्र, उछंग धरि प्रभु लीनऊ।
इसान इंद्र सु चंद्रछवि सिर, छत्र प्रभुके दीनऊ ॥ ७ ॥
सनतकुमार माहेंद्र. चमर दुइ ढारहीं।
सेस सक्र जयकार, सबद उचारहीं ॥
उच्छवमहित चतुरविधि, सुर हरषित भये।
जोजन सहस निन्यानै, गगन उलंघि गये ॥
लंघि गये सुरगिर जहां पांडुक-वन विचित्र विराजहीं।

१ पूरण किये।

पांडुकसिला तहँ अर्द्धचंद्रसमान, मणि छवि छाजहीं ॥
जोजन पचास विशाल दुगुणायाम, वसु ऊंची गनी ।
वर अष्ट-मंगल-कनक कलसिन सिंहपीठ सुहावनी ॥ ८ ॥
रचि मणिमंडप सोभित, मध्य सिंहासनो ।
थाप्यो पूरव मुख तहँ, प्रभु कमलासनो ॥
वाजहिं ताल मृदंग, वेणु वीणा घने ।
दुंदुभि प्रमुख मधुरधुनि, अवर जु वाजने ॥
वाजने वाजहिं सची सब मिलि, धवल मंगल गावहीं ।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं ॥
भरि छीरसागर जल जु हाथहि, हाथ सुर गिरि ल्यावहीं ।
सौधर्म अरु ईसानइंद्र सु, कलस ले प्रभु न्हावहीं ॥ ९ ॥
वदन-उदर-अवगाह, कलसगत जानिये ।
एक चार वसु जोजन, मान प्रमानिये ॥
सहस-अठोतर कलसा, प्रभुके सिर ढरै ।
पुनि सिंगार प्रमुख आ-चार सबै करैं ॥
करि प्रगट प्रभु महिमामहोच्छव, आनि पुनि मातहिं दए ।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गए ॥
जनमाभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं ॥ १० ॥

३। तपकल्याणक ।

श्रमजलरहित सरीर, सदा सब मलरहिउ ।
छीर-वरन वर रुधिर, प्रथम आकृति लहिउ ॥
प्रथम सार संहनन, सुरूप विराजहीं ।

धनराज तब गजराज माया-मयी निरमय आनियो ॥ ५ ॥
जोजन लाख गयंद, वदन-सौ निरमए।
वदन वदन वसु दंत, दंत सर संठए ॥
सर सर सौ-पनवीस, कमलिनी छाजहीं।
कमलिनि कमलिनि कमल पचीस विराजहीं ॥
राजहिं कमलिनी कमलऽठोतर, सौ मनोहर दल बने।
दल दलहिं अपछर नटहिं नवरस, हावभाव सुहावने ॥
मणि कनककिंकणि वर विचित्र, सु अमरमंडप सोहये।
घन घंट चँवर धुजा पताका, देखि त्रिभुवन मोहये ॥ ६ ॥
तिहि करि हरि चढि आयउ, सुरपरिवारियो।
पुरिहिं प्रदच्छन दे त्रय, जिन जयकारियो ॥
गुप्त जाय जिन-जननिहिं, सुखनिद्रा रची।
मायामइ सिसु राखि तौ, जिन आन्यो सची ॥
आन्यो सची जिनरूप निरखत, नयन तृपत न हूजिये।
तब परम हरषित हृदय हरणा सहस लोचन पूंजिय।
पुनि करि प्रणाम जु प्रथम इंद्र, उछंग धरि प्रभु लीनऊ।
ईसान इंद्र सु चंद्रछवि सिर, छत्र प्रभुके दीनऊ ॥ ७ ॥
सनतकुमार महेंद्र, चमर दुइ ढारहीं।
सेस सक्र जयकार, सबद उचारहीं ॥
उच्छवसहित चतुरविधि सुर हरषित भये।
जोजन सहस निन्यानवे गगन उलंघि गये ॥
लंघि गये सुरगिरि जहां पांडुक वन विचित्र विराजहीं।

पांडुकसिला तहँ अर्द्धचंद्रसमान, मणि छवि छाजहीं ॥
जोजन पचास विशाल दुगुणायाम, वसु ऊंची गनी ।
वर अष्ट-मंगल-कनक कलसिन सिंहपीठ सुहावनी ॥ ८ ॥
रचि मणिमंडप सोभित, मध्य सिंहासनो ।
थाप्यो पूरव मुख तहँ, प्रभु कमलासनो ॥
वाजहिं ताल मृदंग, वेणु वीणा घने ।
दुंदुभि प्रमुख मधुरधुनि, अवर जु वाजने ॥
वाजने वाजहिं सची सब मिलि, धवल मंगल गावहीं ।
पुनि करहिं नृत्य सुरांगना सब, देव कौतुक धावहीं ॥
भरि छीरसागर जल जु हाथहि, हाथ सुर गिरि ल्यावहीं ।
सौधर्म अरु ईसानइंद्र सु, कलस ले प्रभु न्हावहीं ॥ ९ ॥
वदन-उदर-अवगाह, कलसगत जानिये ।
एक चार वसु जोजन, मान प्रमांनिये ॥
सहस-अठोतर कलसा, प्रभुके सिर ढरै ।
पुनि सिंगार प्रमुख आचार सबै करै ॥
करि प्रगट प्रभु महिमामहोच्छव, आनि पुनि मातहिं दए ।
धनपतिहिं सेवा राखि सुरपति, आप सुरलोकहिं गए ॥
जनमाभिषेक महंत महिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर जगत मंगल गावहीं ॥ १० ॥

३। तपकल्याणक ।

श्रमजलरहित सरीर, सदा सब मलरहिउ ।
छीर-वरन वर रुधिर, प्रथम आकृति लहिउ ॥
प्रथम सार संहनन, सुरूप विराजहीं ।

सहज सुगंध सुलच्छन-मंडित छाजहीं ॥
छाजहिं अतुलबल परम प्रिय हित, मधुर वचन सुहावने ।
दश सहज अतिशय सुभग मूरति, वाललील कहा वने ॥
आवाल काल त्रिलोक पति मन,-रुचिर उचित जु नित नए ।
अमरोपनीत पुनीत अनुपम, सकल भोग विभोगए ॥ ११ ॥
भवतन-भोग-विरित्त, कदाचित चित्तए ।
धन जोवन पिय पुत्त, कलत्त अनित्तए ॥
कोउ न सरन मरनदिन, दुख चहुंगति भरयो ।
सुख दुख एकहि भोगत, जिय विधिवसपरयो ॥
परयो विधिवस आन चेतन, आन जड़ जु कलेवरो ।
तन असुचि पर तें होय आस्रव, परिहरतें संवरो ॥
निरजरा तपबल होय, समकित,-विन सदा त्रिभुवन भम्यो ।
दुर्लभ विवेक विना न कबहूं, परम धरमविषै रम्यो ॥
ये प्रभु बारह पावन, भावन भाइया ।
लौकांतिक वर देव, नियोगी आइया ॥
कुसुमांजलि दे चरन, कमल सिर नाइया ॥
स्वयंबुद्ध प्रभु थुतिकर, तिन समुझाइया ॥
समुझाय प्रभुको गयो निजपुर, पुनि महोच्छव हरि कियो ।
रुचिरुचिर चित्र विचित्र सिविका, कर सुनंदन-वन लियो ॥
तहँ पंचमुट्ठी लोंच कीनो, प्रथम सिद्धनि थुति करी ।
मंडिय महाव्रत पंच दुद्धर, सकल परिगह परिहरी ॥ १३ ॥
मणिमय भाजन केस, परिट्ठिय सुरपती ।
छीर-समुद-जल खिपकरि, गयो अमरावती ॥

तप संयमवल प्रभुको. मनपरजय भयो।
मौनसहित तप करत, काल कछु तहँ गयो ॥
गयो कछु तहं काल तपवल. रिद्धि वस विधि सिद्धिया।
जसु धर्मध्यानवलेन खयगय, सप्त प्रकृति प्रसिद्धया ॥
खिपि सातयें गुण जतनविन तहँ, तीन प्रकृति जु वुधि वढिउ।
करि करण तीन प्रथम सुकलवल, खिपकसेनी प्रभु चढिउ ॥
प्रकृति छतीस नवें-गुण, थान विनासिया।
दसवें सूच्छमलोभ, प्रकृति तहँ नासिया ॥
सुकल ध्यान पद दूजो, पुनि प्रभु पूरियौ।
वारहवें-गुण सोरह, प्रकृति जु चूरियौ ॥
चूरियौ त्रेसठ प्रकृति इहविधि, घातियाकरमनितणी।
तप कियो ध्यानप्रयंत वारह-विधि त्रिलोकसिरोमणी ॥
निःक्रमण कल्याणक सु महिमा, सुनत सव सुख पावहीं।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ १५ ॥

४। ज्ञानकल्याणक।

तेरहवें गुण-थान, सयोगि जिनेसुरो।
अनँतचतुष्टयमंडित, भयो परमेसुरो ॥
समवसरन तव धनपति, वहुविधि निरमयो ॥
आगमजुगतिप्रमान. गगनतल परिठयो ॥
परिठयो चित्र विचित्र मणिमय. सभामंडप सोहए।
तिहिं मध्य वारह वने कोठे. वनक सुरनर मोहए ॥
मुनि कलपवासिनि अरजिका पुनि. ज्योति भौमि-भवननिया।
पुनि भवन व्यंतर नभग सुर नर, पसुनि कोठे वैठिया ॥१६॥

मध्यमदेश तीन, मणिपीठ तहां वने ।
गंधकुटी सिंहासन, कमल सुहावने ॥
तीन छत्र सिर सोहत त्रिभुवन मोहए ।
अंतरीच्छ कमलासन, प्रभुतन सोहए ॥
सोहए चौसठ चमर ढरत, असोकतरु तल छाजए ।
पुनि दिव्यधुनि प्रतिसवदजुत तहँ, देवदुंदुभि वाजए ॥
सुरपुहपवृष्टि सुप्रभामंडल, कोटि रवि छवि छाजए ।
इमि अष्ट अनुपम प्रातिहारज, वर विभूति विराजए ॥ १७ ॥
दुइसै जोजनमान सुभिच्छ चहुं दिसी ।
गगन गमन अरु प्राणी,-वध नहिं अहनिसी ।
निरुपसर्ग निरहार, सदा जगदीसए ।
आनन चार चहूंदिसि, सोभित दीसए ॥
दीसय असेम विसेस विद्या, विभव वर ईसुरपना ।
कायाविवर्जित सुद्ध फटिक समान तन प्रभुका वना ॥
नहिं नयन पलक पतन कदाचित, केस नख सम छाजहीं ।
ये घातियाछयजनित अतिसय, दस विचित्र विराजहीं ॥१८॥
सकल अरथमय मागधि-भाषा जानिये ।
सकल जीवगत मैत्री-भाव वखानिये ॥
सकल रितुज फलफूल, वनस्पति मन हरैं ।
दरपनसम मनि अवनि, पवन गति अनुसरैं ॥
अनुसरैं परमानंद सबको, नारि नर जे सेवता ।
जोजन प्रमाण धरा सुमार्जहिं, जहां मारुत देवता ॥
पुनि करहिं मेघकुमार गंधो,-दक सुवृष्टि सुहावनी ।



पदकमलतर सुर खिपहिं कमलसु, धरणि ससिसोभा बनी ॥

अमल गगन तल अरु दिसि, तहं अनुहारहीं ।
चतुरनिकाय देवगण, जय जयकारहीं ॥
धर्मचक्र चलै आगै, रवि जहँ लाजहीं
पुनि भृंगार-प्रमुख वसु, मंगल राजहीं ॥
राजहीं चौदह चारु अतिशय, देव रचित सुहावने ।
जिनराज केवलज्ञानमहिमा, अवर कहत कहा बने ॥
तव इंद्र आय कियो महोच्छव, सभा सोभा अति बनी ।
धर्मोपदेश दियो तहां, उच्चरिय वानी जिनतनी ॥ २० ॥

छुधा तृषा अरु राग, द्वेष असुहावने ।
जनम जरा अरु मरण, त्रिदोष भयावने ॥
रोग सोग भय विस्मय, अरु निद्रा घनी ।
खेद स्वेद मद मोह, अरति चिंता गनी ॥
गनिये अठारह दोष तिनकरि, रहित देव निरंजनो ।
नव परमकेवललब्धिमंडित, सिवरमनि-मनरंजनो ॥
श्रीज्ञानकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं ।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं ॥ २१ ॥

५। निर्वाण कल्याणक ।

केवलदृष्टि चराचर, देख्यो जारिसो ।
भव्यनिप्रति उपदेस्यो, जिनवर तारिसो ॥
भवभयभीत भविकजन, सरणै आइया ।
रत्नत्रयलच्छन सिवपंथ लगाइया ॥

१ जारिसं-जैसा। २ तारिसं-तैसा।

लगाइया पंथ जु भव्य पुनि प्रभु, तृतिय-सुकल जु पूरियो।
तजि तेरहें गुणथान जोग, अजोगपथपग धारियो॥
पुनि चौदहें चौथे सुकलबल, बहत्तर तेरह हती।
इमि घाति वसुविधि कर्म पहुंच्यो, समयमें पंचमगती॥२२॥

लोकसिखर तनुवात,-वलयमहँ संठियो।
धर्मद्रव्यविन गमन न जिहि आगें कियो॥
मयनरहित मूपोदर, अंवर जारिसो।
किमपि हीन निजतनुतें, भयो प्रभु तारिसो॥
तारिसो पर्जय नित्य अविचल, अर्थपर्जय छनछयी।
निश्चयनयेन अनंतगुण, विवहार नय वसुगुणमयी॥
वस्तु स्वभाव विभावविरहित सुद्ध परिणति परिणयो।
चिद्रूप परमानंदमंदिर, सिद्धपरमातम भयो॥ २३॥

तनुपरमाणू दामिनिपर, सब खिर गये।
रहे सेस नखकेश-रूप, जे परिणये॥
तव हरिप्रमुख चतुरविधि, सुरगण शुभसच्यो।
मायामयि नख केशरहित, जिनतनु रच्यो॥
रचि अगर चंदन प्रमुख परिमल, द्रव्य जिन जयकारियो।
पदपतित अगनिकुमार मुकुटानल, सुविध सँस्कारियो॥
निर्वाणकल्याणक सुमहिमा, सुनत सब सुख पावहीं।
भणि 'रूपचंद' सुदेव जिनवर, जगत मंगल गावहीं॥ २४॥

मैं मति हीन भगति वस भावन भाइया॥
मंगलगीतप्रबंध, सु, जिनगुण गाइया॥
जो नर सुनहिं बखानहिं, सुर धरि गावहीं।

मनवांछित फल सो नर, निहचै पावहीं ॥
पावहीं आठों सिद्धि नवनिधि, मन प्रतीति जो लावहीं ।
भ्रम भाव छूटैं सकल मनके, निजस्वरूप लखावहीं ॥
पुनि हरहिं पातक टरहिं विघन, सु होहिं मंगल नित नये ।
भणि 'रूपचंद' त्रिलोकपति, जिनदेव चउसंघहिं जये ॥

इति रूपचंदकृत पंचमंगल समाप्त ॥ १७ ॥

२५। लघुअभिषेकपाठ।

घृत दुग्ध दधि आदिसे पंचामृत अभिषेक करते समय बोलना। अगर संस्कृत पाठ पढ़ना नहीं आता हो तो आगे छपा हुआ भाषा पंचामृत अभिषेक पाठ करना।

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवंद्य जगत्त्रयेशं स्याद्वादनायकमनंत-चतुष्टयार्हम् । श्रीमूलसंघसुदृशां सुकृतैकहेतुर्जैनेन्द्रयज्ञविधि-रेष मयाभ्यधायि ॥ १ ॥

(इस श्लोकको पढ़कर जिन चरणोंमें पुष्पांजलि छोड़नी चाहिये)

श्रीमन्मन्दरसुंदरे शुचिजलैर्धौतैः सदर्भाक्षतैः
पीठे मुक्तिवरं निधाय रचितं त्वत्पादपद्मस्रजः ।
इन्द्रोऽहं निजभूषणार्थकमिदं यज्ञोपवीतं दधे
मुद्राकंकणशेखरान्यपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे ॥ २ ॥

(इस श्लोकको पढ़कर अभिषेक करनेवालोंको यज्ञोपवीत तथा नाना प्रकारके सुन्दर आभूषण धारण करना चाहिये ।

सौगंध्यसंगतमधुव्रतझंकृतेन, संवर्ण्यमानमिव गंधमनिंद्य-मादौ । आरोपयामि विबुधेश्वरवृन्दवंद्यपादारविंदमभिवंद्य जिनोत्तमानां ॥ ३ ॥

इसे पढ़कर अभिषेक करनेवालोंको अङ्गमें चन्दनके नव तिलक करना चाहिये ।

ये संति केचिदिह दिव्यकुलप्रसूता नागाः प्रभूतबलदर्पयुता विबोधाः। संरक्षणार्थममृतेन शुभेन तेषां प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम्॥ ४॥

(इसको पढ़कर अभिषेकके लिये भूमि या चौकीका प्रक्षालन करे)

क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहैः, प्रक्षालितं सुरवरैर्यद-नेकवारम्। अत्युद्धमुद्यतमहं जिनपादपीठं प्रक्षालयामि भव-संभवतापहारि॥ ५॥

(जिस सिंहासन पर विराजमान करके अभिषेक करना हो उसका प्रक्षालन करे)

श्रीशारदासुमुखनिर्गतबाजवर्णं श्रीमंगलीकवरसर्वजनस्य नित्यं। श्रीमत्स्वयं क्षयति तस्य विनाशविघ्नं श्रीकारवर्णलिखितं जिनभद्रपीठे॥ ६॥

(इस श्लोकको पढ़कर पीठपर श्रीकार लिखना चाहिये)

इंद्राग्निदंडधरनैर्ऋतपाशपाणिवायूत्तरेशशशिमौलिफणींद्रचंद्राः। आगत्य यूयमिह सानुचराः सचिह्नाः स्वं स्वं प्रतीच्छत बलिं जिनपाभिषेके॥ ७॥

(नीचे लिखे मंत्रोंको पढ़कर क्रमसे दश दिक्पालोंके लिये अर्घ चढ़ावे)

१ ओं आं क्रों ह्रीं इंद्र आगच्छ आगच्छ इंद्राय स्वाहा।
२ ओं आं क्रों ह्रीं अग्ने आगच्छ आगच्छ अग्नये स्वाहा।
३ ओं आं क्रों ह्रीं यम आगच्छ आगच्छ यमाय स्वाहा।
४ ओं आं क्रों ह्रीं नैऋत आगच्छ आगच्छ नैऋताय स्वाहा।
५ ओं आं क्रों ह्रीं वरुण आगच्छ आगच्छ वरुणाय स्वाहा।
६ ओं आं क्रों ह्रीं पवन आगच्छ आगच्छ पवनाय स्वाहा।
७ ओं आं क्रों ह्रीं कुबेर आगच्छ आगच्छ कुबेराय स्वाहा।

८ ओं आं क्रों ह्रीं ऐशान आगच्छ आगच्छ ऐशानाय स्वाहा।
९ ओं आं क्रों ह्रीं धरणींद्र आगच्छआगच्छ धरणींद्राय स्वाहा।
१० ओं आं क्रों ह्रीं सोम आगच्छ आगच्छ सोमाय स्वाहा।

इति दिक्पालमंत्राः।

दध्युज्ज्वलाक्षतमनोहरपुष्पदीपैः पात्रार्पितं प्रतिदिनं महतादरेण त्रैलोक्यमंगलसुखानलकामदाहमारार्तिकं तव विभोरवतारयामि

दधि अक्षत पुष्प और दीप रकाबीमें लेकर मंगल पाठ तथा अनेक वादित्रोंके साथ त्रैलोक्यनाथकी आरती उतारनी चाहिये।

यं पांडुकामलशिलागतमादिदेवमस्नापयन्सुरवराः सुरशैल-मूर्ध्नि। कल्याणमीप्सुरहमक्षततोयपुष्पैः संभावयामि पुरएव तदीय विंबं ॥ ९ ॥

जल अक्षत पुष्प लेकर श्रीकार लिखित पीठपर जिनबिंबकी स्थापना करना चाहिये।

सत्पल्लवार्चितमुखान्कलधौतरूप्यताम्रारकूटघटितान्पयसा सुपूर्णान्। संवाह्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान् संस्थापयामि कलशान् जिनवेदिकांते ॥ १० ॥

जिनके मुख सुन्दर पत्तोंसे ढके हुवे सुवर्णादि धातुके चार कलश वेदीके चारों कोनोंमें स्थापन करना चाहिये।

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमलबहुलेनामुना चंदनेन.
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचिसदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्धैः।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मखभवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपैः।
धूपैः प्रायोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि ॥११॥

ओं ह्रीं ... जिनबिंबके सामने अष्ट द्रव्य ...

दूरावनम्रसुरनाथकिरीटकोटीसंलग्नरत्नकिरणच्छविधूसरांघ्रिं।
प्रस्वेदतापमलमुक्तमपि प्रकृष्टैर्भक्त्या जलैर्जिनपतिं बहुधाभिषिंचे

ओं ह्रीं श्रीमंतं भगवंतं कृपालसंतं वृषभादिमहावीरपर्यंत-चतुर्विंशति-तीर्थंकर परमदेवं आद्यानां आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखंडे.........नाम......नगरे मासानामुत्तमेमासे......मासे......पक्षे......शुभदिने मुनि-आर्यिका-श्रावक-श्राविकाणां सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषिंचे, नमः।

(इसे पढ़कर श्रीजिनप्रतिमापर जलके कलशसे धारा छोड़नी चाहिये)

यहां प्रत्येक धाराके बाद "उदकचंदन...आदि श्लोक बोलकर अर्घ चढ़ाना चाहिये।

उत्कृष्टवर्णनवहेमरसाभिरामदेहप्रभावलयसंगमलुप्तदीप्तिम्। धारां घृतस्य शुभगंधगुणानुमेयां वंदेऽर्हतां सुरभिसंस्नपनोपयुक्तां ॥ १३ ॥

(ऊपर लिखे मंत्रमें 'जलेनाभिषिंचे' की जगह 'घृतेनाभिषिंचे' पढ़कर घृतके कलशसे स्नपन करना चाहिये)

संपूर्णशारदशशांकमरीचिजालस्यंदैरिवात्मयशसामिव सुप्रवाहैः क्षीरैर्जिनाः शुचितरैरभिषिच्यमानाः संपादयंतु मम चित्तसमीहितानि ॥ १४ ॥

(ऊपरके मंत्रमें 'जलेन' की जगह 'क्षीरेण' पढ़कर दुग्धके कलशसे अभिषेक करना चाहिये)

दुग्धाब्धिवीचिपयसांचितफेनराशिपांडुत्वकान्तिमवधीरयतामतीव। दध्नां गता जिनपतेः प्रतिमां सुधारा सम्पद्यतां सपदि वांछितसिद्धये नः ॥ १५ ॥

(ऊपर लिखे मंत्रमें 'जलेन' की जगह 'दध्ना' पढ़कर दधिके कलशसे अभिषेक करना चाहिये)

भक्त्या ललाटतटदेशनिवेशितोच्चैः हस्तैश्च्युता सुरवराऽसुरमर्त्यनाथैः। तत्कालपीलितमहेक्षुरसस्य धारा सद्यः पुनातु जिनबिंबगतैव युष्मान् ॥ १६ ॥

(ऊपरके मंत्रमें 'जलेन' की जगह 'इक्षुरसेन' पढ़कर इक्षुरसके कलशसे अभिषेक करना चाहिये)

संस्नापितस्य घृतदुग्धदधीक्षुवाहैः सर्वाभिरौषधिभिरर्हतउज्ज्वलाभिः। उद्वर्तितस्य विदधाम्यभिषेकमेलाकालेयकुंकुमरसोत्कटवारिपूरैः ॥१७॥

(ऊपरके मंत्रमें 'जलेन' की जगह 'सर्वौषधेन' पढ़कर सर्वौषधीके कलशसे अभिषेक करना चाहिये)

द्रव्यैरनल्पघनसारचतुःसमाद्यैरामोदवासितसमस्तदिगंतरालैः मिश्रीकृतेन पयसा जिनपुंगवानां त्रैलोक्यपावनमहं स्नपनं करोमि ॥१८॥

(ऊपरके मंत्रमें 'जलेन' की जगह 'सुगंधजलेन' पढ़कर केसर कर्पूरादिसे सुगंधित पदार्थोंसे बनाये हुये जलसे स्नपन करना चाहिये)

इष्टैर्मनोरथशतैरिव भव्यपुंसां पूर्णैः सुवर्णकलशैर्निखिलैर्वसानैः संसारसागरविलंघनहेतुसेतुमाप्लावये त्रिभुवनैकपतिं जिनेंद्रम् ॥

(ऊपर लिखे मंत्रसे बचे हुये समस्त कलशोंसे अभिषेक करना चाहिये)

मुक्तिश्रीवनिताकरोदकमिदं पुण्यांकुरोत्पादकं
नागेंद्रत्रिदशेंद्रचक्रपदवीराज्याभिषेकोदकम् ॥
सम्यग्ज्ञानचरित्रदर्शनलतासंवृद्धिसंपादकम् ।
कीर्तिश्रीजयसाधकं तव जिन ! स्नानस्य गंधोदकं ॥

(इस श्लोकको पढ़कर गंधोदक अपने अंगमें लगाना चाहिये)

इति श्री लघु अभिषेकविधिः समाप्तः ॥

२६। अथ लघुपंचामृताभिषेक भाषा।

घृत दुग्ध आदिसे पंचामृत अभिषेक करना हो तो यह पाठ बोलना। अथवा उनके अभावमें सिर्फ जलधारासे ही काम लेना।

श्रीजिनवर चौवीस वर, कुनयध्वांतहर भान।
अमितवीर्यदृगबोधसुख, युत तिष्ठौ इह थान ॥ १ ॥

नाराच छंद।

गिरीश सीस पांडुपै, सचीस ईस थापियो।
महोत्सवो अनंदकंदको, सबै तहां कियो॥
हमें सो शक्ति नाहिं, व्यक्त देखि हेतु आपना।
यहां करैं जिनेंद्रचंद्रकी सुबिंब थापना॥ २॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके श्रीवर्णपर जिनबिम्बकी स्थापना करना)

सुंदरी छंद।

कनकमणिमयकुंभ सुहावने। हरि सुछीर भरे अति पावने।
हम सुवासित नीर यहां भरैं। जगत पावन-पांय तरें धरैं॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके वेदीके कोनोंमें चार कलशोंकी स्थापना)

हरिगीतिका छंद।

शुद्धोपयोग समान भ्रमहर, परम सौरभ पावनो।
आकृष्टभृंगसमूह गंग-समुद्भवो अति भावनो॥
मणिकनककुंभ निसुंभकिल्बिष, विमल शीतल भरि धरों।
श्रम स्वेद मल निरवार जिन, त्रय धार दे पांयनि परों॥४॥

(ओं ह्रीं श्रीमगवर्न आदि ५० वें पृष्ठमें छपे मंत्रसे शुद्ध जलकी तीन धारा जिनबिंबपर छोड़ना)

अति मधुर जिनधुनिसम सुप्राणित, प्राणिवर्ग स्वभावसों।
बुधचित्तसम हरिचित्त नित्त, सुमिष्ट इष्ट उछावसों।
तत्काल इक्षुसमुत्थप्रासुक रतनकुंभविषैं भरों।
यमत्राससतापनिवार जिन त्रयधार दे पांयनि परों॥ ५॥

(इक्षुरसकी धारा)

निष्पक्षक्षितसुवर्णमदढमनीय ज्यों विध जैनकी।
आयुप्रदा बलबुद्धिदा रक्षा, सु यों जिय-सैनकी॥
तत्कालमंथित, क्षीर उत्थित, प्राज्य मणिझारी भरों।

दीजे अतुलबल मोहि जिन, त्रयधार दे पांयनि परों ॥ ६ ॥

(घृतरसकी धारा)

शरदभ्र शुभ्र सुहाटकद्युति, सुरभि पावन सोहनो।
क्लीवत्वहर बलधरन पूरन, पयसकल मनमोहनों ॥
कृतउष्ण गोथनतें समाहृत, घट जटित मणिमें भरों।
दुर्बल दशा मो मेट जिन त्रयधार दे पांयनि परों ॥ ७ ॥

(दुग्धकी धारा)

वर विपद जनाचार्य ज्यों मधुराम्लकर्कशता धरें।
शुचिकर रसिक मंथन विमंथन नेह दोनों अनुसरें ॥
गोदधि सुमणि भृंगार पूरन लायकर आगें धरों।
दुखदोष कोप निवार जिन त्रयधार दे पांयनि परों ॥ ८ ॥

(दहीकी धारा)

सर्वौषधी मिलायके, भरि कंचन भृंगार।
जजों चरण त्रयधार दे, तार तार भवतार ॥ ९ ॥

(सर्वौषधिकी धारा)

इति पंचामृताभिषेक भाषा पाठ।

२७। अथ जलाभिषेक वा प्रक्षाल करनेका पाठ।

[प्रक्षाल करते समय बोलना]

जय जय जयवंते सदा, मंगलमूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमों जोरि जुगपान ॥

ढाल मंगलकी छंद अडिल्ल और गीता।

श्रीजिन जगमें ऐसो, को बुधवंत जू। जो तुम गुणवरननि करि पावे अंतजू ॥ इंद्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनी। कहि न सकें तुम गुणगण, हे त्रिभुवनधनी ॥

नाराच छंद।

गिरीश सीस पांडुपे, सचीस ईस थापियो।
महोत्सवो अनंदकंदको, सबै तहां कियो॥
हमें सो शक्ति नाहिं, व्यक्त देखि हेतु आपना।
यहां करें जिनेंद्रचंद्रकी सुबिंब थापना॥ २॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके श्रीवर्णपर जिनबिम्बकी स्थापना करना)

सुंदरी छंद।

कनकमणिमयकुंभ सुहावने। हरि सुछीर भरे अति पावने।
हम सुवासित नीर यहां भरें। जगत पावन-पांय तरें धरें॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करके वेदीके कोनोंमें चार कलशोंकी स्थापना)

हरिगीतिका छंद।

शुद्धोपयोग समान भ्रमहर, परम सौरभ पावनो।
आकृष्टभृंगसमूह गंग-समुद्भवो अति भावनो॥
मणिकनककुंभ निसुंभकिल्विप, विमल शीतल भरि धरों।
श्रम स्वेद मल निरवार जिन, त्रय धार दे पांयनि परों॥४॥

(ओं ह्रीं श्रीभगवंतं आदि ५० वें पृष्ठमें छपे मंत्रसे शुद्ध जलकी तीन बार जिनबिंबपर छोड़ना)

अति मधुर जिनधुनिसम सुप्राणित, प्राणिवर्ग स्वभावसों।
बुधचित्तसम हरिचित्त नित्त, सुमिष्ट इष्ट उछावसों।
तत्काल इक्षुसमुत्थप्रासुक रतनकुंभविषें भरों।
यमत्रासतापनिवार जिन त्रयधार दे पांयनि परों॥ ५॥

(इक्षुरसकी धारा)

निष्टप्तक्षिप्तसुवर्णमदहमनीय ज्यों विध जैनकी।
आयुप्रदा बलबुद्धिदा रक्षा, सु यों जिय-सैनकी॥
तत्कालमंथित, क्षीर उत्थित, प्राज्य मणिझारी भरों।

दीजे अतुलबल मोहि जिन, त्रयधार दे पांयनि परो ॥ ६ ॥

([illegible])

शरदभ्र शुभ्र सुहाटकद्युति, सुरभि पावन सोहनो।
क्लीबत्वहर बलधरन पूरन, पयसकल मनमोहनो ॥
कृतउष्ण गोयनतें समाहृत, घट जटित मणिमें भरो।
दुर्बल दशा मो मेट जिन त्रयधार दे पांयनि परो ॥ ७ ॥

(दुग्धको कलश)

वर विशद जनाचार्य ज्यों मधुराम्लकर्कशता धरें।
शुचिकर रसिक मंथन विमंथन नेह दोनों अनुसरें ॥
...दधि सुमणि भृंगार पूरन लायकर आगे धरों।
दुखदोष कोप निवार जिन त्रयधार दे पांयनि परो ॥ ८ ॥

([illegible] कलश)

सर्वौषधी मिलायके, भरि कंचन भृंगार।
जजों चरण त्रयधार दे, तार तार भवतार ॥ ९ ॥

(सर्वौषधिको कलश)

इति [illegible] ।

अथ जलाभिषेक वा प्रक्षाल करनेका पाठ।

[[illegible]]

...य जय जयवंते सदा, मंगलमूल महान।
...तराग सर्वज्ञ प्रभु, नमों जोरि जुगपान ॥

[illegible]

...जगमें ऐसो, को बुधवंत जू। जो तुम गुणवरननि
...अंतजू ॥ इंद्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनी।
...तुम गुणगण, हे त्रिभुवनधनी ॥

अनुपम अमित तुम गुणनि वारिध, ज्यों अलोकाकाश है।
किमि धरें हम उर-कोशमें सो अकथ गुणमणिराश है॥
पै जिन प्रयोजनसिद्धिकी तुम नामहीमें शक्ति है।
यह चित्तमें सरधान यातें नामहीमें भक्ति है॥ १॥

ज्ञानावरणी दर्शनआवरणी भने। कर्ममोहनी अंतराय चारों हने॥ लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञानमें। इंद्रादिकके मुकुट नये सुरथानमें॥
तव इंद्र जान्यो अवधितें, उठि सुरनयुत वंदत भयो।
तुम पुन्यको प्रेर्यो हरी ह्वै, मुदित धनपतिसों चयो॥
अब वेगि जाय रचो समवसृति सफल सुरपदको करो।
साक्षात श्रीअरहंतके दर्शन करो कल्मष हरो॥ २॥

ऐसे वचन सुने सुरपतिके धनपती। चल आयो तत काल, मोद धारै अती॥ वीतराग छवि देखि शब्द जय जय चयो। दे प्रदक्षिणा बार बार वंदत भयो॥
अति भक्तिभीनो नम्रचित ह्वै, समवसरण रच्यो सही।
ताकी अनूपम शुभगतीको, कहन समरथ कोउ नहीं॥
प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजही।
नग-जडित गंधकुटी मनोहर मध्यभाग विराजहीं॥ ३॥

सिंहासन तामध्य बन्यो अदभुत दिपै। तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै॥ तीन छत्र सिर शोभित चौसठ चमरजी। महाभक्तियुत ढोरत हैं तहां अमरजी॥
प्रभु तरन तारन कमल ऊपर, अंतरीच्छ विराजिया।
यह वीतरागदशा प्रतच्छ विलोकि भविजन सुख लिया॥

मुनि आदि द्वादश सभाके, भवि जीव मस्तक नायकें।
बहुभांति वारंवार पूजें, नमें गुणगण गायकें ॥ ४ ॥
परमौदारिक दिव्य देह पावन सही। क्षुधा तृषा चिं
भय गद दूषण नही ॥ जन्म जरा मृति अरति शोक विस
नसे। राग रोष निद्रा मद मोह सबै खसे ॥
श्रम विना श्रमजलरहित पावन अमल जोतिस्वरूपजी।
शरणागतनिकी अशुचिता हरि, करत विमल अनूपजी ॥
ऐसे प्रभूकी शांति मुद्राको न्हवन जलतें करें।
'जस' भक्तिवश मन उक्तितें हम, भानु ढिंग दीपक धरें ॥५॥
तुम तो सहज पवित्र यही निश्चय भयो।
तुम पवित्रता हेत नही मज्जन ठयो ॥
मै मलीन रागादिक मलतें ह्वै रह्यो।
महा मलिन तनमें वसुविधिवश दुख सह्यो ॥
बीत्यो अनंतो काल यह, मेरी अशुचिता ना गई।
तिस अशुचिताहर एक तुम ही भरहु वांछा चित ठई ॥
अब अष्ट कर्म विनाश सब मलरोषरागादिक हरो।
तन रूप कारागेहतें उद्धार शिववासा करो ॥ ६ ॥
मै जानत तुम अष्ट कर्म हरि शिव गये।
आवागमनविमुक्त रागवर्जित भये ॥ ॥
र तथापि मेरो मनरथ पूरत नही।
नय प्रमानतें जानि महा साता लही ॥
रण तजि न्हवन करनो चितमें ऐसे धरूं।
ान श्रीअरहंतका मानों न्हवन परसन करूं ॥

अनुपम अमित तुम गुणनि वारिध, ज्यों अलोकाकाश है।
किमि धरें हम उर-कोशमें सो अकथ गुणमणिराश है॥
पै जिन प्रयोजनसिद्धिकी तुम नामहीमें शक्ति है।
यह चित्तमें सरधान यातें नामहीमें भक्ति है॥ १॥

ज्ञानावरणी दर्शनआवरणी भने। कर्ममोहनी अंतराय चारों हने॥ लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञानमें। इंद्रादिकके मुकुट नये सुरथानमें॥

तव इंद्र जान्यो अवधितें, उठि सुरनयुत वंदत भयो।
तुम पुन्यको प्रेर्‌यो हरी ह्वै, मुदित धनपतिसों चयो॥
अव वेगि जाय रचौ समवसृति सफल सुरपदको करौ।
साक्षात श्रीअरहंतके दर्शन करौ कल्मष हरौ॥ २॥

ऐसे वचन सुने सुरपतिके धनपती। चल आयो तत काल, मोद धारै अती॥ वीतराग छवि देखि शब्द जय जय चयौ। दे प्रदक्षिणा वार वार वंदत भयो॥

अति भक्तिभीनो नम्रचित ह्वै, समवसरण रच्यौ सही।
ताकी अनूपम शुभगतीको, कहन समरथ कोउ नही॥
प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजही।
नग-जडित गंधकुटी मनोहर मध्यभाग विराजहीं॥ ३॥

सिंहासन तामध्य वन्यो अदभुत दिपै। तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपै॥ तीन छत्र सिर शोभित चौसठ चमरजी। महाभक्तियुत ढोरत है तहां अमरजी॥

प्रभु तरन तारन कमल ऊपर, अंतरीच्छ विराजिया।
यह वीतरागदशा प्रतच्छ विलोकि भविजन सुख लिया॥

मुनि आदि द्वादश सभाके, भवि जीव मस्तक नायकैं।
वहुभांति वारंवार पूजें, नमैं गुणगण गायकैं ॥ ४ ॥
परमौदारिक दिव्य देह पावन सही। क्षुधा तृषा चिंता भय गद दूषण नहीं ॥ जन्म जरा मृति अरति शोक विस्मय नसे। राग रोष निद्रा मद मोह सवै खसे ॥
श्रम विना श्रमजलरहित पावन अमल जोतिस्वरूपजी।
शरणागतनिकी अशुचिता हरि, करत विमल अनूपजी ॥
ऐसे प्रभूकी शांति मुद्राको न्हवन जलतैं करैं।
'जस' भक्ति वश मन उक्तितैं हम, भानु ढिंग दीपक धरैं ॥५॥
तुम तौ सहज पवित्र यही निश्चय भयो।
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो ॥
मैं मलीन रागादिक मलतैं ह्वै रह्यो।
महा मलिन तनमें वसुविधिवश दुख सह्यो ॥
वीत्यो अनंतो काल यह, मेरी अशुचिता ना गई।
तिस अशुचिताहर एक तुम ही भरहु वांछा चित ठई ॥
अव अष्ट कर्म विनास सव मल-रोसरागादिक हरौ।
तन रूप कारागेहतैं उद्धार शिववासा करौ ॥ ६ ॥
मैं जानत तुम अष्ट कर्म हरि शिव गये।
आवागमनविमुक्त रागवर्जित भये ॥ ॥
पर तथापि मेरो मनरथ पूरत सही।
नय प्रमानतैं जानि महा साता लही ॥
पापाचरण तजि न्हवन करतौं चित्तमें ऐसे धरूं।
साक्षात श्रीअरहंतका मानों न्हवन परसन करूं ॥

ऐसे विमल परिणाम होतें अशुभ नसि शुभबंधतें ।
विधि अशुभ नसि शुभबंधतें ह्वै शर्म सब विधि तासतें ॥७॥
पावन मेरे नयन, भये तुम दरसतें ।
पावन पानि भये तुम-चरननि परसतें ॥
पावन मन ह्वै गयो, तिहारे ध्यानतें ।
पावन रसना मानी, गुणगण गानतें ॥
पावन भई परजाय मेरी, भयो मैं पूरणधनी ।
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्ण भक्ति नहीं बनी ॥
धन धन्य ते बडभागि भवि, तिन नीव शिवघरकी धरी ।
वर क्षीरसागर आदि जलमणि,-कुंभभरि भक्ती करी ॥८॥
विघनसघनवनदाहन-दहन प्रचंड हो ।
मोह महातम दलन, प्रबल मारतंड हो ॥
ब्रह्मा विष्णु महेश, आदि संज्ञा धरो ।
जगविजयी जमराज, नाश ताको करो ॥
आनंद कारण दुखनिवारण, परम मंगल मय सही ।
मोसों पतित नहिं और तुमसों, पतिततार सुन्यो नहीं ॥
चिंतामणी पारस कल्पतरु, एक भव सुखकार ही ।
तुम भक्तिनवका जे चढैं ते, भये भवदधि पार ही ॥ ९ ॥

दोहा ।

तुम भवदधितैं तरि गये, भये निकल अविकार ।
तारतम्य इस भक्तिको, हमैं उतारो पार ॥ १० ॥

इति दौलतरामकृत अभिषेकपाठ ॥

२८। विनयपाठ दोहावली।

इहिविधि ठाडो होयके, प्रथम पढै जो पाठ। धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ ॥ १ ॥ अनँत चतुष्टयके धनी तुमही हो शिरताज ॥ मुक्ति वधूके कंथ तुम, तीन भुवनके राज ॥ २ ॥ तिंहु जगकी पीड़ा हरण, भवदधि शोषनहार ॥ ज्ञायक हो तुम विश्वके. शिव सुखके करतार ॥ ३ ॥ हरता अघ अँधियारके, करता धर्म प्रकाश ॥ थिरतापद दातार हो, धरता निजगुण रास ॥ ४ ॥ धर्मामृत उर जलधिसों, ज्ञान-भानु तुम रूप। तुमरे चरण सरोजको, नावत तिहुं जग भूप ॥ ५ ॥ मैं वंदों जिनदेवकों. कर अतिनिरमल भाव ॥ कर्म-बंधके छेदने, और न कछू उपाव ॥ ६ ॥ भविजनकों भवि कूपतें, तुमही काढन हार ॥ दीनदयाल अनाथ पति, आतम गुण भंडार ॥ ७ ॥ चिदानंद निर्मल कियो, धोय कर्म रज मैल ॥ सरल करी या जगतमें, भविजनको शिव गैल ॥ ८ ॥ तुम पद पंकज पूजतें, विघ्नरोग टर जाय ॥ शत्रु मित्रता को धरें, विष निरविषता थाय। चक्री खग धर इंद्र पद, मिलें आपतें आप ॥ अनुक्रम कर शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप ॥१०॥ तुम विन मैं व्याकुल भयो. जैसे जल विन मीन। जन्म जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन ॥ ११ ॥ पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव। अंजनसे तारे कुधी जय जय जय जिनदेव ॥ १२ ॥ थकी नाव भविदधिविषैं, तुम प्रभु पार करेय। खेवटिया तुम हो प्रभू, जय जय जय जिनदेव ॥१३॥ राग सहित जगमें रुल्यो. मिले सरागी देव।

स्वभावमहिमोदयसुस्थिताय । स्वस्ति प्रकाशसहजोर्ज्जित-दृङ्मयाय, स्वस्ति प्रसन्नललिताद्भुतवैभवाय ॥९॥ स्वस्त्युच्छलद्विमलबोधसुधाप्लवाय, स्वस्ति स्वभावपरभावविभासकाय स्वस्ति त्रिलोकविततैकचिदुद्गमाय, स्वस्ति त्रिकालसकलायतविस्तृताय ॥ १० ॥ द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं, भावस्य शुद्धिमधिकामधिगंतुकामः । आलंबनानि विविधान्यवलंब्यवल्गन् भूतार्थयज्ञपुरुषस्य करोमि यज्ञं ॥ ११ ॥ अर्हत्पुराणपुरुषोत्तमपावनानि, वस्तून्यनूनमखिलान्ययमेकएव। अस्मिन् ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ, पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥

(पुष्पांजलि क्षेपण करना)

श्रीवृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअजितः । श्रीसंभवः स्वस्ति स्वस्ति श्रीअभिनंदनः । श्रीसुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीपद्मप्रभः । श्रीसुपार्श्वः स्वस्ति स्वस्ति श्रीचंद्रप्रभः । श्रीपुष्पदंतः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशीतलः । श्रीश्रेयान्सि स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्यः । श्रीविमलः स्वस्ति, स्वस्ति, श्रीअनन्तः । श्रीधर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीशांतिः । श्रीकुंथुः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीअरनाथः। श्रीमल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीमुनिसुव्रतः । श्रीनमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्रीनेमिनाथः। श्रीपार्श्वः स्वस्ति स्वस्ति श्रीवर्द्धमानः ।

(पुष्पांजलिक्षेपण)

नित्याप्रकंपाद्भुतकेवलौघाः स्फुरन्मनःपर्ययशुद्धबोधाः ।
दिव्यावधिज्ञानबलप्रबोधाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१॥

[illegible] पुष्पांजलि क्षेपण करना चाहिये)

कोष्ठस्थधान्योपममेकबीजं संभिन्नसंश्रोतृपदानुसारि ।

चतुर्विधं बुद्धिबलं दधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥२॥
संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरादास्वादनघ्राणविलोकनानि ।
दिव्यान्मतिज्ञानबलाद्वहंतः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥
प्रज्ञाप्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः प्रत्येकबुद्धा दशसर्वपूर्वैः ।
प्रवादिनोऽष्टांगनिमित्तविज्ञाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ।
जंघावलिश्रेणिफलांबुतंतुप्रसूनबीजांकुरचारणाह्वाः ।
नभोंगणस्वैरविहारिणश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥
अणिम्नि दक्षाः कुशला महिम्नि लघिम्नि शक्ताः कृतिनो गरिम्णि । मनोवपुर्वाग्बलिनश्च नित्यं स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥ ६ ॥ सकामरूपित्ववशित्वमैश्यं प्राकाम्यमंतर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः । तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयोः न ॥ ७ ॥ दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः । ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरंतः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥८॥ आमर्षसर्वौषधयस्तथाशीर्विषंविषा दृष्टिविषंविषाश्च । सखिल्ल विड्जल्लमलौषधीशाः स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥

क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवंतो मधु स्रवंतोऽप्यमृतं स्रवंतः ।
अक्षीणसंवासमहानसाश्च स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥१०॥

इति स्वस्ति मङ्गलविधानं ।

नित्यं निःस्वेदत्वं निर्मलता क्षीरगौररुधिरत्वं च ।
स्वाद्याकृतिसंहनने सौरूप्यं सौरभं च सौलक्ष्यम् ।
अप्रमितवीर्यता च प्रियहितवादित्वमन्यदमितगुणस्य ।
प्रथिता दश विख्याता स्वतिशयधर्माः स्वयंभुवो देहस्य ॥ १ ॥

ये पूजां जिननाथशास्त्रयमिनां भक्त्या सदा कुर्वते
त्रैसंध्यं सुविचित्रकाव्यरचनामुच्चारयंतो नराः ।
पुण्याढ्या मुनिराजकीर्तिसहिता भूत्वा तपोभूषणां-
स्ते भव्याः सकलाववोधरुचिरां सिद्धिं लभन्ते पराम् ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पाजलि क्षेपण करना)

वृषभोऽजितनामा च संभवश्चाभिनंदनः । सुमतिः पद्मभासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥ १ ॥ चंद्राभः पुष्पदंतश्च शीतलो भगवान्मुनिः । श्रेयांश्च वासुपूज्यश्च विमलो विमलद्युतिः ॥२॥ अनंतो धर्मनामा च शांतिःकुन्थुर्जिनोत्तमः । अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो नमितीर्थकृत् ॥ ३ ॥ हरिवंशसमुद्भूतोऽरिष्टनेमिर्जिनेश्वरः । ध्वस्तोपसर्गदैत्यारिः पार्श्वो नागेंद्रपूजितः । कर्मांतकृन्महावीरः सिद्धार्थकुलसंभवः । एते सुरासुरौघेण पूजिता विमलत्विषः ॥ ५ ॥ पूजिता भरताद्यैश्च भूपेंद्रैर्भूरिभूतिभिः । चतुर्विधस्य संघस्य शांतिं कुर्वंतु आश्वतीं ॥६॥ जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्तिः सदास्तु मे । सम्यक्त्वमेव संसारवारणं मोक्षकारणम् ॥ ७ ॥ (पुष्पांजलि क्षेपण करना)
श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः श्रुतेभक्तिः सदाऽस्तु मे ।
सज्ज्ञानमेव संसारवारणं मोक्षकारणं ॥ ८ ॥ पुष्पांजलिम्०
गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिः सदाऽस्तु मे ।
चारित्रमेव संसारवारणं मोक्षकारणं ॥ ९ ॥ पुष्पांजलिम्०

अथ देवजयमाला प्राकृत ।

वत्ताणुट्ठाणे जणधणुदाणे पइपोमिउ तुहु खत्तधरु ।
तुहु चरण विहाणे केवलणाणे तुहु परमप्पउ परमपरु ॥१॥

जय रिसहरिसीसर मणियपाय। जय अजिय जियंगमरोसराय
जय संभव संभवकयवियोय। जय अहिणंदण णंदियपओय
जय सुमइ सुमइसम्मयपयास। जय पउमप्पह पउमाणिवास
जय जयहि सुपास सुपासगत्त। जय चंदप्पह चंदाहवत्त ॥३॥
जय पुप्फयंत दंततरंग। जय सीयल सीयलवयणभंग।
जय सेय सेयकिरणोहसुज्ज। जय वासुपुज्ज पुज्जाणपुज्ज ॥४॥
जय विमल विमलगुणसेढिठाण। जय जयहि अणंताणंतणाण
जय धम्म धम्मतित्थयर संत। जय सांति सांति विहियायवत्त
जय कुंथु कुंथुपहुअंगिसदय। जय अर अर माहर विहियसमय
जय मल्लि मल्लिआदामगंध। जय मुणिसुव्वयसुव्वयणिबंध ॥
जय णमि णमियामरणियरसामि। जय णेमि धम्मरहचक्कणेमि।
जय पास पासछिंदणकिवाण। जय वड्ढमाण जसवड्ढमाण।७।

घत्ता।

इह जाणिय णामहिं दुरियविरामहिं परहिंवि णमिय सुरावलिहिं
अणहणहिं अणाइहिं समियकुवाइहिं पणविवि अरंहतावलिहिं॥
ओं ह्रीं वृषभादिमहावीरांत चतुर्विंशतिजिनेभ्यो निर्वपामीति स्वाहा।

अथ शास्त्रजयमाला।

संपइसुहकारण कम्मवियारण भवसमुद्दतारणतरणं।
जिणवाणि णमस्समि सत्तिपयासमि सग्गमोक्खसंगमकरणं॥
जिणंदमुहाओ विणिग्गयतार। गणिंदविगुंफिय गंथपयार।
तिलोयहिमंडण धम्मह खाणि। सयापणमामि जिणिंदह वाणि
अवग्गह ईह अवाय जु एहिं। सुधारण भेयहिं तिण्णि सएहिं।
मई छत्तीस बहुप्पमुहाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि॥

सुदं पुण दोण्णि अणेयपयार। सुवारह भेय जगत्तयसार ॥
सुरिंदणरिंदसमुच्चिओ जाणि। सया पणमामि जिणिंदहवाणि।
जिणिंदगणिंदणरिंदह रिद्धि। पयासइ पुण्ण पुराकिउलद्धि ॥
णिउग्गुपद्दिल्लउ एहु वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि
जु लोय अलोयह जुत्ति जणेइ। जु तिण्णि वि कालसरूव भणेइ
चउग्गइ लक्खण दुज्जउ जाणि। सयापणमामि जिणिंदह वाणि
जिणिंदचरित्तविचित्त मुणेइ। सुसावइधम्मह जुत्ति जणेइ ॥
णिउग्गु वि तिज्जउ इत्थु वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि
सुजीव अजीवह तच्चह चक्खु। सुपुण्ण विपाव विबंध विमुक्खु
चउत्थुणिउग्गुविभासिय जाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि
तिभेयहिं ओहिविणाणविचित्तु। चउत्थु रिजोविउलं मइउत्तु।
सुखाइय केवलणाण वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि
जिणिंदह णाणु जगत्तयभाणु। महातमणासिय सुक्खणिहाणु
पयच्चउ भत्तिभरेण वियाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि
पयाणि सुवारहकोडि सयेण। सुलक्खतिरासिय जुत्तिभरेण
सहस्स अट्ठावण पंच वियाणि। सया पणमाणि जिणिंदह वाणि
इकावण कोडिउ लक्ख अठेव। सहसचुलसीदिसया छक्केव।
सढाइगवीसह गंथपयाणि। सया पणमामि जिणिंदह वाणि।

घत्ता।

इह जिणवरवाणि विसुद्धमई। जो भवियण णियमण धरई।
सो सुरणरिंद संपइ लहई। केवलणाण वि उत्तरई ॥ ११ ॥
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुतज्ञानायार्घं

अथ गुरु जयमाला प्राकृत ।

भवियह भवतारण, सोलहकारण, अज्जवि तित्थयरत्तणहं ।
तवकम्म असंगइ दयधम्मंगइ पालवि पंच महव्वयहं ॥ १ ॥
वंदामि महारिसि सीलवंत । पंचेंदियसंजम जोगजुत्त ॥
जे ग्यारह अंगह अणुसरंति । जे चउदह पुव्वह मुणि थुणंति ॥
पादाणुसारवर कुट्ठवुद्धि । उप्पण्णु जाह आयासरिद्धि ॥
जे पाणाहारी तोरणीय । जे रुक्खमूल आतावणीय ॥ ३ ॥
जे मोणिधाय चंदाहणीय जे जत्थत्थवणि णिवासणीय ॥
जे पंचमहव्वय धरणधीर । जे समिदिगुत्ति पालणहि वीर ॥
जे वड्ढहिं देहविरत्तचित्त । जे रायरोसभयमोहचत्त ॥
जे कुगइहि संवरु विगयलोह । जे दुरियविणासणकामकोह ॥
जे जल्लमल्लतणलित्त गत । आरंभपरिग्गह जे विरत्त ॥
जे तिण्णकाल वाहर गमंति । छट्ठट्ठम दसमउ तउ चरंति ॥६॥
जे इक्कगास दुइगास लिंति, जे णीरसभोयण रइ करंति ॥
ते मुणिवर वंदउं ठियमसाण । जे कम्मडहइ वर सुक्कझाण ॥
वारह विह संजम जे धरंति । जे चारिउ विकहा परिहरंति ॥
वावीस परीसह जे सहंति । संसारमहण्णउ ते तरंति ॥ ८ ॥
जे धम्मवुद्धि महियलि थुणंति । जे काउस्सग्गो णिस गमंति
जे सिद्धविलासणि अहिलसंति । जे पक्खमास आहार लिंति ॥
गोदूहण जे वीरासणीय । जे धणुहसेज वज्जासणीय ॥
जे तववलेण आयास जंति । जे गिरिगुहकंदर विवर थंति ॥
जे सत्तुमित्त समभाव चित्त । ते मुनिवर वंदउं दिढचरित्त ॥
चउवीसह गंथह जे विरत्त । ते मुनिवर वंदउं जगपवित्त ॥११॥

जे सुज्झाणिज्झा एक चित्त । वंदामि महारिसि मोखपत्त ॥
रणयत्तयरंजिय सुद्ध भाव । ते मुणिवर वंदउं ठिदिसहाव ॥
घत्ता—जे तपसूरा, संजमधीरा. सिद्धवधू अणुराईया ।
रयणत्तयरंजिय, कम्मह गंजिय, ते ऋषिवर मइ झाईया ॥
ओं ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो महार्घं०

३० । अथ देवशास्त्रगुरुकी भाषा पूजा ।

अडिल्ल छंद ।

प्रथमदेव अरहंत सुश्रुतसिद्धांतजू । गुरु निरग्रंथ महंत मुकतिपुरपंथजू ॥ तीन रतन जगमाहिं सो ये भवि ध्याइये । तिनकी भक्ति प्रशाद परमपद पाइये ॥ १ ॥

दोहा—पूजों पद अरहंतके, पूजों गुरुपद सार ।
पूजों देवी सरस्वती, नितमति अष्टप्रकार ॥ २ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह ! अत्रावतरावतर । संवौषट् । ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठ: ठ: । ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुसमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

गीता छंद

सुरपति उरगनरनाथ तिनकर, वंदनीक सुपदप्रभा ।
अति शोभनीक सुवरण उज्जल, देख छवि मोहित सभा ॥
वर नीर क्षीरसमुद्रघटभरि, अग्र तसु बहुविधि नचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥१॥
दोहा—मलिन वस्तु हरलेत सब, जल स्वभाव मलछीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ १ ॥
ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥१॥

जे त्रिजग उदरमझार प्रानी, तपतअति दुद्धर खरे ।
तिन अहितहरन सुवचन जिनके परमशीतलता भरे ॥

तसु भ्रमरलोभित घ्राण पावन, सरस चंदन घिसि सचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नित पूजा रचूं ॥ २ ॥
दोहा—चंदन शीतलता करै, तपतवस्तु परवीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ २ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

यह भवसमुद्र अपार तारण,—के निमित्त सु विधि ठई ।
अति दृढ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही ॥
उज्जल अखंडित सालि तंदुल, पुंज धरि त्रयगुण जचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥३॥
दोहा—तंदुल सालि सुगंधिअति, परम अखंडित बीन ।
जासों पूजों परमपद. देव शास्त्र गुरु तीन ॥३॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

जे विनयवंत सुभव्यउरअंबुजप्रकाशन भान हैं ।
जे एक मुख चारित्र भाषत, त्रिजगमांहिं प्रधान हैं ।
लहि कुंदकमलादिक पहुप, भव भव कुवेदनसों बचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥४॥
दोहा—विविधभांति परिमल सुमन, भ्रमर जास आधीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अतिसबल मदकंदर्प जाको, क्षुधाउरग अमान है ।
दुस्सह भयानक तासु नाशनको सु गरुडसमान है ॥
उत्तम छहों रसयुक्त नित नैवेद्य करि घृतमें पचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ५ ॥

दोहा- नानाविधि संयुक्तरस, व्यंजन सरस नवीन ।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरुतीन ॥५॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

जे त्रिजग उद्यम नाश कीने, मोहतिमिर महाबली ।
तिहि कर्मघातीज्ञानदीपप्रकाशजोति प्रभावली ॥
इह भांति दीप प्रजाल कंचनके सुभाजनमें खचूं ।
अरहंत श्रुत सिद्धांतगुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥६॥
दोहा—स्वपरप्रकाशक जोति अति, दीपक तमकरि हीन ।
जासों पूजों परमपद, देवशास्त्र गुरु तीन ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्निसमूह सम उद्धत लसै ।
वर धूप तासु सुगंधताकरि सकल परिमलता हंसै ॥
इह भांति धूप चढ़ाय नित, भवज्वलनमाहिं नहीं पचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥७॥
दोहा—अग्निमांहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

लोचन सुरसना घ्रान उर, उत्साहके करतार हैं ।
मोपै न उपमा जाय वरणी, सकलफलगुणसार हैं ॥
सो फल चढ़ावत अर्थपूरन, परम अमृतरस सचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ ८ ॥
दोहा—जो प्रधानफल फलविषै, पंचकरण-रसलीन ।
जासों पूजों परमपद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥८॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूं ।
वर धूप निरमल फल विविध, वहुजनमके पातक हरूं ॥
इहभांति अर्घ चढाय नित भवि, करत शिवपंकतिमचूं ।
अरहंत श्रुतसिद्धांत गुरुनिरग्रंथ नितपूजा रचूं ॥ १ ॥
दोहा—वसुविधि अर्घ सँजोयके, अति उछाह मन कीन ।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥९॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला ।

दोहा—देवशास्त्रगुरु रतन शुभ, तीनरतनकरतार ।
भिन्न भिन्न कहुं आरती, अल्प सुगुणविस्तार ॥ १ ॥

पद्धरि छन्द ।

छहकर्मकि त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादशदोषराशि ।
जे परम सुगुण हैं अनँत धीर, कहवतके छ्यालिस गुण गँभीर ॥
शुभ समवसरणशोभा अपार, शत इंद्र नमत कर सीस धार ।
देवाधिदेव अरहंत देव, वंदों मनवचतनकरि सु सेव ॥ ३ ॥
जिनकी धुनि है ओंकाररूप, निरअक्षरमय महिमा अनूप ।
दश अष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत ॥ ४ ॥
सो स्यादवादमय सप्तभंग, गणधर गूंथे वारह सु अंग ।
रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमों वहु प्रीति ल्याय
गुरु आचारज उवझाय साधु, तन नगन रतनत्रयनिधि अगाध ।
संसारदेहवैराग धार, निरवांछि तपें शिवपद निहार ॥ ६ ॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठवीस, भवतारनतरन जिहाज ईस ।
गुरुकी महिमा वरनी न जाय, गुरुनाम जपों मनवचनकाय ॥७॥

सोरठा—कीजे शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरे।
'द्यानत' सरधावान, अजर अमरपद भोगवै ॥८॥

ओं ह्रीं देवशास्त्रगुरुभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सूचना—आगे जिन भाईको नित्यपूजा लिखना हो, वह नीचे लिखे अनुसार बीस तीर्थंकरोंकी भाषा पूजा करें। यदि लिखना नहीं हो, तो इस पूजाके आगे पृष्ठ ८५ में जो अर्घ लिखा है उसको पढ़कर अर्घ चढ़ावें।

३१। श्रीविसि तीर्थंकरपूजा भाषा।

दीप अढ़ाई मेरु पन, अब तीर्थंकर बीस।
तिन सबकी पूजा करूं, मनवचतन धरि सीस ॥ १ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र अवतरत अवतरत। संवौषट्।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः।
ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकराः! अत्र मम सन्निहिता भवत भवत। वषट्।

इन्द्र फनींद्र नरेंद्र वंद्य, पद निर्मल धारी।
शोभनीक संसार, सारगुण हैं अविकारी ॥
क्षीरोदधि सम नीरसों (हो), पूजौं तृषा निवार ॥
सीमंधर जिन आदि दे, बीस विदेहमंझार ॥
श्रीजिनराज हो भव, तारणतरण जहाज ॥ १ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥

(इस पूजामें बीस पुंज करना हो, तो इस प्रकार मंत्र बोलना चाहिये।)

ओं ह्रीं सीमंधर-युगमंधर-बाहु-सुबाहु-संजातक-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनंतवीर्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-भद्रबाहु-भुजंगम-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरसेन-महाभद्र-देवयशोऽजितवीर्येति विंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥

तीनलोकके जीव, पाप आताप सताये।
तिनकों साता दाता, शीतल वचन सुहाये॥

बावन चंदनसों जजूं (हो) भ्रमनतपत निरवार। सीमं०॥२॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥२॥

(इसके स्थानमें यदि इच्छा हो, तो यह मंत्र पढ़े)

यह संसार अपार, महासागर जिनस्वामी।
तातें तारे बडी भक्ति—नौका जगनामी॥
तंदुल अमल सुगंधसों (हो) पूजों तुम गुणसार। सीमं० ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

भविक-सरोज-विकाश, निंद्यतमहर रविसे हो।
जति श्रावक आचार, कथनको, तुमही वडे हो॥
फूलसुवास अनेकसों (हो), पूजों मदन प्रहार। सीमं०॥४॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा

कामनाग विषधाम,-नाशको गरुड कहे हो।
छुधा महादवज्वाल, तासुको मेघ लहे हो॥
नेवज बहुघृत मिष्टसों (हो), पूजों भूखविडार। सीमं० ॥५

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्व० स्वाहा ॥५॥

उद्यम होन न देत, सर्व जगमाहिं भर्यो है।
मोह महातम घोर, नाश परकाश कर्यो है॥
पूजों दीपप्रकाशसों (हो) ज्ञानज्योतिकरतार। सीमं० ॥६॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा

कर्म आठ सब काठ,—भार विस्तार निहारा।
ध्यान अगनिकर प्रगट, सरव कीनो निरवारा॥
धूप अनूपम खेवतें (हो), दुःख जलैं निरधार। सीमं॥७॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

मिथ्यावादी दुष्ट, लोभअहंकार भरे हैं।

सबको छिनमें जीत, जैनके मेर खरे हैं॥
फल अति उत्तमसों जजों (हो), वांछितफलदातार। सीमं०।८।

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल आठों दर्व, अरघ कर प्रीति धरी है।
गणधर इंद्रनिहूतें, थुति पूरी न करी है।
'द्यानत' सेवक जानके (हो) जगतें लेहु निकार। सीमं०॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

अथ जयमाला आरती।

सोरठा—ज्ञानसुधाकर चंद, भविकखेतहित मेघ हो।
भ्रमतमभान अमंद, तीर्थंकर बीसों नमों॥१॥

चौपई १६ मात्रा।

सीमंधर सीमंधर स्वामी। जुगमंधर जुगमंधर नामी।
बाहु बाहु जिन जगजन तारे। करम सुबाहु बाहुबल दारे॥१॥
जात सुजात केवलज्ञानं। स्वयंप्रभू प्रभु स्वयं प्रधानं।
ऋषभानन ऋषि भानन दोषं। अनंतवीरज वीरजकोषं॥२॥
सौरीप्रभ सौरीगुणमालं। सुगुण विशाल विशाल दयालं।
वज्रधार भवगिरिवज्जर हैं। चंद्रानन चंद्रानन वर हैं॥३॥
भद्रबाहु भद्रनिके करता। श्रीभुजंग भुजंगम हरता।
ईश्वर सबके ईश्वर छाजैं। नेमिप्रभु जस नेमि विराजैं॥४॥
वीरसेन वीरं जग जानै। महाभद्र महभद्र बखानै॥
नमौं जसोधर जसधरकारी। नमौं अजितवीरज बलधारी॥
धनुष पांचसै काय विराजै। आव कोडिपूरव सब छाजै॥
समवसरण शोभित जिनराजा। भवजलतारनतरन जिहाजा॥

सम्यक रत्नत्रयनिधिदानी। लोकालोक प्रकाशक ज्ञानी ॥
शत इंद्रनिकरि वंदित सोहैं। सुरनर पशु सबके मन मोहैं ॥
दोहा—तुमको पूजै वंदना, करै धन्य नर सोय।
'द्यानत' सरधा मन धरै, सो भी धरमी होय ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

२२। अथ विद्यमान बीस तीर्थंकरोंका अर्घ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः।
धवल मंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनराजमहं यजे ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीसीमंधरयुगमंधरबाहुसुबाहुसंजातस्वयंप्रभऋषभाननअनन्तवीर्यसूरप्रभ-विशालकीर्तिवज्रधरचंद्राननभद्रबाहुभुजंगमईश्वरनेमिप्रभवीरसेनमहाभद्रदेवयशअजित-वीर्येति विंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीतिस्वाहा।

२३। अकृतिम चैत्यालयोंके अर्घ।

कृत्याकृत्रिमचारुचैत्यनिलयान् नित्यंत्रिलोकीगतान्।
वंदे भावनव्यंतरान् द्युतिवरान् स्वर्गामरावासगान् ॥
सद्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैर्
द्रव्यैर्नीरमुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शांतये ॥ १ ॥

ओं ह्रीं कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसंबंधिजिनबिंबेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

वर्षेषु वर्षांतरपर्वतेषु नंदीश्वरे यानि च मंदरेषु।
यावंति चैत्यायतनानि लोके सर्वाणि वंदे जिनपुंगवानां ॥२॥
अवनितलगतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां ॥
वनभवनगतानां दिव्यवैमानिकानां ॥
इह मनुजकृतानां देवराजार्चितानां।
जिनवरनिलयानां भावतोऽहं स्मरामि ॥ ३ ॥

जंबूधातकिपुष्करार्धवसुधाक्षेत्रत्रये ये भवाँश्
चंद्रांभोजशिखंडिकंठकनकप्रावृड्घना भाजिनाः ॥
सम्यग्ज्ञानचरित्रलक्षणधरा दग्धाष्टकर्मेन्धनाः ।
भूतानागतवर्तमानसमये तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥४॥

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे शाल्मलौ जंबुवृक्षे,
वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकररुचिके कुंडले मानुषांके ।
इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुखशिखरे व्यंतरे स्वर्गलोके,
ज्योतिर्लोकेऽभिवंदे भुवनमहितले यानि चैत्यालयानि ॥५॥

द्वौ कुंदेन्दुतुषारहारधवलौ द्वाविंद्रनीलप्रभौ ।
द्वौ बंधूकसमप्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियंगुप्रभौ ।
शेषाः षोडश जन्ममृत्युरहिताः संतप्तहेमप्रभास्
ते संज्ञानदिवाकराः सुरनुताः सिद्धिं प्रयच्छंतु नः ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं त्रिलोकसंबंधि-कृत्याकृत्रिमचैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

इच्छामि भंते चेइयभत्ति काओसग्गो कओ तस्सालोचेओ अहलोय तिरियलोय उड्ढलोयम्मि किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिण चेयाणि ताणि सव्वाणि, तीसुवि लोयेसु भवणवासिय-वाणविंतरजोयसियकप्पवासियत्ति चउविहा देवा सपरिवारा दिव्वेण गंधेण दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धुव्वेण दिव्वेण चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकालं अच्चंति पुज्जंति वंदंति णमस्संति । अहमवि इहसंतो तत्थसंताइं णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वंदामि णमस्सामि दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमण समाहिमरण जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं

(इत्याशीर्वादः पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अथ पौर्वाह्निक-माध्याह्निक-आपराह्निकदेववंदनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजावंदनास्तवसमेतं श्री पंचमहागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

णमो अरहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आइरीयाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ॥१॥

तावकायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि।

३४। अथ सिद्धपूजा द्रव्याष्टक।

ऊर्ध्वाधो रयुतं सबिंदु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं।
वर्गापूरितदिग्गतांबुजदलं तत्संधितत्वान्वितं ॥
अंतःपत्रतटेष्वनाहतयुतं ह्रींकारसंवेष्टितं।
देवं ध्यायति यः स मुक्तिसुभगो वैरीभकंठीरवः ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते! सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

निरस्तकर्मसंबंधं, सूक्ष्मं नित्यं निरामयम्।
वंदेऽहं परमात्मानममूर्तमनुपद्रवम् ॥ १ ॥

(सिद्धियंत्रकी स्थापना)

जिनको बिना द्रव्य चढ़ाये भावोंसे द्रव्योंसे ही पूजा करना हो, वे आगे पृष्ठ ८६ में भावाष्टक है उसको बोलकर करें।

द्रव्याष्टक।

सिद्धौ निवास मनुगं परमात्मगम्यं हान्यादिभावरहितं भव-

वीतकायं। रेवापगावरसरोयमुनोद्भवानां नीरैर्यजेकलशगैर्वर-
सिद्धचक्रं ॥१॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति०

आनंदकंदजनकं घनकर्ममुक्तं सम्यक्त्वशर्मगरिमं जननार्ति
वीतं। सौरभ्यवासितभुवं हरिचंदनानां गंधैर्यजे परिमलैर्वरसिद्ध
चक्रं ॥ २ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामि०

सर्वावगाहनगुणं सुसमाधिनिष्ठं, सिद्धं स्वरूपनिपुणं कमलं
विशालं। सौगंध्यशालिवनशालिवराक्षतानां, पुंजैर्यजे शशि
निभैर्वरसिद्धचक्रम् ॥३॥

ओं ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामि०

नित्यं स्वदेहपरिमाणमनादि संज्ञं, द्रव्यानपेक्षममृतं मरणाद्य-
तीतम्। मंदारकुंदकमलादिवनस्पतीनां, पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वर
सिद्धचक्रम् ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामि०

ऊर्ध्वस्वभावगमनं सुमनोव्यपेतं, ब्रह्मादिबीजसहितं गगनाव-
भासम्। क्षीरान्नसाज्यवटकै रसपूर्णगर्भैर्नित्यं यजे चरुवरै-
र्वरसिद्धचक्रं ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामि०

आतंकशोकभयरोगमदप्रशांतं, निर्द्वंद्वभावधरणं महिमानिवेशं
कर्पूरवर्तिबहुभिः कनकावदातै, र्दीपैर्यजे रुचिवरैर्वरसिद्धचक्रम्

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपा०

पश्यन्समस्तभुवनं युगपन्नितांतं, त्रैकाल्यवस्तु विषये निविड

प्रदीपम् । सद्द्रव्यगंधघनसारविमिश्रितानां, धूपैर्यजे परिमलै-
र्वरसिद्धचक्रम् ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं सिद्ध चक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामि० ॥

सिद्धासुरादिपतियक्षनरेंद्रचक्रैर्ध्येयंशिवं सकलभव्यजनैःसुवंद्यं ।
नारिंगपूगकदलीफलनारिकेलैः सोऽहं यजे वरफलैर्वरसिद्धचक्रं

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामि० ॥

गंधाढ्यं सुपयो मधुव्रतगणैः संगं वरं चंदनं ।
पुष्पौघं विमलं सदक्षतचयं रम्यं चरुं दीपकं ॥
धूपं गंधयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये ।
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वांछितं ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं श्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनंतवीर्यं
कर्मौघकक्षदहनं सुखशस्यबीजं वंदे सदा निरुपमं वरसिद्धचक्रं

ओं ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

त्रैलोक्येश्वरवंदनीयचरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं
यानाराध्य निरुद्धचंडमनसः संतोऽपि तीर्थंकराः ।
सत्सम्यक्त्वविबोधवीर्यविशदाऽव्याबाधताद्यैर्गुणैर्
युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान् ॥

(पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

अथ जयमाला ।

विराग सनातन शांत निरंश । निरामय निर्भय निर्मल हंस ॥
सुधाम विबोधनिधान विमोह । प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह १
विदूरितसंसृतिभाव निरंग । समामृतपूरित देव विसंग ।

अबंध कषाय विहीनविमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह।
निवारितदुष्कृतकर्मविपास। सदामलकेवलकेलिनिवास॥
भवोदधिपारग शांत विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह॥
अनंतसुखामृतसागर धीर। कलंकरजोमलभूरिसमीर॥
विखंडितकाम विराम विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह॥
विकारविवर्जित तर्जितशोक। विबोधसुनेत्रविलोकितलोक
विहार विराव विरंग विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह॥
रजोमलखेदविमुक्त विगात्र। निरंतर नित्य सुखामृतपात्र॥
सुदर्शन राजित नाथ विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह॥
नरामरवंदित निर्मलभाव। अनंत मुनीश्वरपूज्य विहाव॥
सदोदय विश्वमहेश विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह॥७॥
विदंभ वितृष्ण विदोष विनिद्र। परापरशंकर सार वितंद्र॥
विकोप विरूप विशंक विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह॥
जरामरणोज्झित वीतविहार। विचिंतित निर्मल निरहंकार॥
अचिंत्यचरित्र विदर्प विमोह। प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह॥९॥
विवर्ण विगंध विमान विलोभ। विमाय विकाय विशब्दविशोभ
अनाकुल केवल सर्व विमोह प्रसीद विशुद्ध सुसिद्धसमूह॥

घत्ता।

असमसमयसारं चारुचैतन्यचिह्नं, परपरणतिमुक्तं पद्मनंदींद्रवंद्यं
निखिलगुणनिकेतं सिद्धचक्रं विशुद्धं, स्मरति नमति यो वा
स्तोति सोऽभ्येति मुक्तिं॥ ११॥

ओं ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अथाशीर्वाद अडिल्ल छंद।

अविनाशी अविकार परमरसधाम हो। समाधान सर्वज्ञ सहज

अभिराम हो। शुद्धबोध अविरुद्ध अनादि अनंत हो, जगत-शिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत हो ॥ १ ॥ ध्यानअगनिकर कर्म कलंक सबै दहे, नित्य निरंजनदेव सरूपी ह्वै रहे। ज्ञायकके आकार ममत्वनिवारिकैं, सो परमातम सिद्ध नमूं सिर नायकें ॥ २ ॥

दोहा—अविचलज्ञानप्रकाशतैं, गुण अनंतकी खान।
ध्यान धरे सो पाइए, परम सिद्ध भगवान ॥ ३ ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

३५। अथ सिद्धपूजाका भावाष्टक।

निजमनोमणिभाजनभारया, शमरसैकसुधारसधारया।
सकलबोधकलारमणीयकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ जलं ॥
सहजकर्मकलंकविनाशनैरमलभावसुवासितचंदनैः।
अनुपमानगुणावलिनायकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ चंदनं ॥
सहजभावसुनिर्मलतंदुलैः सकलदोषविशालविशोधनैः।
अनुपरोधसुबोधनिधानकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये। अक्षतान्
समयसारसुपुष्पसुमालया सहजकर्मकरेण विशोधया।
परमयोगबलेन वशीकृतं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ पुष्पं ॥
अकृतबोधसुदिव्यनिवेद्यकैर्विहितजातजरामरणान्तकैः।
निरवधिप्रचुरात्मगुणालयं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ नैवेद्यं ॥
सहजरत्नरुचिप्रतिदीपकैः रुचिविभूतितमःप्रविनाशनैः।
निरवधिस्वविकाशविकाशनैः सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ दीपं ॥
निजगुणाक्षयरूपसुधूपनैः स्वगुणघातिमलप्रविनाशनैः।
विशदबोधसुदीर्घसुखात्मकं, सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥ धूपं ॥

परमभावफलावलिसंपदा, सहजभावकुभावविशोधया ।
निजगुणास्फुरणात्मनिरंजनं सहजसिद्धमहं परिपूजये ॥फलं॥
नेत्रोन्मीलिविकाशभावनिवहैरत्यंतबोधाय वै ।
वार्गंधाक्षतपुष्पदामचरुकैः सद्दीपधूपैः फलैः ।
यश्चिंतामणिशुद्धभावपरमज्ञानात्मकैरर्चयेत् ।
सिद्धं स्वादुमगाधबोधमचलं संचर्चयामो वयं ॥१॥ अर्घं ।

३६ । सोलहकारणका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनहेतुमहं यजे ॥ १ ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

३७ । दशलक्षणधर्मका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनधर्ममहं यजे ॥ २ ॥

ओं ह्रीं अर्हन्मुखकमलसमुद्भूतोत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यदशलाक्षणिकधर्मेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

३८ । रत्नत्रयका अर्घ ।

उदकचंदनतंदुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधूपफलार्घकैः ।
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिनरत्नमहं यजे ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अष्टविधाचारसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशप्रकारसम्यक्चारित्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

—:o:—

२९। अथपंचपरमेष्ठि जयमाला आरती (प्राकृत)

मणुयणाइंदसुरधरियछत्तत्तया, पंचकल्लाणसोक्खावली पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं, ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं॥
जेहिं झाणग्गिवाणेहिं अइथद्धयं, जम्मजरमरणणयरत्तयं दड्ढयं
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं, ते महादिंतु सिद्धा वरं णाणयं॥
पंचहाचारपंचग्गिसंसाहया, बारसंगाइ सुयजलहि अवगाहया
मोक्खलच्छी महंती महं ते सया, सूरिणो दिंतु मोक्खं गयासंगया
घोरसंसारभीमाडवीकाणणे, तिक्खवियरालणहपावपंचाणणे
णट्ठमग्गाण जीवाण पहदेसया, वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया
उग्गतवचरणकरणेहिं झीणं गया, धम्मवरझाणसुक्केक्कझाणं गया
णिब्भरंतवसिरीएसमालिंगया: साहओ ते महामोक्खपहमग्गया
एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए। गुरुयसंसारघणवेल्लि सो छिंदए
लहइ सो सिद्धसोक्खाइं वरमाणणं, कुणइ कम्मिंधणं पुंजपज्जालणं
॥

अरिहा सिद्धाइरिया, उवज्झाया साहु पंचपरमेट्ठी।
एयाण णमुक्कारो, भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुपंचपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अथाशीर्वादः।

इच्छामि भंते पंचगुरुभत्तिकाउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेओ अट्ठमहापाडिहेरसंजुत्ताणं अरहंताणं। अट्ठगुणसंपण्णाणं उड्ढलोयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं। अट्ठपवयणमाउसंजुत्ताणं आइरियाणं। आयारादिसुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं। तिरयणगुणपालणरयाणं सव्वसाहूणं, णिच्चकालं

अच्चेमि पूजेमि वंदामि णमस्सामि, दुःक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुणसंपत्ति होउ मज्झं। इत्याशीर्वादः। [पुष्पांजलिं क्षिपेत्]

४०। अथ शांतिपाठः, स्तुति।

[शांतिपाठ बोलते समय दोनों हाथोंसे पुष्पवृष्टि करते रहना चाहिये।]

दोधकवृत्त।

शांतिजिनं शशिनिर्मलवक्त्रं, शीलगुणव्रतसंयमपात्रं।
अष्टशतार्चितलक्षणगात्रं, नौमि जिनोत्तममंबुजनेत्रं॥ १॥
पंचममीप्सितचक्रधराणां, पूजितमिंद्रनरेन्द्रगणैश्च।
शांतिकरं गणशांतिमभीप्सुः षोडषतीर्थकरं प्रणमामि॥ २॥
दिव्यतरुः सुरपुष्पसुवृष्टिर्दुंदुभिरासनयोजनघोषौ।
आतपवारणचामरयुग्मे यस्य विभाति च मंडलतेजः॥ ३॥
तं जगदर्चितशांतिजिनेंद्रं शांतिकरं शिरसा प्रणमामि।
सर्वगणाय तु यच्छतु शांतिं मह्यमरं पठते परमां च॥ ४॥

वसंततिलका छंद।

येऽभ्यर्चिता मुकुटकुंडलहाररत्नैः
शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुतपादपद्माः॥
ते मे जिनाः प्रवरवंशजगत्प्रदीपास्
तीर्थंकराः सततशांतिकरा भवंतु॥ ५॥

इंद्रवज्रा।

संपूजकानां प्रतिपालकानां यतींद्रसामान्यतपोधनानां।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः करोतु शांतिं भगवन् जिनेंद्रः॥६॥

स्रग्धरा वृत्तम् ।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः,
काले काले च सम्यग्वर्षतु मघवा व्याधयो यांतु नाशं ।
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्म भूज्जीवलोके,
जैनेंद्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि ॥ ७ ॥

अनुष्टुप् ।

प्रध्वस्तघातिकर्माणः केवलज्ञानभास्कराः ।
कुर्वंतु जगतः शांतिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥ ८ ॥
प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः ।

अथेष्टप्रार्थना ।

शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्तानां गुणगणकथा दोषवादे च मौनं ।
सर्वस्यापि प्रियहितवचो भावना चात्मतत्त्वे
संपद्यंतां मम भवभवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ ९ ॥

आर्यावृत्तं ।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पदद्वये लीनं ।
तिष्ठतु जिनेंद्र ! तावद्यावन्निर्वाणसंप्राप्तिः ॥ १० ॥
अक्खरपयत्थहीणं मत्ताहीणं च जं मए भणियं ।
तं खमउ णाणदेव य मज्झवि दुःक्खक्खयं दिंतु ॥ ११ ॥
दुःक्खखओ कम्मखओ समाहिमरणं च बोहिलाहो य ।
मम होउ जगतबंधव तव जिणवर चरणसरणेण ॥ १२ ॥

[illegible] ।

त्रिभुवनगुरो ! जिनेश्वर ! परमानंदैककारण कुरुष्व ।
मयि किंकरेऽत्र करुणां यथा तथा जायते मुक्तिः ॥१३॥

निर्विण्णोहं नितरामर्हन् बहुदुक्खया भवास्थित्या ।
अपुनर्भवाय भवहर ! कुरु करुणामत्र मयि दीने ॥ १४ ॥
उद्धर मां पतितमतो विषमाद् भवकूपतः कृपां कृत्वा ।
अर्हन्नलमुद्धरणे त्वमसीति पुनः पुनर्वच्मि ॥ १५ ॥
त्वं कारुणिकः स्वामी त्वमेव शरणं जिनेश ! तेनाहं ।
मोहरिपुदलितमानं फूत्करणं तव पुरः कुर्वे ॥ १६ ॥
ग्रामपतेरपि करुणा, परेण केनाप्युपद्रुते पुंसि ।
जगतां प्रभो ! न किं तव, जिन ! मयि खलु कर्मभिः प्रहते ॥
अपहर मम जन्म दयां, कृत्वेत्येकवचेसि वक्तव्ये ।
तेनातिदग्ध इति मे देव ! बभूव प्रलापित्वं ॥ १८ ॥
तव जिनवर ! चरणाब्जयुगं, करुणामृतशीतलं यावत् ।
संसारतापतप्तः करोमि हृदि तावदेव सुखी ॥ १९ ॥
जगदेकशरण ! भगवन् ! नौमि श्रीपद्मनंदितगुणौघ !
किं बहुना ? कुरु करुणामत्र जने शरणमापन्ने ॥ २० ॥

(परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्)

४१ । अथ विसर्जनं ।

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ।
आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनं ।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥ २ ॥
मंत्रहीनं क्रियाहीनं द्रव्यहीनं तथैव च ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्षजिनेश्वर ॥ ३ ॥

आहुता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमं ।
ते मयाभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यांतु यथास्थितिं ॥ ४ ॥

इति नित्यपूजाविधानं समाप्तं ।

४२ । अथ भाषास्तुतिपाठ ।

तुम तरणतारण भवनिवारण, भविकमन आनंदनो ।
श्रीनाभिनंदन जगतवंदन,आदिनाथ निरंजनो ॥१॥
तुम आदिनाथ अनादि सेऊं, सेय पदपूजा करूं ।
कैलासगिरिपर रिषभजिनवर, पदकमल हिरदे धरूं ॥२॥
तुम अजितनाथ अजीत जीते, अष्टकर्म महाबली ।
इह विरुद सुनकर सरनआयो, कृपा कीजे नाथजी ॥३॥
तुम चंद्रवदन सु चंद्रलच्छन, चंद्रपुरी परमेश्वरो ।
महासेननंदन, जगतवंदन चंद्रनाथ जिनेश्वरो ॥ ४ ॥
तुम शांति पांचकल्याण पूजों, शुद्धमनवचकायजू ।
दुर्भिक्ष चोरी पापनाशन, विघन जाय पलायजू ॥ ५ ॥
तुम बालब्रह्म विवेकसागर, भव्यकमलविकाशनो ।
श्रीनेमिनाथ पवित्र दिनकर, पापतिमिर विनाशनो ॥ ६ ॥
जिन तजी राजुल राजकन्या, कामसेन्या वश करी ।
चारित्ररथ चढि होय दूलह, जाय शिवरमणी वरी ॥७॥
कंदर्प दर्प सुसर्पलच्छन, कमठ शठनिर्मद कियो ।
विश्वसेननंदन जगतवंदन, सकलसँग मंगल कियो ॥ ८ ॥
जिन धरी बालकपणे दीक्षा, कमठमानविदारकें ।
श्रीपार्श्वनाथ जिनेंद्रके पद, में नमों शिरधारकें ॥ ९ ॥
तुम कर्मघाता मोक्षदाता, दीन जानि दया करो ।

सिद्धार्थनंदन जगतवंदन, महावीर जिनेश्वरो ॥ १० ॥
छत्र तीन सोहैं सुर नर मोहैं, वीनती अवधारिये।
कर जोड़ि सेवक वीनवै प्रभु, आवागमन निवारिये ॥११॥
अब होउ भव भव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहों।
कर जोड यो वरदान मांगूं, मोक्षफल जावत लहों ॥१२॥
जो एकमाहीं एक राजे, एकमाहिं अनेकनो।
इक अनेककि नहीं संख्या, नमों सिद्ध निरंजनो ॥१३॥
सो०-मैं तुम चरणकमलगुणगाय। बहुविध भक्ति करी मनलाय
जनम जनम प्रभु पाऊं तोहि। यह सेवाफल दीजे मोहि ॥१४॥
कृपा तिहारी ऐसी होय। जामन मरन मिटावो मोय।
वारवार मैं विनती करूं। तुम सेयाँ भवसागर तरूं ॥ १५ ॥
नाम लेत सब दुख मिटजाय। तुम दर्शन देख्यो प्रभु आय।
तुम हो प्रभु देवनके देव। मैं तो करूं चरण तव सेव ॥१६॥
मैं आयो पूजनके काज। मेरो जन्म सफल भयो आज।
पूजाकरके नवाऊं सीस। मुझ अपराध क्षमहु जगदीस ॥१७॥
दोहा-सुखदेना दुख मेटना, यही तुम्हारी बान।
सो गरीबकी बीनती, सुन लीज्यो भगवान।
पूजन करते देवकी, आदिमध्य अवसान।
स्वर्गनके सुख भोगकर, पावै मोक्ष निदान ॥ १९ ॥
जैसी महिमा तुम विषै, और धरै नहिं कोय।
जो सूरजमें जोति है, तारनमें नहिं सोय ॥ २० ॥
नाथ तिहारे नामतैं, अघ छिनमाहिं पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अन्धकार विनशाय ॥ २१ ॥

वहुत प्रशंसा क्या करूं, मैं प्रभु वहुत अजान ।
पूजाविधि जान्यों नहीं, सरन राखि भगवान ॥ २२ ॥

इति भाषास्तुतिपाठ समाप्त ।

—o—

तीसरा अध्याय ।

देवशास्त्रगुरु स्तुति संग्रह ।

४३ । नामावली स्तुति ।

छन्द १६ मात्रा ।

जय जिनंद सुखकंद नमस्ते । जय जिनंद जितफंद नमस्ते ॥ जय जिनंद वरवोध नमस्ते । जय जिनंद जितक्रोध नमस्ते ॥ १ ॥ पापतापहर इंदु नमस्ते । अर्हवरनजुतविंदु नमस्ते ॥ शिष्टाचारविशिष्ट नमस्ते । इष्ट मिष्ट उत्कृष्ट नमस्ते ॥ २ ॥ पर्म धर्म वर शर्म नमस्ते । मर्मभर्मघन घर्म नमस्ते ॥ दृगविशाल वर भाल नमस्ते । हृदयाल गुनमाल नमस्ते ॥ ३ ॥ शुद्धबुद्ध अविरुद्ध नमस्ते । रिद्धिसिद्धि वरवृद्धि नमस्ते ॥ वीतराग विज्ञान नमस्ते । चिद्विलास धृत ध्यान नमस्ते ॥ ४ ॥ स्वच्छ गुणांवुधि रत्न नमस्ते । सत्त्व हितंकर यत्न नमस्ते ॥ कुनयकरीमृगराज नमस्ते । मिथ्यात्वगवरबाज नमस्ते ॥ ५ ॥ भव्यभवोदधिपार नमस्ते । शर्मामृत सितसार नमस्ते ॥ दरश-ज्ञान-सुखवीर्य नमस्ते । चतुराननधर धीर्य नमस्ते ॥ ६ ॥ हरिहर ब्रह्मा विष्णु नमस्ते । मोहमर्द मनु जिष्णु नमस्ते ॥ महादान महभोग नमस्ते । महाज्ञा

महजोग नमस्ते ॥७॥ महाउग्रतपसूर नमस्ते। महामौनगुण भूरि नमस्ते ॥ धरम चक्रि वृषकेतु नमस्ते। भवसमुद्रशतसेतु नमस्ते ॥ ८ ॥ विद्याईश मुनीश नमस्ते। इंद्रादिकनुतशीस नमस्ते ॥ जय रत्नत्रय राय नमस्ते । सकल जीव सुखदाय नमस्ते ॥९॥ अशरणशरणसहाय नमस्ते। भव्यसुपंथलगाय नमस्ते ॥ निराकार साकार नमस्ते। एकानेकअधार नमस्ते ॥ १० ॥ लोकालोकविलोक नमस्ते । त्रिधा सर्वगुण थोक नमस्ते ॥ मल्लदल्लदलमल्ल नमस्ते। कलमलजितछल्ल नमस्ते ॥११॥ भुक्तिमुक्तिदातार नमस्ते। उक्तियुक्तिशृंगार नमस्ते॥ गुणअनंत भगवंत नमस्ते। जै जै जै जयवंत नमस्ते ॥ १२॥

४१। जिनेंद्र स्तुति।

गीता छंद।

मंगल सरूपी देव उत्तम तुम शरण्य जिनेशजी। तुम अधम तारण अधम मम लखि मेट जन्मकलेश जी ॥टेक॥ तुम मोह जीत अजीत इच्छातीत शर्मामृत भरे। रजनाश तुम वरभास दृग नभ ज्ञेय मध इक उड्डुचरे ॥ रटराम क्षति अनि अमित वीर्य सुभाव अटल सरूप हो। सब रहित दूषण त्रिजगभूषण अज अमल चिद्रूप हो ॥१॥ इच्छा बिना भवि-भाग्यतें तुम ध्वनि सुहोय निरक्षरी। षटद्रव्यगुणपर्यय अखिल युत एक छिनमें उच्चरी॥ एकांतवादी कुमत पक्ष-विलिप्त हम ध्वनि मद हरी। संशय तिमिरहर रविकला भविशस्यको अमरितझरी ॥२॥ वस्त्राभरण बिन शांतिमुद्रा सकल सुरनरमन हरे। नासाग्रदृष्टि विकारवर्जित निरखि

छवि संकट टरै ॥ तुम चरणपंकज नखप्रभा नभकोटि सूर्य-प्रभा धरै । देवेंद्र नाग नरेंद्र नमत सु मुकुटमणिद्युति विस्तरै ॥ ३ ॥ अंतर वहिर इत्यादि लक्ष्मी तुम असाधारण लसै । तुम जाप पापकलापनासै ध्यावते शिवथल वसै ॥ मैं सेय कुदृग कुवोध अव्रत चिर भ्रम्यो भववन सबै ॥ दुख सहे सर्व प्रकार गिरसम सुख न सर्पपसम कबै ॥४॥ परचाहदाहदह्यो सदा कबहूं न साम्यसुधा चख्यो । अनुभव अपूरव स्वादु विन नित विषयरसचारो भख्यो ॥ अव वसो मोउरमें सदा प्रभु तुम चरण सेवक रहों । वर भक्ति अतिदृढ़ होहु मेरे अन्य विभव नहीं चहों ॥५॥ एकेंद्रियादिक अंतग्रीवक तक तथा अंतर घनी । पर्याय पाय अनंतवार अपूर्व सो नहिं शिवधनी ॥ संसृतभ्रमणतैं थकित लखि निज दासकी सुन लीजिये । सम्यकदरश वर ज्ञानचारितपथ विहारी कीजिये ॥

४५ । अथ दुःखहरण स्तुति ।

(शेरकी रीतिमें तथा और २ रागिनियोंमें भी बनती है)

श्रीपति जिनवर करुणायतनं, दुखहरन तुमारा वाना है ।
मत मेरी वार अवार करो, मोहि देहु विमल कल्याना है ।टेक।
त्रैकालिक वस्तु प्रत्यक्ष लखो, तुमसों कछु वात न छाना है ।
मेरे उर आरत जो वरतै, निहचै सव सो तुम जाना है ॥
अवलोक विथा मत मौन गहो, नहिं मेरा कहीं ठिकाना है ।
हो राजिवलोचन सोचविमोचन, मैं तुमसों हित ठाना है ॥
श्री० ॥ १ ॥ सव ग्रंथनिमें निरग्रंथनितें, निरधार यही गण-धार कही । जिननायक ही सव लायक हैं, सुखदायक छायक

ज्ञान मही ॥ यह बात हमारे कान परी, तब आन तुमारी सरन गही । क्यों मेरी बार विलंब करो, जिननाथ कहो वह बात सही ॥ श्री० ॥ २ ॥ काहूको भोग मनोग करो, काहूको स्वर्गविमाना है । काहूको नागनरेशपती, काहूको ऋद्धि निधाना है ॥ अब मोपर क्यों न कृपा करते, यह क्या अंधेर जमाना है। इनसाफ करो मत देर करो, सुखवृंद भरो भगवाना है ॥ श्री० ॥ ३ ॥ खल कर्म मुझे हैरान किया, तब तुममों आन पुकारा है । तुम ही समरत्थ न न्याव करो तब बंदेका क्या चारा है । खल-घालक पालक बालकका, नृपनीति यही जगसारा है । तुम नीतिनिपुन त्रैलोकपती, तुमही लगि दौर हमारा है ॥ श्री० ॥ ४ ॥ जबसे तुमसे पहिचान भई, तबसे तुमहीको माना है । तुमरे ही शासनका स्वामी, हमको शरना सरधाना है ॥ जिनको तुमरी शरनागत है, तिनसों जमराज डराना है । यह सुजस तुम्हारे सांचेका, सब गावत वेद पुराना है ॥ श्री० ॥ ५ ॥ जिसने तुमसे दिलदर्द कहा तिसका तुमने दुख हाना है । अब छोटा मोटा नाशि तुरित सुख दिया तिन्हें मनमाना है ॥ पावकसों शीतल नीर किया औ चीर बढा असमाना है । भोजन था जिसके पास नहीं, सो किया कुबेर समाना है ॥ ॥ श्री० ॥ ६ ॥ चिंतामन पारस कल्पतरु सुखदायक ये परमाना है । तब दासनके सब दास सदा हमरे मनमें ठहराना है ॥ तुव भक्तनको सुरइंदपदी फिर चक्रपतीपद पाना है । क्या बात कहों विस्तार बढे ये पावें मुक्ति ठिकाना है ॥ श्री० ॥

आप और भवि जीवनकी ततकाल विथा निरवारी है। त्यों 'वृंदावन' यह अर्ज करै प्रभु आज हमारी वारी है ॥ १३ ॥

इति वृन्दावनकृत स्तुति । ७ ।

४६ । जिनेन्द्रस्तुति ।

चौपाई (सोलह मात्रा)

जै जगपूज परमगुरु नामी । पतितउधारन अंतरजामी ॥ दास दुखी तुम अति उपगारी। सुनिये प्रभु ! अरदास हमारी॥ यह भव घोर समुद्र महा है । भूधर-भ्रम-जल-पूर रहा है ॥ अंतर दुख दुःसह वहुतेरे । ते वडवानल साहिव मेरे ॥ जनमजरा गद मरन जहां है । ये ही प्रवल तरंग तहां है॥ आवत विपति नदीगन जामें । मोह महान मगर इक तामें ॥ तिहमुख जीव पर्यो दुख पावै । हे जिन ! तुम विन कौन छुडावै ॥ अशरनशरन अनुग्रह कीजे यह दुख मेटि मुकति मुहि दीजे दीरघ काल गयो विललावें । अव ये सूल सहे नहिं जावें ॥ सुनियत यों जिनशाशनमाहीं । पंचमकालपरमपद नाहीं ॥ कारन पांच मिलें जव सारे । तव शिव सेवक जाहिं तिहारे । तातें यह विनती अव मेरी। स्वामी ! शरण लई हम तेरी । प्रभु आगें चितचाह प्रकासों। भव भव श्रावककुल अभिलाषों ॥ भव भव जिन आगम अवगाहों। भव भव भक्ति चरणकी चाहों। भव भवमें सतसंगति पाऊं । भव भव साधनके गुन गाऊं ॥ परनिंदा मुख भूलि न भाखूं । मैत्रीभाव सवनसों राखूं ॥ भव भव अनुभव आतम केरा । होहु समाधिमरण नित मेरा जवलों जनम जगतमें लाधों काललब्धिवल लहि शिवसाधों

तबलों ये प्रापति मुझ हूजो। भक्ति प्रताप मनोरथ पूजो ॥ प्रभु सब समरथ हम यह लोरें। 'भूधर' अरज करत कर जोरें ॥

४७। करुणाष्टक।

करुणा ल्यो जिनराज हमारी, करुणाल्यो० ॥टेक॥ अहो जगतगुरु जगपतीजी, परमानंदनिधान। किंकरपर कीजे दया जी दीजे अविचल थान। हमारी० ।१। भव दुखनों भयभीत होंजी शिवपदवांछा सार। करो दया मुझ दीनपैजी, भवबंधन निरवार। हमारी० ॥२॥ पर्यो विषम भवकूपमेंजी, हे प्रभु! काढ़ो मोंहिं। पतित उधारण हो तुम्हींजी, फिर फिर विनऊं तोहि। हमारी० ।३। तुम प्रभु परम दयाल होजी, अशरनके आधार। मोहि दुष्ट दुख देत हैंजी, तुमसों करहुँ पुकार हमारी० ।४। दुःखित देखि दया करैजी, गांवपती इक होय। तुम त्रिभुवनपति कर्मतेजी, क्यों न छुड़ावो मोय। हमारी० ।५। भव-आताप तबै बुझैजी, जब राखो उर धोय। दया-सुधाकर नीरराजी, तुमपदपंकज दोय ॥ हमारी० ॥६॥ येहि एक मुझ वीनतीजी, स्वामी! हर संसार। बहुत धन्यो हूं त्रासतैंजी, बिलख्यो बारंबार ॥ हमारी० ॥७॥ पदनंदिको अर्थ लेजी, अरज करी हितकाज। शरणागत भूधरतणीजी, राखहु जगतपति लाज ॥ हमारी० ॥ ८ ॥

४८। पार्श्वनाथ स्तुति।

सोरठा।

पारसप्रभुको नाऊं, सार सुधारस जगतमें।
मैं वाकी बलि जाऊं, अजर अमरपददूल यह ॥ १ ॥

हरिगीता (२८ मात्रा)

राजत उतंग अशोक तरुवर, पवनप्रेरित थरहरे। प्रभु निकट पाय प्रमोद नाटक, करत मानों मनहरे॥ तस फूल गुच्छन भ्रमर गुंजत, यही तान सुहावनी। सो जयो पार्श्व-जिनेंद्र पातकहरन जगचूडामनी॥२॥ निज मरन देखि अनंग डरप्यो, सरन ढूंढत जग फिरयो। कोई न राखै चोर प्रभुकों, आय पुनि पाँयन गिरयो॥ यों हार निज हथियार डारें पुहुपवर्षा मिस भनी। सो जयो०॥३॥ प्रभुअंगनीलउतंगगिरितें, वानि शुचि सरिता ढली। सो भेदि भ्रमगजदंतपर्वत, ज्ञानसागरमें रली नय सप्त भंग-तरंग-मंडित, पापतापविध्वंसनी। सोजयो०॥४॥ चंद्रार्चिचयछवि चारु चंचल, चमरवृंद सुहावने। ढोलें निरंतर यक्षनायक, कहत क्यों उपमा बने॥ यह नील गिरिके शिखर मानों, मेघझरि लागी घनी।सोजयो०।५। हीरा जवाहिर खचित बहुविध, हेमआसन राजए। तहँ जगत जनमनहरन प्रभु तन नीलवरन विराजए। यह जटित वारिजमध्यमानों, नील मणिकलिका वनी।सोजयो०।६। जगजीत मोह महान जोधा जगतमें पटहादियो। सों शुकलध्यानकृपान बल, जिन विकट वैरी वश कियो॥ ये वजत विजय निशान दुंदुभि, जीत सूचें प्रभुतनी।सो जयो०।७। छदमस्थपदमें प्रथम दर्शन, ज्ञानचारित आदरे। अब तीन तेई छत्र छलसों, करत छाया छवि भरे॥ अति धवलरूप अनूप उन्नत, सोमबिंबप्रभा हनी।सो जयो०।८। दुति देखि जाकी चंद सरमें, तेजसों रवि लाजई। तव प्रभा-मंडलजोग जगमें कौन उपमा छाजई॥ इत्यादि अतुलविभूति

मंडित सोहिये त्रिभुवनधनी ।सो जयौ०॥९॥ सों असम महिमासिंधु साहब, शक्र पार न पावहीं । तजि हासमय तुम दास 'भूधर' भगतिवश यश गावहीं ॥ अब होउ भवभव स्वामि मेरे, मैं सदा सेवक रहौं । कर जोरि यह वरदान माँगौं, मोखपद यावत लहौं ॥ १० ॥

न्यायालंकार पं० मक्खनलालजी कृत

४९ । श्रीमहावीर प्रार्थना ।

हे सर्वज्ञ वीर जिनदेवा, चरन शरन हम आते हैं ।
ज्ञान अनंतगुणाकर तुमको चरनन सीस नवाते हैं ॥ १ ॥
कथन तुम्हारा सबको प्यारा, कहीं विरोध नहीं पाता ।
अनुभवबोध अधिक जिनके है, उन पुरुषोंके मन भाता ॥२॥
दर्शनज्ञानचरित्रस्वरूपी, मारग तुमने दिखलाया ।
यही मार्ग हितकारी सबका, पूर्व ऋषीगणने गाया ॥ ३ ॥
रत्नत्रयको भूल न जावें, इसीलिये उपनयन करें ।
ब्रह्मचर्यको दृढतम पालें, सप्तव्यसनका त्याग करें ॥ ४ ॥
नीतिमार्गपर नित्य चलें हम, योग्याहार विहार करें ।
पालें योग्याचार सदा हम, वर्णाचार विचार करें ॥ ५ ॥
धर्ममार्ग अरु वैद्यमार्गसे, देशोद्धार विचार करें ।
आर्षवचन हम दृढतम पालें, सत्सिद्धांतप्रचार करें ॥ ६ ॥
श्रीजिनधर्म बढै दिनदूनो, पंच आप्तनुति नित्य करें ।
सत्संगतिको पाकर स्वामिन्, कर्मकलंक समूल हरें ॥ ७ ॥
फलें भाव ये सभी हमारे, यही निवेदन करते हैं ।
'लाल' बालमिल भालवीरके, चरनोंमें हम धरते हैं ॥ ८ ॥

५० । शारदाष्टक ।

नमो केवल नमोकेवल रूप भगवान । मुख ओंकार धुनि सुनि अर्थ गणधर विचारें । रचि आगम उपदिसे भविक जीव संशय निवारें ॥ सो सत्यारथ शारदा, तासु भक्ति उर आन। छंद भुजंगप्रयातमें, अष्टक कहों बखान ॥ १ ॥

जिनादेश जाता जिनेंद्रा विख्याता। विशुद्धप्रबुद्धा नमों लोकमाता ॥ दुराचार दुर्नैहरा शंकरानी । नमों देवि वागीश्वरी जैन वानी ॥ २ ॥ सुधाधर्म संसाधनी धर्मशाला। क्षुधातापनिर्नाशिनी मेघमाला ॥ महामोह विध्वंसनी मोक्षदानी। नमों देवि० ॥३॥ अखे वृक्षशाखा व्यतीताभिलाषा। कथा संस्कृता प्राकृता देशभाषा ॥ चिदानंदभूपालकी राजधानी ।नमो०॥४॥ समाधान रूपा अनूपा अछुद्रा । अनेकांतधा स्यादवादांक मुद्रा ॥ त्रिधा सप्तधा द्वादशांगी बखानी । नमो देवि० ॥५॥ अकोपा अमाना अदंभा अलोभा । श्रुतज्ञानरूपी मतिज्ञान शोभा ॥ महापावनी भावना भव्यमानी ।नमोदेवि०॥६॥ अतीता अजीता सदा निर्विकारा । विषै वाटिका खंडिनी खड्ग धारा ॥ पुरापापविक्षेपकर्त्री कृपाणी ॥ नमोदेवि०॥७॥ अगाधा अबाधा निरंध्रा निराशा । अनंता अनादीश्वरी कर्म नाशा ॥ निशंका निरंका चिदंका भवानी॥ नमोदेवि० ॥८॥ अशोका मुदेका विवेका विधानी । जगज्जंतु मित्रा विचित्रावसानी ॥ समस्ता विलोका निरस्ता निदानी ॥ नमोदेवि० ॥९॥

वास्तुछंद।

जैनवानी जैनवानी सुनहिं जे जीव ।

जे आगमरुचि धार, जे प्रतीत मनमाहिं आनहिं ।
अब धारहि जे पुरुष समर्थ पद अर्थ जानहिं ॥
जे हितहेतु बनारसी, देहिं धर्म उपदेश ।
ते सब पावहिं परम सुख, तज संसार कलेश ॥ १० ॥

इति शारदाष्टक ।

५१ । शारदास्तवन प्रभाती ।

केवलिकन्ये वाङ्मय गंगे, जगदंबे अघनाश हमारे ।
सत्य स्वरूपे मंगलरूपे, मनमंदिरमें तिष्ट हमारे ॥टेक॥
जंबू स्वामी गौतम गणधर, हुये सुधर्मा पुत्र तुम्हारे ।
जगतें स्वयं पार ह्वै करके, दे उपदेश बहुत जन तारे ॥ १ ॥
कुंद कुंद अकलंक देव अरु, विद्यानंदिआदिमुनि सारे ।
तवकुलकुमुद चंद्रमा ये शुभ, शिक्षामृत दे स्वर्ग सिधारे ॥२॥
तूने उत्तम तत्त्वप्रकाशे, जगके भ्रम सब क्षयकर डारे ।
तेरी ज्योति निरख लज्जावश, रविशशि छिपते नित्य विचारे ॥
भव भय पीडित व्यथितचित्त जन, जब जो आये शरन तिहारे ।
छिनभरमें उनके तब तुमने, करुणाकरि संकट सब टारे ॥४॥
जबतक विषय कषाय नशै नहिं, कर्मशत्रु नहिं जाय निवारे ।
तबतक 'ज्ञानानंद' रहै नित, सब जीवनतैं समता धारे ॥५॥

५२ । शास्त्र-भक्ति ।

([illegible])

[illegible] ।

अकेला ही हूं मैं, करम सब आये सिमटिके । लिया है मैं तेरा शरण अब माता सटकिके ॥ भ्रमावत है मोकों, करम दुख

देता जनमका। करों भक्तीतेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥१॥
दुखी हूआ भारी, भ्रमत फिरता हूँ जगतमें। सहा जाता नाहीं
अकल घवरानी भ्रमनमें। करों क्या मा मोरी, चलत वश नाहीं
मिटनका। करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥२॥
सुनो माता मोरी, अरज करता हूं दरदमें। दुखी जानो मोंको,
डरप कर आयो शरनमें। कृपा ऐसी कीजे, दरद मिटजावे
मरनका। करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥ ३ ॥
पिलावे जो मोकों, सुबुधि कर प्याला अमृतका। मिटावे जो मेरा,
सरब दुख सारा फिरनका। परों पावों तेरे, हरो दुख सारा
फिकरका। करों भक्ती तेरी, हरो दुख माता भ्रमनका ॥४॥

सवैया।

मिथ्या-तम नाशवेको ज्ञानके प्रकाशवेको, आपा-परभासवेको
भानुसी बखानी है। छहों द्रव्यजानवेको बंधविधिभानवेको
स्वपरपिछानवेको परम प्रमानी है ॥ ५ ॥ अनुभो बतायवेको
जीवके जतायवेको, काहू न सतायवेको भव्य उर आनी है
जहांतहां तारवेको पारके उतारवेको, सुख विसतारवेको येही
जिनवानी है ॥ ६ ॥

दोहा

यह जिनवानीकी थुती, अल्प बुद्धि परवान।
पनालाल विनती करे, दे माता मोहि ज्ञान ॥ ७ ॥
हे जिनवानी भारती, तोहि जपों दिन रैन।
जो तेरा शरना गहें, सो पावें सुख चैन ॥ ८ ॥
जा वानीके ज्ञानतें, सूझे लोकालोक।
सो वानी मस्तक चढो, सदा देत हों धोक ॥ ९ ॥

उत्तम कुल श्रावक संचार । तास गेह प्रासुक आहार ॥
भुंजै दोप छियालिस टाल । सो मुनि वंदों सुरति सँभाल ॥
उचित वस्तु निजहित परहेत । तथा धरम उपकरण अचेत ॥
निरख जतनसों गहे जु कोय । सो मुनि नमहुँ जोर कर दोय ॥
रोग विकृति पूरव आदान । नव दुवार मल अंग उठान ॥
डारें प्रासुक भूमि निहार । सो मुनि नमहुँ भगति उरधार ॥
कोमल कर्कस हरुव सँभार । रूक्षसचिक्कण तपत तुसार ॥
इनको परसन सुखदुख लहैं । सोमुनिराज जिनेश्वर कहैं ॥
आमलकटुककपायल मिष्ट । तिक्त क्षार रस इष्ट अनिष्ट ॥
इनहिं स्वाद रति अरति न वेव । सो ऋपिराज नमहिं तिहँ देव ॥
शुभ सुगंध नानापरकार । दुखदायक दुर्गंध अपार ॥
नासा विषय गनहिं सम तूल । सो मुनि जिन सासनतरुमूल ॥
श्याम हरित सित लोहित पीत । वर्ण विवर्ण मनोहर भीत ॥
ए निरखे तज राग विरोध । सो मुनि करै कर्ममल शोध ॥१७॥
शब्द कुशब्द हि समरससाद । श्रवणसुनत नहिं हरप विपाद ॥
थुति निंदा दोऊं सम सुणे । सो मुनिराज परम पद मुणे ॥१८॥
सामाइक साधे तिहुं काल । मुकति पंथकी करै सँभाल ॥
शत्रु मित्र दोऊं सम गिणे । सो मुनिराज करमरिपु हणे ॥१९॥
अरहत सिद्ध सूरि उवझाय । साधु पंच पद परम सहाय ॥
इनके चरणनिमें मनलाय । तिस मुनिवरके वदों पाय ॥२०॥
पावनपंच परमपद इष्ट । जगतमाहिं जानें उतकिष्ट ॥
ठानै गुण थुति वारंवार । सो मुनिराज लहे भवपार ॥ २१ ॥
[illegible] धारे चित्त । दोप विलोकि करै प्राछित्त ॥

नित प्रतिक्रमण क्रिया रसलीन । सो सुसाधु संजम परवीन ॥
श्रीजिनवचनरचन विस्तार । द्वादशांग परमागम सार ॥
निज मति मान करै सज्झाउ । सो मुनिवर वंदहु धर भाव ॥
काउसग्ग मुद्रा धरि नित्त । शुद्ध स्वरूप विचारै चित्त ॥
त्यागै त्रिविध जोग ममकार । सो मुनिराज नमों निरधार ।२४।
प्राशुक शिला उचित भू खेत । अचलअंग समभाव समेत ॥
पच्छिमरैन अलप निद्राल । सो योगीश्वर वंचै काल ॥२५॥
धर्म ध्यानयुत परम विचित्र । अंतर वाहिज सहज पवित्र ॥
न्हानविलेपन तजैं त्रिकाल । वंदों सो मुनि दीन दयाल ॥२६॥
लोकलाज विगलित भय हीन । विषयवासना रहित अदीन ॥
नगन दिगंवर मुद्राधार । सोमुनिराज जगतसुखकार ॥२७॥
सघन केश गर्भित मल कीच । त्रस असंख्यउतपति तसुवीच ॥
कच लुंचै यह कारण जान । सो मुनि नमहुं जोर जुग पान ॥
छुधावेदनी उपमशमहेत । रस अनरस सम भाव समेत ॥
एकवार लघु भोजन करै । सो मुनिमुकतिपंथ पगधरै ॥२९॥
देहसहारो साधन मोख । तबलों उचित काय बलपोख ॥
यह विचार थितिलेहिं अहार । सोमुनि परम धरम धनधार ॥
जहँजहँ नवद्वार मलपात । तहँ तहँ असिनि जीव उतपात ॥
यह लख तजहिं दंतवनकाज । सो शिवपथसाधक ऋषिराज ॥
दोहा—ये अट्ठाविस मूलगुण, जो पालहिं निरदोख ।
सो मुनि कहत बनारसी, पावें अविचल मोख ॥३२॥

इति साधुवंदना ।

१ स्वाध्याय ।

५४। अथ भूधरकृत गुरुस्तुति।

वंदों दिगंवर गुरुचरन जग,-तरन तारन जान। जे भरमभारी रोगको, हैं राजवैद्य महान ॥ जिनके अनुग्रह विनकभी, नहिं कटै कर्मजँजीर । ते साधु मेरे उर वसहु, मम हरहु पातक पीर ॥ १ ॥ यह तन अपावन अथिर है, संसार सकल असार । ये भोग विषपकवानसे, इहभांति शोच विचार। तपविरचि श्रीमुनि वनवसे, सव छाड़ि परिगह भीर । ते साधु मेरे मन वसहु, मम हरहु पातक पीर ॥ २ ॥ जे कान कंचन सम गिनहिं, अरि मित्र एक सरूप । निंदा बड़ाई सारिखी, वनखंड शहर अनूप ॥ सुखदुःख जीवनमरनमें, नहिं खुशी नहिं दिलगीर। ते साधु मेरे उरवसो, मम हरहु पातक पीर ॥ ३ ॥ जे वाह्य परवत वनवसें, गिरि गुफा महल मनोग। सिल सेज, समतासहचरी, शशिकिरनदीपकजोग ॥ मृगमित्र, भोजन तपमई, विज्ञान निरमल नीर। ते साधुमेरे मन वसो, मम हरहु पातक पीर ॥ ४ ॥ सूखहिं सरोवर जल-भरे, सूखहिं तरंगिनि-तोय । वाटहि वटोही ना चलें, जहँ घाम गरमी होय। तिहँकालमुनिवरतपतपहिं, गिरिशिखरठाड़े धीर। ते साधु मेरे उर वसो, मम हरहु पातक पीर ॥५॥ घनघोर गरजहिं घनघटा, जलपरहिं पावसकाल । चहुंओर चमकइ वीजुरी, अति चलै सीरी व्याल ॥ तरुहेट निवसहिं तव जती, एकांत अचलशरीर। ते साधु मेरे मन वसो, मम हरहु पातक पीर ॥६॥ जव शीतमास तुषारसों, दाहै सकल वन-

१। मढ़ २। गाफ्ला, ३। गफ्लतार।

राय । जब जमैं पानी पोखरां, थरहरै सबकी काय ॥ तब नगन निवसैं चौहटै, अथवा नदीके तीर । ते साधु मेरे उर बसो, मम हरहु पातक पीर ॥७॥ करजोर 'भूधर' वीनवे, कबमिहिं वे मुनिराज । यह आश मनकी कब फलै, मम सरहिं सगरे काज । संसार विषम विदेसमें, जे बिना कारण वीर । ते साधु मेरे उर बसो, मम हरहु पातक पीर ॥ ८ ॥

इति भूधरकृत गुरुस्तुति ॥

५५ । अथ भूधरकृत दूसरी गुरुस्तुति ।

राग भरतरी—दोहा ।

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भवजलधि जिहाज । आप तिरहिं पर तारहीं, ऐसे श्रीऋषिराज ॥ तेगुरु० १ ॥ मोहमहा रिपु जानिकैं, छाड्यो सब घरबार । होय दिगंबर वन बसे, आतमशुद्ध विचार ॥ तेगुरु० २ ॥ रोग उरग-बिलवपु गिण्यो, भोग भुजंग समान । कदलीतरुसंसार है, त्याग्यो सब यह जान ॥ ते गुरु० ३ ॥ रतनत्रयनिधिउरधरें, अरु निरग्रंथ त्रिकाल । मार्‍यो कामखवीसको, स्वामी परम दयाल ॥ ते गुरु० ॥ पंच महाव्रत आदरैं, पांचों सुमति समेत । तीन गुपति पालैं सदा, अजरअमरपदहेत ॥ ते गुरु० ५ ॥ धर्मधरैं दशलाछनी, भावैं भावना सार । सहैं परीषह वीस द्वै, चारित-रतन-भँडार ॥ ते गुरु० ॥ जेठ तपै रवि आकरो, सूखै सरवर नीर । शैल-शिखर मुनि तप तपैं, दाझैं नगन शरीर ॥ ते गुरु० ७ ॥ पावस रैन डरावनी, बरसै जलधरधार । तरुतल निवसैं तब यती,

बाजे झंझा व्यार ॥ ते गुरु० ८ ॥ शीत पडे कपि-मद गले, दाहे सब वनराय। तालतरंगनिके तटें, ठाडे ध्यान लगाय ॥ ते गुरु० ९ ॥ इहिंविधि दुद्धर तप तपें, तीनोंकालमझार। लागे सहज सरूपमें, तनसों ममत निवार ॥ ते गुरु० ॥ पूरव भोग न चिंतवें, आगम वांछें नांहिं। चहुंगतिके दुखसों डरें, सुरति लगी शिव माहिं ॥ ते गुरु० ११ ॥ रंगमहलमें पोढते, कोमल सेज विछाय। ते पच्छिम निशि भूमिमें सोवें संवरि काय ॥ते गुरु० १२॥ गजचढि चलते गरवसों, सेना सजि चतुरंग। निरखि निरखि पग वे धरें, पालें करुणा अंग ॥ ते गुरु० १३॥ वे गुरु चरण जहां धरें, जगमें तीरथ जेह। सो रज मम मस्तक चढो, भूधर मांगे एह ॥ ते गुरु० १४ ॥

इति भूधरकृत दूसरी गुरुस्तुति ॥ ११ ॥

५६। अथ गुर्वावली लिख्यते।

गौर।

जैवंत दयावंत सुगुरु देव हमारे। संसारविषमखारसों जिनभक्त उधारे ॥ टेक ॥ जिनवीरके पीछें यहां निर्वानके थानी। बासठ वरषमें तीन भये केवलज्ञानी। फिर सौवरसमें पांच श्रुतकेवली भये। सर्वांग द्वादशांगके उमंग रस लये ॥ ॥ जैवंत० १॥ तिस बाद वर्ष एकशतक और तिरासी। इसमें हुये दशपूर्व ग्यारे अंगके भाषी। ग्यारे महामुनीश ज्ञानदानके दाता। गुरुदेव सोई देहिंगे भविवृंदको साता। जैवंत० २ ॥ तिसबाद वर्ष दोय शतक बीसके मांही। मुनि पांच ग्यारेअंगके पाठी हुये ह्यांहीं ॥ तिसबाद वरप एकसौ अठारमें जानी।

मुनि चार हुये एक आचारांगके ज्ञानी । जैवंत० ३॥ तिसवाद हुये हैं जु सुगुरु पूर्वके धारक । करुणानिधान भक्तको भव-सिंधु उधारक ॥ करकंजतें गुरु मेरे उपर छांह कीजिये । दुख द्वंदको निकंदके आनंद दीजिये ॥ जैवंत० ४ ॥ जिनवीरके पीछेसों वरप छहसौं तिरासी । तवतक रहे इक अंगके गुरुदेव अभ्यासी ॥ तिसवादकोई फिर न हुये अंगके धारी । पर होते भये महा सुविद्वान उदारी ॥ जैवंत० ५ ॥ जिनसों रहा इस कालमें जिनधर्मका शाका । रोपा है सात भंगका अभंग पताका ॥ गुरुदेव नयंधरको आदि दे वडे नामी । निर ग्रंथ जैनपंथके गुरुदेव जो स्वामी ॥ जैवंत० ६ ॥ भापों कहां लों नाम वडी वार लगैगा । परनाम करों जिस्मे वेडा पार लगैगा ॥ जिसमेंसे कछुइक नाम सूत्रकारके कहों । जिन नामके प्रभावसे परभावकों दहों ॥ जैवंत० ७ ॥ तत्त्वार्थसूत्र नामि उमास्वामी किया है । गुरुदेवने संक्षेपसे क्या काम किया है । जिसमें अपार अर्थने विश्राम किया है । बुधवृंद जिसे ओरसे परनाम किया है ॥ जैवंत० ८ ॥ वह सूत्र है इस कालमें जिनपंथकी पूंजी । सम्यक्त्व ज्ञानभाव है जिस सुत्रकी कूंजी ॥ लडते हैं उसी सूत्रसों परवादके मूंजी । फिर हारके हट जाते हैं इक पक्षके लूंजी ॥जैवंत० ९॥ स्वामी समंतभद्र महाभाष्य रचा है । सर्वंग सात भंगका उमंग मचा है ॥ परवादियोंका सर्व गर्व जिस्मे पचा है । निर्वान सदकका मोई सोपान जचा है ॥जैवंत० १०॥ अकलंकदेव राजवारतीक वनाया । परमान नयनिच्छेपसों सव वस्तु वताया । श्लोक वार...

विद्यानंदजी मंडा। गुरुदेवने जडमूलसों पाखंडको खंडा॥जै०॥ गुरु पूज्यपादजी हुये मरजादके धोरी। सर्वार्थसिद्धि सूत्रकी टीका जिन्हों जोरी॥ जिसके लखेसों फिर न रहे चित्तमें भरम सवजीवको भाषे है सुपरभावका मरम॥ जैवंत० १२॥ धरसेंन गुरूजी हरो भवि वृंदकी व्यथा। अग्रायणीयपूर्वमें कुछ ज्ञान जिन्हे था॥ तिनके हुये दो शिष्य पुष्पदंत भुतवली धवलादिकोंका सूत्र किया जिस्से मग चली॥जैवंत० १३॥ गुरु औरने उस सूत्रका सब अर्थ लहा है। तिन धवल महाधवल जयसुधवल कहा है॥ गुरु नेमिचंद्रजी हुए धवलादिके पाठी। सिद्धांतके चक्रीशकी पदवी जिन्हों गांठी॥ जैवंत०॥ तिन तीनोंहीं सिद्धान्तके अनुसारसों प्यारे। गोमट्टसार आदि सुसिद्धांत उचारे॥ यह पहिले सुसिद्धांतका विरतंत कहा है। अब और सुनों भावसों जो भेदमहा है॥जैवंत० १५॥ गुण धर मुनीशने पढा था तीजा पराभृत। ज्ञानप्रवाद पूर्वमें जो भेद है आश्रित। गुरु हस्तिनागजीने सोई जिनसों लहा है। फिर तिनसों यतीनायकने मूल गहा है। जैवंत० १६॥ तिन चूर्णिका स्वरूप तिस्से सूत्र बनाया। परमान छे हजार यों सिद्धांतमें गाया॥ तिसका किया उद्धरण समुद्धरण जु टीका। बारह हजारके प्रमान ज्ञानकी टीका॥जैवंत० १७॥ तिमहीमें रचा कुंदकुंदजीने सुशासन। जो आतमीक धर्म धर्मका है प्रकाशन॥ पंचास्तिकाय समयसार सारप्रवचन। इत्यादि सुसिद्धांत स्यादवादका रचन॥ जैवंत० १८॥ सम्यक्त्वज्ञान दर्श सुचारित्र अनूपा॥ गुरुदेव अमीइंदुने तिनकी करी टीका॥

झरता है निजानंद अमीवृन्द सरीका ॥ जैवंत० १९ ॥ रच-नानुवेदभेदके निवेदके करता। गुरुदेव जे भये हैं पापतापके हरता॥ श्रीवट्टकेर देवजी वसुनंदजी चक्री। निरग्रंथ ग्रंथ पंथके निरग्रंथके शक्री ॥जैवंत० २०॥ योगीन्द्रदेवने रचा परमात्मा प्रकाश। शुभचंद्रने किया है ज्ञान आरणव विकाश ॥ श्री पद्म-नंदजीने पद्मनंदिपच्चीसी। शिवकोटिने आराधना सुसार रचीसी ॥ जैवंत० २१ ॥ दोसंध तीनसंध चारसंध पांचसंध। पटसंध सातसंधलों गुरु रचा है प्रबंध। गुरु देवनंदिने किया जैनेंद्रव्याकरन। जिस्से हुआ परवादियोंके मानका हरन ॥जै०॥ गुरुदेवने रची है रुचिर जैनसंहिता। वरनाश्रमादिकी क्रिया कहें हैं संहिता। वसुनंदि वीरनंदि यशोनंदि संहिता। इत्यादि बनी हैं दशों प्रकार संहिता ॥ जैवंत० २३ ॥ परमेयकमल मारतंडके हुये कर्ता। प्रभेन्दु माणिक्यनंदि नयप्रमाणके भर्ता॥ जैवंत सिद्धसेन सुगुरु देव दिवाकर। जे वादिसिंह देवसिंह जैति यशोधर ॥जैवंत० २४॥ श्रीदत्त काणभिक्षु और पात्र केशरी। श्रीवज्रसूर महासेन श्रीप्रभाकरी ॥ शिरीजटाचार गुरु वीरसेन हैं। जैसेन शिरीपाल मुझे कामधेन हैं ॥ जै० ॥ इन एक एक गुरुने जो ग्रंथ बनाया। कहि कौन सके नाम कोइ पार ना पाया॥ जिनसेन गुरुने महापुराण रचा है। मरजाद क्रियाकांडका सब भेद सचा है ॥ जैवंत० २६ ॥ गुणभद्र गुरुने रचा उत्तर पुरानको। सो देव गुरुदेवजी कल्यान थानको ॥ रविसेन गुरूजीने रचा रामका पुरान। जो मोहतिमर भाननको भानुके समान ॥ जैवंत० २७ ॥

विद्यानंदजी मंडा। गुरुदेवने जडमूलसों पाखंडको खंडा॥जै०॥ गुरु पूज्यपादजी हुये मरजादके धोरी। सर्वार्थसिद्धि सूत्रकी टीका जिन्हों जोरी॥ जिसके लखेसों फिर न रहे चित्तमें भरम सवजीवको भाषे है सुपरभावका मरम॥ जैवंत० १२॥ धरसेंन गुरूजी हरो भवि वृंदकी व्यथा। अग्रायणीयपूर्वमें कुछ ज्ञान जिन्हे था॥ तिनके हुये दो शिष्य पुष्पदंत भुतवली धवलादिकोंका सूत्र किया जिस्से मग चली॥जैवंत० १३॥ गुरु औरने उस सूत्रका सव अर्थ लहा है। तिन धवल महाधवल जयसुधवल कहा है॥ गुरु नेमिचंद्रजी हुए धवलादिके पाठी। सिद्धांतके चक्रीशकी पदवी जिन्हों गांठी॥ जैवंत०॥ तिन तीनोंहीं सिद्धान्तके अनुसारसों प्यारे। गोमट्टसार आदि सुसिद्धांत उचारे॥ यह पहिले सुसिद्धांतका विरतंत कहा है। अव और सुनों भावसों जो भेदमहा है॥जैवंत० १५॥ गुण धर मुनीशने पढा था तीजा पराभृत। ज्ञानप्रवाद पूर्वमें जो भेद है आश्रित। गुरु हस्तिनागजीने सोई जिनसों लहा है। फिर तिनसों यतीनायकने मूल गहा है। जैवंत० १६॥ तिन चूर्णिका स्वरूप तिस्से सूत्र वनाया। परमान छै हजार यों सिद्धांतमें गाया॥ तिसका किया उद्धरण समुद्धरण जु टीका। वारह हजारके प्रमान ज्ञानकी ठीका॥जैवंत० १७॥ तिसहीसे रचा कुंदकुंदजीने सुशासन। जो आतमीक पर्म धर्मका है प्रकाशन॥ पंचास्तिकाय समयसार सारप्रवचन। इत्यादि सुसिद्धांत स्यादवादका रचन॥ जैवंत० १८॥ सम्यक्त्वज्ञान दर्श सुचारित्र अनूपा॥ गुरुदेव अमीइंदुने तिनकी करी टीका॥

पिंडिका फाटी, प्रगट भये जिनचंद्र उदार । सो० ॥ २ ॥ श्री अकलंकदेव मुनिवरसों, वाद रच्यौ जहँ बौद्ध विचार । तारा देवी घटमें थापी, पटके ओट करत उच्चार ॥ जीत्यो स्यादवाद-बल मुनिवर, बौद्धबोध तारामदटार । सो० ॥ ३ ॥ श्रीमत विद्यानंदि जबै, श्रीदेवागमथुति सुनी सुधार । अर्थहेत पहुँच्यो जिनमंदिर, मिल्यो अर्थ तहँ सुखदातार ॥ तब व्रत परमदिगंबरको धर, परमतको कीनो परिहार ॥ सो० ॥ ४ ॥ श्रीमत मानतुंग मुनिवरपर, भूप कोप जब कियौ गँवार । बंद कियौ तालोंमें तबही, भक्तामर गुरु रच्यौ उदार ॥ चक्रेश्वरी प्रगट तब ह्वैके, बंधन काट कियौ जयकार । सो० ॥ ५ ॥ श्रीमत वादिराज मुनिवरसों, कह्यो कुष्ठि भूपति जिहँवार । श्रावक सेठ कह्यो तिह अवसर, मेरे गुरु कंचनतनधार ॥ तबही एकीभाव रच्यौ गुरु, तन सुवरणद्युति भयौ अपार । सो० ॥ ६ ॥ श्रीमत कुमुदचंद्र मुनिवरसों, वाद पर्यो जहँ सभामझार । तब ही श्रीकल्यानधामथुति, श्रीगुरु रचना रची अपार ॥ तब प्रतिमा श्रीपार्श्वनाथकी, प्रगट भई त्रिभुवन जयकार । सो० । ७ । श्रीमत अभयचंद्र गुरुसों जब, दिल्लीपति इमि कही पुकार । कै तुम मोहि दिखावहु अतिशय, कै पकरौ मेरो मत सार ॥ तब गुरु प्रगट अलौकिक अतिशय, तुरत हर्यो ताको मद भार । सो गुरुदेव बसौ उर मेरे, विघन हरण मंगल करतार ॥ ८ ॥

दोहा ।

विघन हरण मंगल करण, वांछित फलदातार ।
'वृंदावन' अष्टक रच्यो, करौ कंठ सुखकार ॥

पुन्नाटगणविषै हुये जिनसेन दूसरे। हरिवंशको बनाके दास आसको भरे॥ इत्यादि जे वसुवीस सुगुण मूलके धारी। निर्ग्रंथ हुये हैं गुरू जिनग्रंथके कारी॥जैवंत०२८॥ वंदों तिन्हें मुनि जे हुये कवि काव्य करैया। वंदामि गमक साधु जो टीकाके धरैया॥ वादी नमों मुनिवादमें परवाद हरैया। गुरु वागमीककों नमो उपदेश करैया॥जैवंत० २९॥ ये नाम सुगुरु देवका कल्याण करै है। भवि वृंदका ततकालही दुख द्वंद हरे है॥ धनधान्य ऋद्धि सिद्धि नवों निद्धि भरे हैं। आनंद कंद देहि सबी विघ्न टरे हैं॥जैवंत० ३०॥ इह कंठमें धारै जो सुगुरु नामकी माला। परतीतसों उरप्रीतिसों ध्यावै जु त्रिकाला। इह लोकका सुख भोग सो सुर लोकमें जावै। नरलोकमें फिर आयके निरवानको पावै॥ ३१॥ जैवंत दयावंत सुगुरु देव हमारे। संसार विषम खारसों जिन भक्त उधारे॥ इति०॥

५७। मंगलाष्टक।

कवित्त (३१ मात्रा)

संघसहित श्रीकुंदकुंदगुरु, वंदनहेत गये गिरनार। वाद परचो तहँ संशयमतिसों, साक्षी वदी अंबिकाकार॥ 'सत्य पंथ निरग्रंथ दिगंबर', कही सुरी तहँ प्रगट पुकार। सो गुरुदेव वसो उर मेरे, विघन हरण मंगलकरतार॥१॥ स्वामि समंतभद्र मुनिवरसों, शिवकोटी हठ कियो अपार। वंदन करो शंभुपिंडीको, तब गुरु रच्यो स्वयंभू भार॥ वंदन करत

१। अंबिकादेवीकी मूर्तिको।

पिंडिका फाटी, प्रगट भये जिनचंद्र उदार । सो० ॥ २ ॥ श्री अकलंकदेव मुनिवरसों, वाद रच्यौ जहँ बौद्ध विचार । तारा देवी घटमें थापी, पटके ओट करत उच्चार ॥ जीत्यो स्यादवाद-बल मुनिवर, बौद्धबोध तारामदटार । सो० ॥ ३ ॥ श्रीमत विद्यानंदि जबै, श्रीदेवागमथुति सुनी सुधार । अर्थहेत पहुँच्यौ जिनमंदिर, मिल्यो अर्थ तहँ सुखदातार ॥ तब व्रत परमदिगंवरको धर, परमतको कीनो परिहार ॥ सो० ॥ ४ ॥ श्रीमत मानतुंग मुनिवरपर, भूप कोप जब कियो गँवार । वंद कियो तालोंमें तबही, भक्तामर गुरु रच्यौ उदार ॥ चक्रेश्वरी प्रगट तब ह्वैके, बंधन काट कियो जयकार ।सो० ॥ ५॥ श्रीमत वादिराज मुनिवरसों, कह्यो कुष्ठि भूपति जिहँवार । श्रावक सेठ कह्यो तिह अवसर, मेरे गुरु कंचनतनधार ॥ तबही एकीभाव रच्यौ गुरु, तन सुवरणद्युति भयो अपार । सो० ॥ ६ ॥ श्रीमत कुमुदचंद्र मुनिवरसों, वाद पर्‌यो जहँ सभामझार । तब ही श्रीकल्यानधामथुति, श्रीगुरु रचना रची अपार ॥ तब प्रतिमा श्रीपार्श्वनाथकी, प्रगट भई त्रिभुवन जयकार ।सो०।७। श्रीमत अभयचंद्र गुरुसों जब, दिल्लीपति इमि कही पुकार । के तुम मोहि दिखावहु अतिशय, कै पकरो मेरो मत सार ॥ तब गुरु प्रगट अलौकिक अतिशय, तुरत हर्‌यो ताको मद भार । सो गुरुदेव बसौ उर मेरे, विघन हरण मंगल करतार ॥८॥

दोहा।

विघन हरण मंगल करण, वांछित फलदातार ।
'वृंदावन' अष्टक रच्यो, करो कंठ सुखकार ॥

५८। आचार्यवर्य रविषेण स्तुति।

रविसे रविसेन अचारज हैं, भविवारिजके विकसावनहारे। जिन पद्मपुराण बखान कियो, भवसागरतें जगजंतु उधारे ॥ सियरामकथा सु जथारज भाखि, मिथ्यातसमूह समस्त विदारे। भवि 'वृंद' विथा अब क्यों न हरो, गुरुदेव तुम्हीं मम प्राण अधारे ॥ १ ॥

५९। आचार्यवर्य जिनसेन स्तुति।

भगवज्जिनसेन कविंद नमों, जिन आदि जिनिंदके छंद सुधारे। प्रथमानुसुवेद निवेदनमें जिनको परधान प्रमान उचारे ॥ जगमें मुदमंगल भूरि भरे, दुख दूर करे भवसागर तारे। भव 'वृंद' विथा अब क्यों न हरो गुरुदेव तुम्हीं मम प्रान अधारे ॥ २ ॥

६०। आचार्य श्रीशांतिसागरमहाराजकी स्तुति।

वंदूं दिगंबर शांतिसागर सूरिवर मुनिराज। शांतिप्रदायक सुख विधायक चरन जिनके आज ॥ तिन चरन सरन बिना न कटिहैं अष्टकर्मजंजीर। वे शांतिसागर मन बसहु मम हरहु पातकपीर ॥ १ ॥ जिन तन अपावन अथिर लखि, संसार सिन्धु अपार ॥ अरु भोग विषयकराल सब लखि विरक्ती चित धार ॥ तपचरनकी इच्छासु चितधर, तजी घरी जन भीर ॥ वे शांति० २ ॥ इम विरति गहने धाम तजि निज गये उत्तर ग्राम। तहँ स्वामि श्रीदेवेन्द्रकीर्ती, रहहिं धर्मनिधान। निर्ग्रंथ मुनिकी कठिन दीक्षा, गही निजपदनीर

॥ वे शांति० ३ ॥ यह वचन सुनि तव स्वामिने निज, वचन उचरे सार । मुनिकी जु दीक्षा कठिन है, तू क्षुल्लकी पद धार ॥ तव भये क्षुल्लक ऐलकीव्रत, चरत हैं नित धीर । वे शांति०॥ इम धार क्षुल्लकपद त्रिवत्सर, विहरि कर निज देश । बोधे अनेकन भव्यजन करके जु धृप-उपदेश ॥ पुनि गये पुरकुंभोज ढिग-बाहूवली गिरि तीर । वे शांति० ॥५॥ तहँ मुनि विराजहिं आदिसागर, तिन चरन ढिंग सार । धारे जु ऐलकके सु व्रत, पुनि वंदि श्रीगिरनार ॥ आये तहांतें गिरि जु कुंडल, वंदि श्रीजिनवीर । सो शांति०॥६॥ फिर ग्राम नसलापुर गये तहँ कियो चातुर मास । तहँतें विहरि बावानगरके वंदिकर जिन पास ॥ फिर गए ऐनापुर तहांपर, मुनि विराजे धीर । सो शांति० ॥७॥ तहँतें चले मुनि साथ ही, यरनाल है इक गाम । तहँ पंचकल्याणक महोत्सव, हो रहा सुखधाम ॥ तहँ पायसागर भी विराजे, स्वामि गुणगंभीर । सो शांति० ८॥ तब आपने मुनिकी जु दीक्षा, ग्रहणके सु विचार । कीनें प्रगट मुनिचरनढिंग, तिन कह्यो कठिन अपार ॥ तौ भी जु मुनिव्रत गहे रुचिसों, जान सुचल शरीर । सो शांति० ९ ॥ तुम सातगोड़ा नाम धारी, शांतिसागर सोय । कीनी तपस्या घोर परिसह, सहनकर शुचि होय ॥ फिर विहरि तहँतें कोगनोली ग्राम आये धीर । सो शांति० ॥१०॥ कियो कोगनोली ग्राममें ही चतुरमासा सार । तहंपर सही अति घोर परिषह तनममत परिहार ॥ पुनि विहरि कर समडोलि आये, फिर नसलपुरतीर । सो शांति० ॥११॥ इम तप करत परिसह

सहत, उपदेश दे सविवेक। कोन्नूरपुर आये जहां गिरिगुफा हैं जु अनेक॥ तहँ चतुरमासा किया जबही, भविनकी भइ भीर। सो शांति० ॥१२॥ तिन चरनढिंग पा शांति भविजन, तजा गृहका भार। प्रतिमा धरी जु अनेक भवि गुरुवचन चित मैं धार॥ जब ध्यान धर तिष्ठे गुफामें, फणि चढ्यो जु शरीर। सो शांति० ॥ १३ ॥ फणि देखि तुम तन पर भविकजन कियो सोच विचार। किंहविध जु यह उपसर्ग टरि है, किये बहु उपचार॥ तो भी न फणिका मन भरा तजता, न तुमतन तीर। सो शांति० ॥१४॥ जब ध्यान पूरनका समय आया, तबहिं तज दर्प। स्वयमेव मनमें धार मुनितन, तज गया वह सर्प॥ यह लखि महातम भविकजन, सब शांति पा चित धीर। सो शांति० १५॥ पुनिजाय नांदणि ग्राममें, शुभ चतुर मासा थाप। मुनि वीरसागर चंद्रसागर, आदि जुत श्री आप॥ तहं भव्यजन आये बहुत व्रत, धरे तुमपद तीर। सो शांति० ॥१६॥ पुनिकर विहार प्रचार जिनवृष, आठ मास मझार। कुंभोजढिंग गिरि, बाहुबलिपर, चतुरमासा धार॥ बहुसंघने उपदेश पाकर, निकट की, भवतीर। सो शांति० १७॥ तहँ सेठ घासीलाल पूनमचंद नयकर माथ। सम्मेदगिरिको संघ लेकर, चलहु श्रीमुनिनाथ॥ यह प्रार्थना मुनि संघसह, चाले तहांतें धीर। सो शांति० ॥१८॥ तहंतें चले चउसंघ सहित जु करत वृष-उपदेश। तुम चरनरजसों किये पावन सबहि उत्तर देश॥ सम्मेदगिरपर लख भविजन, पाय दर्शन धीर। सो शांति०॥१९॥ फाल्गुन सुदी तृतीया दिवस, चौबीस

चौपन शाल। तुम चरन दर्शन पाय पावन, भयो 'पन्नालाल'। नित मिलो तुम-पद-सेव येही, चाह चितमें धीर। सो शांति-सागर मन बसहु मम, हरहु पातक पीर॥ २०॥ इति॥

—:⁝:—

चौथा अध्याय।

स्तोत्रसंग्रह संस्कृत और भाषा।

भगवज्जिनसेनाचार्यकृतं

६१। श्रीजिनसहस्रनाम स्तोत्रं।

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि। स्वात्मनैव तथोद्भूतवृत्तये ऽचिंत्यवृत्तये॥ १॥ नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमो नमः। विदांवर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतांवर॥२॥ कामशत्रुहणं देवमामनन्ति मनीषिणः। त्वामानमत्सुरेण्मौलि-भामालाभ्यर्चितक्रमम्॥ ३॥ ध्यानद्रुघणनिर्भिन्नघनघाति-महातरुः। अनन्तभवसंतानजयोदासीरनन्तजित्॥ ४॥ त्रैलोक्यनिर्जयाव्याप्तदुर्दर्पमतिदुर्जयम्। मृत्युराजं विजित्यासीज्जन्ममृत्युञ्जयो भवान्॥५॥ विधूताशेषसंसारो बन्धुर्नो भव्य-बान्धवः। त्रिपुरारिस्त्वमीशोसि जन्ममृत्युजरान्तकृत्॥ ६॥ त्रिकालविजयाशेषतत्त्वभेदात् त्रिधोच्छ्रितम्। केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोसि त्वमीशिता॥७॥ त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहा-न्धासुरमर्दनात्। अर्द्धन्ते नारयो यस्मादर्धनारीश्वरोस्यतः॥ ८॥ शिवः शिवपदाध्यासाद् दुरितारिहरो हरः। शंकरः कृतशं लोके संभवस्त्वं भवन्सुखे॥९॥ वृषभोसि जगज्ज्येष्ठः गुरुर्गुरुः

गुणोदयैः नाभेयो नाभिसंभूतेरिक्ष्वाकुकुलनन्दनः ॥ १० ॥
त्वमेकः पुरुषस्कंधस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने। त्वं त्रिधाबुद्धसन्मार्ग-
स्त्रिज्ञस्त्रिज्ञानधारकः ॥११॥ चतुःशरणमांगल्यमूर्तिस्त्वं चतुरः
सुधीः। पञ्चब्रह्ममयो देवः पावनस्त्वं पुनीहि माम् ॥ १२ ॥
स्वर्गावतारिणे तुभ्यं सद्योजातात्मने नमः। जन्माभिषेक-
वामाय वामदेव नमोस्तु ते ॥ १३ ॥ सुनिःक्रांताय घोराय परं
प्रशममीयुषे। केवलज्ञानसंसिद्धावीशानाय नमोस्तु ते ॥१४॥
पुरस्तत्पुरुषत्वेन विमुक्तपदभागिने। नमस्तत्पुरुषावस्थां
भावनानर्थं बिभ्रते ॥ १५ ॥ ज्ञानावरणनिर्ह्रास नमस्तेऽनन्त-
चक्षुषे। दर्शनावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदर्शिने ॥ १६ ॥ नमो
दर्शनमोहादिक्षायिकामलदृष्टये। नमश्चारित्रमोहघ्ने विरागाय
महौजसे ॥ १७ ॥ नमस्तेऽनन्तवीर्याय नमोनंतसुखाय ते
नमस्तेऽनंतलोकाय लोकालोकविलोकिने ॥१८॥ नमस्तेऽनंत-
दानाय नमस्तेऽनंतलब्धये। नमस्तेऽनंतभोगाय नमोऽनंताय
भोगिने ॥ १९ ॥ नमः परमयोगाय नमस्तुभ्यमयोनये। नमः
परमपूताय नमस्ते परमर्षये ॥ २० ॥ नमः परमविद्याय नमः
परमतच्छिदे। नमः परमतत्वाय नमस्ते परमात्मने ॥ २१ ॥
नमः परमरूपाय नमः परमतेजसे। नमः परममार्गाय नमस्ते
परमेष्ठिने ॥ २२ ॥ परमर्द्धिजुषे धाम्ने परमज्योतिषे नमः।
नमः पारेतमःप्राप्तधाम्ने ते परमात्मने ॥ २३ ॥ नमः क्षीण-
कलंकाय क्षीणबंध नमोऽस्तु ते। नमस्ते क्षीणमोहाय क्षीण-
दोषाय ते नमः ॥ २४ ॥ नमः सुगतये तुभ्यं शोभनागतिमी-
युषे। नमस्तेऽतीन्द्रियज्ञानसुखायानिन्द्रियात्मने ॥ २५ ॥

कायबंधननिर्मोक्षादकायाय नमोस्तु ते। नमस्तुभ्यमयोगाय योगिनामपि योगिने ॥ २६ ॥ अवेदाय नमस्तुभ्यमकषायाय ते नमः। नमः परमयोगीन्द्रवंदितांघ्रिद्वयाय ते ॥२७॥ नमः परमविज्ञान नमः परमसंयम। नमः परमदृग्दृष्टपरमार्थाय ते नमः ॥२८॥ नमस्तुभ्यमलेश्याय शुक्ललेश्यांशकस्पृशे। नमो भव्येतरावस्थाव्यतीताय विमोक्षणे ॥ २९ ॥ संज्ञासंज्ञिद्वयावस्थातिरिक्तामलात्मने। नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये ॥ ३० ॥ अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे। व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धेः पारमीयुषे ॥३१॥ अजराय नमस्तुभ्यं नमस्तेऽतीतजन्मने। अमृत्यवे नमस्तुभ्यमचलायाक्षरात्मने ॥३२॥ अलमास्तां गुणस्तोत्रमनन्तास्तावका गुणाः। त्वन्नामस्मृतिमात्रेण परमं शं प्रशास्महे ॥ ३३ ॥

इति प्रस्तावना

प्रसिद्धाष्टसहस्रेद्धलक्षणस्त्वं गिरां पतिः। नाम्नामष्टसहस्रेण त्वां स्तुमोऽभीष्टसिद्धये ॥ १ ॥ एवं स्तुत्वा जिनं देवं भक्त्यापरमया सुधीः। पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्रं पापशान्तये ॥ श्रीमान्स्वयंभूर्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः। स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः ॥ २ ॥ विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः। विश्वविद्विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनीश्वरः ॥ ३ ॥ विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः। विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः ॥ ४ ॥ विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः। विश्वदृग् विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः ॥ ५ ॥ जिनो जिष्णुरमेयात्मा जगदीशो जगत्पतिः। अनंतचिदचिन्त्यात्मा

भव्यबंधुरबंधनः ॥ ६ ॥ युगादिपुरुषो ब्रह्मा पंचब्रह्ममयः
शिवः। परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः ॥ ७ ॥ स्वयं-
ज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिजः। मोहारिविजयी जेता
धर्मचक्री दयाध्वजः ॥ ८ ॥ प्रशांतारिरनंतात्मा योगी योगी-
श्वरार्चितः। ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः ॥ ९ ॥
शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः। सिद्धः सिद्धां-
तविद् ध्येयः सिद्धसाध्यो जगद्धितः ॥१०॥ सहिष्णुरच्युतो-
नंतः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः। प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धी-
श्वरोऽव्ययः ॥ ११ ॥ विभावसुरसंभूष्णुः स्वयंभूष्णुः पुरातनः।
परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः ॥ १२ ॥

इति श्रीमदादिशतम् ॥ १ ॥

(यहां उदकचंदनतंदुल० आदि श्लोक पढ़कर अर्घ चढ़ाना चाहिये)

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः। पूतात्मा परम-
ज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः ॥ १ ॥ श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजा
विरजाः शुचिः। तीर्थकृत्केवलीशानः पूजार्हः स्नातकोऽमलः ॥
२ ॥ अनंतदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयंबुद्धः प्रजापतिः। मुक्तः शक्तो
निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः ॥ ३ ॥ निरंजनो जगज्ज्यो-
तिर्निरुक्तोक्तिरनामयः अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणु-
रक्षयः ॥ ४ ॥ अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत्।
शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत् ॥ ५ ॥ वृषध्वजो
वृषाधीशो वृषकेतुर्वृषायुधः। वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभांको
वृषोद्भवः ॥ ६ ॥ हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद्भूतभावनः।
प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तकः ॥ ७ ॥ हिर-
ण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोऽभवः। स्वयंप्रभुः प्रभूतात्मा

दमप्रभुः । प्रशमात्मा प्रशांतात्मा पुराणपुरुषोत्तमः ॥ ११ ॥

इति स्थविष्ठादिशतम् ॥ ३ ॥ अर्घं ।

महाशोकध्वजोऽशोकः कः स्रष्टा पद्मविष्टरः । पद्मेशः पद्मसंभूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः ॥१॥ पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः । स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः ॥२॥ गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः । गुणाकरो गुणांभोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः ॥ ३ ॥ गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः । शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः ॥ ४ ॥ अगण्यः पुण्यधीर्गण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः । धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः ॥५॥ पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः । निर्द्वंद्वो निर्मदः शांतो निर्मोहो निरुपद्रवः ॥ ६ ॥ निर्निमेषो निराहारो निःक्रियो निरुपप्लवः । निष्कलंको निरस्तैना निर्धूतांगो निरास्रवः ॥ ७ ॥ विशालो विपुलज्योतिरतुलोऽचिंत्यवैभवः । सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुबुत्सुनयतत्त्ववित् ॥८॥ एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः । धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतांतकः ॥९॥ पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः । त्राता भिषग्वरो वर्यो वरदः परमः पुमान् ॥१०॥ कविः पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः । प्रतिष्ठाप्रसवो हेतुर्भुवनैकपितामहः ॥ ११ ॥

इति महाशोकध्वजादिशतम् ॥ ४ ॥ अर्घं ।

श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः । निरक्षः पुंडरीकाक्षः पुष्कलः पुष्कलेक्षणः ॥ १ ॥ सिद्धिदः सिद्धसंकल्पः

सिद्धात्मा सिद्धिसाधनः । बुद्धबोध्यो महाबोधिर्वर्धमानो महर्द्धिकः ॥२॥ वेदांगो वेदविद्वेद्यो जातरूपो विदांवरः । वेदवेद्यः स्वयंवेद्यो विवेदो वदतांवरः ॥ ३ ॥ अनादिनिधनो व्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः । युगादिकृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिजः ॥४॥ अतींद्रोऽतींद्रियो धींद्रो महेंद्रोऽतींद्रियार्थदृक् । अनिंद्रियोऽहमिंद्रार्च्यो महेंद्रमहितो महान् ॥ ५ ॥ उद्भवः कारणं कर्ता पारगो भवतारकः । अग्राह्यो गहनं गुह्यं परार्घ्य परमेश्वरः ॥६॥ अनंतर्द्धिरमेयर्द्धिरचिंत्यर्द्धिः समग्रधीः । प्राग्र्यः प्राग्रहरोऽभ्यग्र्यः प्रत्यग्रोग्र्योग्रिमोग्रजः ॥ ७ ॥ महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः । महायशो महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः ॥ ८ ॥ महाधैर्यो महावीर्यो महासंपन्महाबलः । महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युतिः ॥ ९ ॥ महामतिर्महानीतिर्महा क्षांतिर्महोदयः । महाप्राज्ञो महाभागो महानंदो महाकविः ॥ १० ॥ महामहामहाकीर्तिर्महाकांतिर्महावपुः । महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥ ११ ॥ महामहपतिः प्राप्तमहाकल्याणपंचकः । महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥ १२ ॥

इति श्रीवृक्षादिशतम् ॥ ५ ॥ अर्थ ।

महामुनिर्महामौनी महाध्यानी महादमः । महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥ १ ॥ महाव्रतपतिर्मह्यो महाकांतिधरोऽधिपः । महामैत्रीमयोऽमेयो महोपायो महोदयः ॥ २ ॥ महाकारुण्यको मंता महामंत्रो महायतिः । महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः ॥ ३ ॥ महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महे-

स्त्वाङ् । महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदयः ॥ ४ ॥ महाक्लेशांकुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः । महापराक्रमोऽनंतो महाक्रोधरिपुर्वशी ॥५॥ महाभवाब्धिसंतारिर्महामोहाद्रिसूदनः । महागुणाकरः क्षांतो महायोगीश्वरः शमी ॥ ६ ॥ महाध्यानपतिर्ध्याता महाधर्मा महाव्रतः । महाकर्मारिरात्मज्ञो महादेवो मदेशिता ॥ ७ ॥ सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः । असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥ ८ ॥ सर्वयोगीश्वरोऽचिंत्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः । दांतात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः ॥९॥ प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः । प्रक्षीणबंधः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः ॥ १० ॥ प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः । प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोऽध्वर्युरध्वरः ॥ ११ ॥ आनंदो नंदनो नंदो वंद्योऽनिंद्योऽभिनंदनः । कामहा कामदः काम्यः कामधेनुरारिंजयः ॥ १२ ॥

इति महामुन्यादिशतम् ॥ ६ ॥ भग ।

असंस्कृतसुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतांतकृत् । अंतकृत्कांतिगुः कांतश्चिंतामणिरभीष्टदः ॥१॥ अजितो जितकामारिरमितोऽमितशासनः । जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितांतकः ॥ २ ॥ जिनेंद्रः परमानंदो मुनींद्रो दुंदुभिस्वनः । महेंद्रवंद्यो योगींद्रो यतींद्रो नाभिनंदनः ॥ ३ ॥ नाभेयो नाभिजोऽजातः सुव्रतो मनुरुत्तमः । अभेद्योऽनत्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः सुधीः ॥ ४ ॥ सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः । विशिष्टः शिष्टभुक् शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः ॥ ५ ॥ क्षेमी क्षेमंकरोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपतिः क्षमी । अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो

ध्यानगम्यो निरुत्तरः ॥ ६ ॥ सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः। श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः ॥७॥ सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः। सत्याशीः सत्यसंधानः सत्यः सत्यपरायणः ॥८॥ स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान्दूरदर्शनः। अणोरणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसां ॥ ९ ॥ सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः। सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥ १० ॥ सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत्। सुगुप्तो गुप्तिभृद्गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥११॥

इति असंस्कृतादिशतम् ॥ ७ ॥ अर्घं।

बृहन्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः। मनीषी धिषणो धीमांश्छेमुषीशो गिरांपतिः ॥ १ ॥ नैकरूपो नयस्तुंगो नैकात्मा नैकधर्मकृत्। अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥ २ ॥ ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः। पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३॥ लक्ष्मीवांस्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता। मनोहरो मनोज्ञांगो धीरो गंभीरशासनः ॥ ४ ॥ धर्मयूपो दयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः। धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥ ५ ॥ अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः। सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥ ६ ॥ सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः। अलेपो निष्कलंकात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥ ७ ॥ वश्येंद्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेंद्रियः। प्रशांतोऽनंतधामर्षिर्मंगलं मलहानघः ॥ ८ ॥ अनीदृगुपमाभूतो दृष्टिर्दैवमगोचरः। अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक् ॥९॥ अध्या-

स्त्वगम्यो गम्यात्मा योगविद्योगिवंदितः। सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक् ॥१०॥ शंकरः शंवदो दांतो दमी क्षांतिपरायणः। अधिपः परमानंदः परात्मज्ञः परात्परः ॥ ११ ॥ त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मंगलोदयः। त्रिजगत्पतिपूजांघ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः ॥ १२ ॥

इति बृहदादिशतम् ॥ ८ ॥ अर्घ्यं।

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढव्रतः। सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः ॥ १ ॥ पुराणपुरुषः पूर्वः कृतपूर्वांगविस्तरः। आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता ॥ २ ॥ युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः। कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः ॥ ३ ॥ कल्याणः प्रकृतिर्दीप्तः कल्याणात्मा विकल्मषः। विकलंकः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः ॥ ४ ॥ देवदेवो जगन्नाथो जगद्बंधुर्जगद्विभुः। जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः ॥ ५ ॥ चराचरगुरुर्गोप्यो गूढात्मा गूढगोचरः। सद्योजातः प्रकाशात्मा ज्वलज्ज्वलनसप्रभः ॥ ६ ॥ आदित्यवर्णो भर्माभः सुप्रभः कनकप्रभः। सुवर्णवर्णो रुक्माभः सूर्यकोटिसमप्रभः ॥७॥ तपनीयनिभस्तुंगो बालार्काभोऽनलप्रभः। संध्याभ्रबभ्रुर्हेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः ॥८॥ निष्टप्तकनकच्छायः कनत्कांचनसन्निभः। हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुंभनिभप्रभः ॥९॥ द्युम्नाभो जातरूपाभो दीप्तजांबूनदद्युतिः। सुधौतकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥ १० ॥ शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरः क्षमः। शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥११॥

शांतिनिष्ठो मुनिज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः । शांतिदः शांतिकृच्छांतिः कांतिमान्कामितप्रदः ॥ १२ ॥ श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः । सुस्थितः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥ १३ ॥

इति त्रिकालदर्श्यादिशतम् ॥ ६ ॥ अथ ।

दिग्वासा वातरशनो निर्ग्रंथेशो निरंबरः । निष्किंचनो निराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥ १ ॥ तेजोराशिरनंतौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः । तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिर्मूर्तिस्तमोपहः ॥ २ ॥ जगच्चूडामणिर्दीप्तः सर्वविघ्नविनायकः । कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः ॥ ३ ॥ अनिद्रालुरतंद्रालुर्जागरूकः प्रभामयः । लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ॥ ४ ॥ मुमुक्षुर्बंधमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः । प्रशांतरसशैलूपो भव्यपेटकनायकः ॥ ५ ॥ मूलकर्ताखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणः । आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक् ॥ ६ ॥ प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित् । सुतनुस्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः ॥ ७ ॥ श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयंकरः । उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः ॥ ८ ॥ लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः । धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक् ॥ ९ ॥ प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेंद्रियः । भदंतो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः ॥ १० ॥ समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः । कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेयविचक्षणः ॥ ११ ॥ अनंतशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः । त्रिनेत्रस्त्र्यंबकस्त्र्य-

क्षः केवलज्ञानवीक्षणः ॥ १२ ॥ समंतभद्रः शांतारिर्धर्माचार्यो
दयानिधिः। सूक्ष्मदर्शी जितानंगः कृपालुर्धर्मदेशकः ॥ १३॥
शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशिरनामयः। धर्मपालो जगत्पालो
धर्मसाम्राज्यनायकः ॥ १४ ॥

इति दिग्वासादि शतं ॥ १० ॥ इत्यर्हज्जिनसहस्रनामस्तोत्रं समाप्तं ।

अर्घ ।

धाम्नांपते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः। समुच्चितान्य-
नुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत् ॥ १ ॥ गोचरोऽपि गिरामासां
त्वमवाग्गोचरो मतः। स्तोता तथाप्यसंदिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं
लभेत् ॥ २ ॥ त्वमतोऽसि जगद्बंधुस्त्वमतोऽसि जगद्भिषक्।
त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः ॥ ३ ॥ त्वमेकं
जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोपयोगभाक्। त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यंगो
स्वोत्थानंतचतुष्टयः ॥४॥ त्वं पंचब्रह्मतत्त्वात्मा पंचकल्याणना-
यकः। षड्भेदभावतत्त्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः ॥५॥ दिव्याष्टगुण-
मूर्तिस्त्वं नवकेवललब्धिकः। दशावतारनिर्धार्यो मां पाहि पर-
मेश्वरः ॥६॥ युष्मन्नामावलीदृब्धविलसत्स्तोत्रमालया। भवंतं
वरिवस्यामः प्रसीदानुगृहाण नः ॥७॥ इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो
भवति भाक्तिकः। यः संपाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनं
॥ ८ ॥ ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठति पुण्यधीः। पौरुहूतीं
श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः ॥ ९ ॥ स्तुत्वेति मघवा देवं
चराचरजगद्गुरुं। ततस्तीर्थविहारस्य व्यधात्प्रस्तावनामिमां
॥ १० ॥ स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः।
निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखं ॥ ११ ॥

यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः स्तोता स्वयं कस्यचित्
ध्येयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयं कस्यचित् ॥
यो नेतृन् नयते नमस्कृतिमलं नंतव्यपक्षेक्षणः
स श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवः पुरुः पावनः ॥ १२ ॥
तं देवं त्रिदशाधिपार्चितपदं घातिक्षयानंतरं
प्रोत्थानंतचतुष्टयं जिनमिमं भव्याब्जनीनामिनं ।
मानस्तंभविलोकनानतजगन्मान्यं त्रिलोकीपतिं
प्राप्ताचिंत्यबहिर्विभूतिमनघं भक्त्या प्रवंदामहे ॥ १३ ॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

इतिश्रीभगवज्जिनसेनाचार्यविरचितजिनसहस्रनामस्तवनं समाप्तम् ।

६२। श्रीमानतुंगाचार्यविरचित आदिनाथस्तोत्र ।

भक्तामर स्तोत्र ।

वसंततिलका ।

भक्तामरप्रणतमौलिमणिप्रभाणामुद्योतकं दलितपापतमोवितानं । सम्यक् प्रणम्य जिनपादयुगं युगादावालंबनं भवजले पततां जनानां ॥ १ ॥ यः संस्तुतः सकलवाङ्मयतत्त्वबोधादुद्भूतबुद्धिपटुभिः सुरलोकनाथैः । स्तोत्रैर्जगत्त्रितयचित्तहरैरुदारैः, स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेंद्रं ॥ २ ॥ बुद्ध्या विनापि विबुधार्चितपादपीठ स्तोतुं समुद्यतमतिर्विगतत्रपोऽहं । बालं विहाय जलसंस्थितमिंदुबिंबमन्यः क इच्छति जनः सहसा गृहीतुं ॥ ३ ॥ वक्तुं गुणान्गुणसमुद्र शशांककांतान्, कस्ते क्षमः सुरगुरुप्रतिमोऽपि बुद्ध्या । कल्पांतकालपवनोद्धतनक्रचक्रं, को वा तरीतुमलमंबुनिधिं भुजाभ्यां ॥ ४ ॥ सोऽहं तथापि तव भक्तिवशान्मुनीश, कर्तुं स्तवं विगतश-

क्तिरपि प्रवृत्तः । प्रीत्यात्मवीर्यमविचार्य मृगी मृगेंद्रं, नाभ्येति
किं निजशिशोः परिपालनार्थं ॥ ५ ॥ अल्पश्रुतं श्रुतवतां प-
रिहासधाम, त्वद्भक्तिरेव मुखरीकुरुते बलान्मां । यत्कोकिलः
किल मधौ मधुरं विरौति, तच्चाम्रचारुकलिकानिकरैकहेतु ॥
६ ॥ त्वत्संस्तवेन भवसंततिसन्निबद्धं पापं क्षणात्क्षयमुपैति
शरीरभाजां । आक्रांतलोकमलिनीलमशेषमाशु, सूर्यांशुभिन्न-
मिव शार्वरमंधकारं ॥ ८ ॥ मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनुधियापि तव प्रभावात् । चेतो हरिष्यति सतां
नलिनीदलेषु, मुक्ताफलद्युतिमुपैति ननूदबिंदुः ॥ ८ ॥ आस्तां
तव स्तवनमस्तसमस्तदोषं, त्वत्संकथापि जगतां दुरितानि हंति ।
दूरे सहस्रकिरणः कुरुते प्रभैव, पद्माकरेषु जलजानि विकासभां-
जि ॥ ९ ॥ नात्यद्भुतं भुवनभूषण भूतनाथ ! भूतैर्गुणैर्भुवि
भवंतमभिष्टुवंतः । तुल्या भवंति भवतो ननु तेन किं वा, भूत्या-
श्रितं य इह नात्मसमं करोति ॥ १० ॥ दृष्ट्वा भवंतमनिमेष-
विलोकनीयं, नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः । पीत्वा पयः
शशिकरद्युतिदुग्धसिंधोः क्षारं जलं जलनिधे रसितुं क इच्छे-
त् ॥ ११ ॥ यैः शांतरागरुचिभिः परमाणुभिस्त्वं, निर्मापित-
स्त्रिभुवनैकललामभूत । तावंत एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति ॥ १२ ॥ वक्त्रं क्व ते सुर-
नरोरगनेत्रहारि, निःशेषनिर्जितजगत्त्रितयोपमानं । बिंबं
कलंकमलिनं क्व निशाकरस्य, यद्वासरे भवति पांडुपलाशकल्पं
॥ १३ ॥ संपूर्णमंडलशशांककलाकलापशुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं
तव लंघयंति । ये संश्रितास्त्रिजगदीश्वरनाथमेकं, कस्तान्नि-

वारयति संचरत्तो यथेष्टं ॥ १४ ॥ चित्रं किमत्र यदि ते त्रि-
दशांगनाभिर्, नीतं मनागपि मनो न विकारमार्गं । कल्पांत-
कालमरुता चलिताचलेन, किं मंदराद्रिशिखरं चलितं कदा-
चित् ॥ १५ ॥ निर्धूमवर्त्तिरपवर्जिततैलपूरः, कृत्स्नं जगत्त्र-
यमिदं प्रकटीकरोषि । गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ जगत्प्रकाशः ॥१६॥ नास्तं कदाचिदु-
पयासि न राहुगम्यः स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगंति । नांभो-
धरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः सूर्यातिशायिमहिमासि मुनींद्र लोके
॥ १७ ॥ नित्योदयं दलितमोहमहांधकारं, गम्यं न राहुवदन-
स्य न वारिदानां । विभ्राजते तव मुखाब्जमनल्पकांति, विद्यो-
तयज्जगदपूर्वशशांकविंबं ॥ १८ ॥ किं शर्वरीषु शशिनाह्नि
विवस्वता वा, युष्मन्मुखेंदुदलितेषु तमस्सु नाथ । निष्पन्नशा-
लिवनशालिनि जीवलोके, कार्यं कियज्जलधरैर्जलभारनम्रैः
॥ १९ ॥ ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं, नैवं तथा
हरिहरादिषु नायकेषु । तेजःस्फुरन्मणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काचशकले किरणाकुलेऽपि ॥ २० ॥ मन्ये वरं हरि-
हरादय एव दृष्टा, दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति । किं वी-
क्षितेन भवता भुवि येन नान्यः, कश्चिन्मनो हरति नाथ
भवांतरेऽपि ॥ २१ ॥ स्त्रीणां शतानि शतशो जनयंति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता । सर्वा दिशो दधति भानि
सहस्ररश्मिं, प्राच्येव दिग् जनयति स्फुरदंशुजालं ॥ २२ ॥
त्वामामनंति मुनयः परमं पुमांसमादित्यवर्णममलं तमसः
पुरस्तात् । त्वामेव सम्यगुपलभ्य जयंति मृत्युं, नान्यः

[illegible] मुनीन्द्र पंथाः ॥२३॥ त्वामव्ययं विभु[illegible]

[illegible] ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुं । योगीश्वरं वि[illegible]

[illegible] ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदंति संतः ॥ २४ ॥

[illegible] विबुधार्चितबुद्धिबोधात्, त्वं शंकरोऽसि भुव[illegible]

[illegible] । धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात् व्य[illegible]

[illegible] भगवन्पुरुषोत्तमोऽसि ॥ २५ ॥ तुभ्यं नमस्त्रिभु[illegible]

[illegible] नाथ, तुभ्यं नमः क्षितितलामलभूषणाय । तु[illegible]

[illegible] परमेश्वराय, तुभ्यं नमो जिन भवोदधि[illegible]

[illegible] ॥ २६ ॥ को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषै[illegible]

[illegible] मुनीश । दोषैरुपात्तविविधाश्रय[illegible]

[illegible] कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥ २७ ॥

[illegible]

॥ ३२ ॥ मंदारसुंदरनमेरुसुपारिजातसंतानकादिकुसुमोत्कर-वृष्टिरुद्धा । गंधोदबिंदुशुभमंदमरुत्प्रयाता, दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥३३॥ शुंभत्प्रभावलयभूरिविभा विभोस्ते, लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपंती । प्रोद्यद्दिवाकरनिरंतरभूरिसंख्या, दीप्त्या जयत्यपि निशामपि सोमसौम्यां ॥ ३४ ॥ स्वर्गापवर्गगममार्गविमार्गणेष्टः नद्धर्मतत्त्वकथनैकपटुस्त्रिलोक्याः । दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थसर्वभाषास्वभावपरिणाम-गुणैः प्रयोज्यः ॥ ३५ ॥ उन्निद्रहेमनवपंकजपुंजकांती, पर्युल्लसन्नखमयूखशिखाभिरामौ । पादौ पदानि तव यत्र जिनेंद्र ! धत्तः, पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयंति ॥ ३६ ॥ इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेंद्र, धर्मोपदेशनविधौ न तथा परस्य । यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतांधकारा, तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकाशिनोपि ॥ ३७ ॥ श्च्योतन्मदाविलविलोलकपोलमूल-मत्तभ्रमद्भ्रमरनादविवृद्धकोपं । ऐरावताभमिभमुद्धतमापतंतं, दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानां ॥ ३८ ॥ भिन्नेभ-कुंभगलदुज्ज्वलशोणिताक्तमुक्ताफलप्रकरभूषितभूमिभागः । बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि, नाक्रामति क्रमयुगाचल-संश्रितं ते ॥३९॥ कल्पांतकालपवनोद्धतवह्निकल्पं, दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिंगं । विश्वं जिघत्सुमिव संमुखमाप-तंतं, त्वन्नामकीर्तनजलं शमयत्यशेषं ॥ ४० ॥ रक्तेक्षणं समद-कोकिलकंठनीलं, क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतंतं । आक्रा-मति क्रमयुगेन निरस्तशंकस्त्वन्नामनागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥ ४१ ॥ वल्गत्तुरंगगजगर्जितभीमनादमाजौ बलं बल-

वतामपि भूपतीनां । उद्यद्दिवाकरमयूखशिखापविद्धं, त्वत्कीर्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥४२॥ कुंताग्रभिन्नगजशोणितवारिवाहवेगावतारतरणातुरयोधभीमे । युद्धे जयं विजितदुर्जयजेयपक्षास्, त्वत्पादपंकजवनाश्रयिणो लभंते ॥ ४३ ॥ अंभोनिधौ क्षुभितभीषणनक्रचक्र, पाठीनपीठमयदोल्वणवाडवाग्नौ । रंगत्तरंगशिखरस्थितयानपात्रास् त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद् व्रजंति ॥ ४४ ॥ उद्भूतभीषणजलोदरभारभुग्नाः शोच्यां दशामुपगताश्च्युतजीविताशाः। त्वत्पादपंकजरजोमृतदिग्धदेहा, मर्त्या भवंति मकरध्वजतुल्यरूपाः ॥४५॥ आपादकंठमुरुशृंखलवेष्टितांगा, गाढं बृहन्निगडकोटिनिघृष्टजंघाः । त्वन्नाममंत्रमनिशं मनुजाः स्मरंतः, सद्यः स्वयं विगतबंधभया भवंति ॥४६॥ मत्तद्विपेंद्रमृगराजदवानलाहिसंग्रामवारिधिमहोदरबंधनोत्थं । तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव, यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥ ४७ ॥ स्तोत्रस्रजं तव जिनेंद्र गुणैर्निबद्धां, भक्त्या मया विविधवर्णविचित्रपुष्पां। धत्ते जनो य इह कंठगतामजस्रं, तं मानतुंगमवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥ ४८ ॥

इति श्रीमानतुंगाचार्यविरचितमादिनाथस्तोत्रं समाप्तं ॥

६३ । अथ भक्तामर भाषा ।

(स्वर्गीय पं० हेमराजकृत)

आदिपुरुष आदीश जिन, आदि सुविधिकरतार ।
परमधुरंधर परमगुरु, नमों आदि अवतार ॥ १ ॥
सुरनत मुकुट रतन छवि करैं । अंतर पापतिमिर सब

हरें ॥ जिनपद वंदों मनवचकाय। भवजलपतित-उधरनसहाय
॥ १ ॥ श्रुतपारग इंद्रादिक देव। जाकी थुति कीनी कर सेव ॥
शब्द मनोहर अरथ विशाल। तिस प्रभुकी वरनों गुनमाल ॥
विबुधवंद्यपद मैं मतिहीन। हो निलज्ज थुति-मनसा कीन।
जलप्रतिबिंब बुद्ध को गहै। शशिमंडल बालक ही चहै ॥३॥
गुनसमुद्र तुमगुन अविकार। कहत न सुरगुरु पावै पार ॥ प्रल-
यपवनउद्धत जलजंतु। जलधि तिरै को भुजबलवंतु ॥ ४ ॥
सो मैं शक्तिहीन थुति करूं। भक्तिभाववस कछु नहिं डरूं ॥
ज्यों मृग निज सुत पालन हेत। मृगपतिसन्मुख जाय अचेत ॥
मैं शठ सुधीहँसनको धाम। मुझ तव भक्ति बुलावै राम ॥ ज्यों
पिक अंबकली परभाव। मधुऋतु मधुर करै आराव ॥ ६ ॥
तुमजस जंपत जन छिनमाहिं। जनमजनमके पाप नशाहिं ॥
ज्यों रवि उगै फटै ततकाल। अलिवत नील निशातमजाल ॥
तव प्रभावतैं कहूं विचार। होसी यह थुति जनमनहार ॥ ज्यों
जल कमलपत्रपै परै। मुक्ताफलकी द्युति विस्तरै ॥ ८ ॥ तुम
गुन महिमा हतदुखदोष। सो तो दूर रहो सुखपोष ॥ पाप
विनाशक है तुमनाम। कमलविकाशी ज्यों रविधाम ॥ ९ ॥
नहिं अचंभ जो होहिं तुरंत। तुमसे तुमगुण वरनत संत ॥
जो अधनीको आपसमान। करै न सो निंदित धनवान ॥१०॥
इकटक जन तुमको अविलोय। और विषै रति करै न सोय ॥
को करि छीरजलधिजलपान। क्षारनीर पीवै मतिमान ॥११॥
प्रभु तुम वीतराग गुनलीन। जिन परमानु देह तुम कीन ॥
हैं तितने ही ते परमानु। यातैं तुमसम रूप न आनु ॥ १२ ॥

कहँ तुम मुख अनुपम अविकार । सुरनरनागनयनमनहार।
कहां चंद्रमंडल सकलंक । दिनमें ढाक पत्रसम रंक ॥ १३ ॥
पूरनचंद जोति छबिवंत । तुमगुन तीनजगत लंघंत ॥ एक
नाथ त्रिभुवन आधार । तिन विचरत को करे निवार ॥१४॥
जो सुरतिय विभ्रम आरंभ । मन न डिग्यो तुम तौ न अचंभ॥
अचल चलावै प्रलय समीर । मेरुशिखर डगमगें न धीर ॥१५॥
धूमरहित वाती गतनेह । परकाशै त्रिभुवन घर येह ॥ वात
गम्य नाहीं परचंड । अपर दीप तुम बलो अखंड ॥ १६ ॥
छिपहु न लुपहु राहुकी छाँहि । जगपरकाशक हो छिनमाहिं॥
घन अनवर्त्त दाह विनिवार । रवितैं अधिक धरो गुणसार ॥
॥ १७ ॥ सदा उदित विदलित मनमोह । विघटित मेघ राहु
अविरोह ॥ तुम मुखकमल अपूरव चंद । जगत विकाशी
जोति अमंद ॥ १८ ॥ निशदिन शशिरविको नहिं काम।
तुम मुखचंद हरे तमधाम ॥ जो स्वभावतैं उपजे नाज। सजल
मेघ तो कौनहु काज ॥ १९ ॥ जो सुबोध सोहै तुममाहिं।
हरि हर आदिकमें सो नाहिं ॥ जो द्युति महारतनमें होय।
काचखंड पावै नहिं सोय ॥ २० ॥

नाराच छंद।

सकल देव देख मैं भला विशेष मानिया। स्वरूप जाहि देख
वीतराग तू पिछानिया ॥ कछू न तोहि देखके जहां तुही विशेखि
या। मनोग चित्तचोर और भूल हू न पेखिया ॥२१॥ अनेक पुत्र
वंतिनी नितंबिनी सपूत हैं। न तो समान पुत्र और मातते प्रसूत
है ॥ दिशा धरंत तारिका अनेक कोटि को गिनै। दिनेश तेज

[illegible]

[illegible] हंत।

[illegible] क्रांति।

[illegible] रहै त्र द्युति लोप।

तीन छत्र तुम दिपैं अगोप ॥ तीन लोककी प्रभुता कहैं। मोती झालरसों छवि लहैं ॥ ३१ ॥ दुंदुभि शब्द गहर गंभीर। चहुँदिशि होय तुम्हारे धीर ॥३२॥ त्रिभुवनजन शिवसंगम करैं। मानो जय जय रव उच्चरैं॥ मंद पवन गंधोदक इष्ट। विविध कलपतरु पुहपसुवृष्ट ॥ ३३ ॥ देव करैं विकसित दल सार। मानों द्विजपंकति अवतार ॥ तुमतन-भामंडल जिनचंद। सब दुतिवंत करत है मंद ॥ ३४ ॥ कोटि शंख रवितेज छिपाय। शशिनिर्मलनिशि करै अछाय ॥ स्वर्गमोखमारगसंकेत। परमधरम उपदेशनहेत ॥ दिव्य वचन तुम खिरैं अगाध। सबभाषागर्भित हितसाध ॥ ३५ ॥

दोहा–विकसितसुवरनकमलदुति, नखदुतिमिलि चमकाहिं तुमपद पदवी जहँ धरो, तहँ सुर कमल रचाहिं ॥३६॥ ऐसी महिमा तुमविषै, और धरै नहिं कोय। सूरजमें जो जोत है, नहिं तारागण होय ॥ ३७ ॥

छप्पय– मदअवलिप्तकपोल-मूल अलिकुल झंकारैं। तिन सुन शब्द प्रचंड क्रोध उद्धत अति धारैं ॥ कालवरन विकराल, कालवत सनमुख आवै। ऐरावत सौ प्रबल, सकल जन भय उपजावै ॥ देखि गयंद न भय करै, तुमपदमहिमा लीन। विपतिरहित संपति सहित, वरनै भक्त अदीन ॥३८॥ अति मदमत्त गयंद कुंभथल नखन विदारै। मोती रक्त समेत, डारि भूतल सिंगारै ॥ बांकी दाढ़ विशाल, वदनमें रसना लोलै। भीमभयानकरूप देखि जन थरहर डोलै ॥ ऐसे मृगपति पग तलैं, जो नर आयो होय। शरण गये तुम चरनकी.

बाधा करै न सोय ॥३९॥ प्रलयपवनकर उठी आग जो ता
पटंतर। वमैं फुलिंग शिखा, उतंग परजलैं निरंतर ॥ जगत
समस्त निगल्ल भसकर हैगी मानों । तड़तड़ाट दवअनल,
जोर चहुँदिशा उठानों ॥ सो इक छिनमें उपशमै, नामनीर
तुम लेत। होय सरोवर परिनमै, विकसित कमल समेत ॥
॥४०॥ कोकिलकंठ समान, श्याम तन क्रोध जलंता। रक्तनयन
फुंकार, मारविपकण उगलंता ॥ फणको ऊंचो करै, वेग ही
सनमुख धाया। तब जन होय निशंक, देख फणपतिको आया॥
जो चांपै निज पांवतैं, व्यापै विप न लगार। नागदमनि तुम
नामकी, है जिनके आधार ॥ ४१ ॥ जिस रनमाहिं भयानक
शब्द कर रहे तुरंगम। घनसे गज गरजाहिं मत्त मानों गिरि
जंगम ॥ अति कोलाहलमाहिं, वात जहँ नाहिं सुनीजै। राज-
नको परचंड, देख बल धीरज छीजै ॥ नाथ तिहारे नामतैं
सो छिनमाहिं पलाय । ज्यों दिनकर परकाशतैं, अंधकार
विनशाय ॥ ४२ ॥ मारै जहां गयंद, कुंभ हथियार विदारै।
उमगै रुधिर प्रवाह वेग जलसे विस्तारै ॥ होय तिरन अस-
मर्थ महाजोधा बल पूरे। तिम रनमें जिन तोर भक्त जे हैं
सूरे ॥ दुर्जय अरिकुल जीतके, जय पावें निकलंक।
पदपंकज मन वसैं, ते नर सदा निशंक ॥ ४३ ॥ नक्र
मगरादि मच्छकरि भय उपजावै । जामें वड़वा अग्नि
नीर जलावै ॥ पार न पावै जाम ग्राह नहिं लहिये
। गरजै अतिगंभीर. लहरकी गिनति न नाकी ॥
तिरैं समुद्रको, जे तुमगुन सुमिराहिं। लोल कलो-

लनके शिखर, पार यान ले जाहिं ॥ ४४ ॥ महा जलोदर रोग, भार पीडित नर जे हैं। वात पित्त-कफ कुष्ट आदि जो रोग गहे हैं ॥ सोचत रहैं उदास नाहिं जीवनकी आशा। अति घिनावनी देह, धरै दुर्गंधनिवासा ॥ तुम पदपंकजधूलको, जो लावें निजअंग। ते नीरोग शरीर लहि, छिनमें होय अनंग ॥ ४५ ॥ पांव कंठतें जकर बांध सांकल अति भारी। गाढ़ी बेड़ी पैरमांहि, जिन जांघ विदारी। भूख प्यास चिंता शरीर, दुख जे विललाने। सरन नाहिं जिन कोय, भूपके बंदीखाने ॥ तुम सुमरत स्वयमेव ही, बंधन सब खुल जाहिं। छिनमें ते सम्पति लहै, चिंता भय विनसाहिं ॥४६॥ महामत्त गजराज, और मृगराज दवानल। फणपति रण परचंड नीरनिधि रोग महाबल ॥ बंधन ये भय आठ डरपकर मानों नाशै। तुम सुमरत छिनमाहिं, अभय थानक परकाशै ॥ इस अपार संसारमें, शरन नाहिं प्रभु कोय। यातें तुम पदभक्तको, भक्ति सहाई होय ॥ ४७ ॥ यह गुनमाल विशाल, नाथ तुम गुनन सँवारी। विविध वर्णमय पुहुप गूंथ मैं भक्ति विथारी ॥ जे नर पहिरें कंठ भावना मनमें भावें। मानतुंग ते निजाधीन शिवलछमी पावें ॥ भाषा भक्तामर कियो, हेमराज हितहेत। जे नर पढ़ैं सुभावसों, ते पावैं शिवखेत ॥ ४८ ॥

श्रीसिद्धसेन दिवाकरप्रणीतं

६४। कल्याणमंदिरस्तोत्रं।

कल्याणमंदिरमुदारमवद्यभेदि भीताभयप्रदमनिंदितमंघ्रिपद्मं।

सारसागरनिमज्जदशेषजंतुपोतायमानमभिनम्य जिनेश्वरस्य
॥ १ ॥ यस्य स्वयं सुरगुरुर्गरिमांबुराशेः स्तोत्रं सुविस्तृतम-
र्न विभुर्विधातुं । तीर्थेश्वरस्य कमठस्मयधूमकेतोस्तस्याह-
ष किल संस्तवनं करिष्ये ॥ २ ॥ सामान्यतोपि तव वर्ण-
येतुं स्वरूपमस्मादृशाः कथमधीश भवंत्यधीशाः । धृष्टोपि
कौशिकशिशुर्यदि वा दिवांधो रूपं प्ररूपयति किं किल घर्म-
श्मेः ॥ ३ ॥ मोहक्षयादनुभवन्नपि नाथ मर्त्यो नूनं गुणान्गा-
यितुं न तव क्षमेत । कल्पांतवांतपयसः प्रकटोऽपि यस्मा-
मीयेत केन जलधेर्ननु रत्नराशिः ॥ ४ ॥ अभ्युद्यतोस्मि
व नाथ जडाशयोपि कर्तुं स्तवं लसदसंख्यगुणाकरस्य ।
लोपि किं न निजबाहुयुगं वितत्य विस्तीर्णतां कथयति
धियांबुराशेः ॥ ५ ॥ ये योगिनामपि न यांति गुणास्तवेश
क्तुं कथं भवति तेषु ममावकाशः । जाता तदेवमसमीक्षित-
कारितेयं जल्पंति वा निजगिरा ननु पक्षिणोपि ॥ ६ ॥ आ-
स्तामचिंत्यमहिमा जिनसंस्तवस्ते नामापि पाति भवतो भवतो
जगंति । तीव्रातपोपहतपांथजनान्निदाघे प्रीणाति पद्मसरसः
सरसोऽनिलोपि ॥ ७ ॥ हृद्वर्तिनि त्वयि विभो शिथिलीभ-
भवंति जंतोः क्षणेन निविडा अपि कर्मबंधाः । सद्यो भुजंग-
ममया इव मध्यभागमभ्यागते वनशिखंडिनि चंदनस्य ॥ ८ ॥
मुच्यंत एव मनुजाः सहसा जिनेंद्र रौद्रैरुपद्रवशतैस्त्वयि
वीक्षितेऽपि । गोस्वामिनि स्फुरिततेजसि दृष्टमात्रे चौरैरिवाशु
पशवः प्रपलायमानैः ॥ ९ ॥ त्वं तारको जिन कथं भविनां
त एव त्वामुद्वहंति हृदयेन यदुत्तरंतः । यद्वा दृतिस्तर

यज्जलमेष नूनमंतर्गतस्य मरुतः स किलानुभावः ॥ १० ॥ यस्मिन्हरप्रभृतयोऽपि हतप्रभावाः सोपि त्वया रतिपतिः क्षपितः क्षणेन । विध्यापिता हुतभुजः पयसाथ येन पीतं न किं तदपि दुर्धरवाडवेन ॥ ११ ॥ स्वामिन्ननल्पगरिमाणमपि प्रपन्नास्त्वां जंतवः कथमहो हृदये दधानाः । जन्मोदधिं लघु तरंत्यतिलाघवेन चिंत्यो न हंत महतां यदि वा प्रभावः ॥ १२ ॥ क्रोधस्त्वया यदि विभो प्रथमं निरस्तो ध्वस्तास्तदा वद कथं किल कर्मचौराः । प्लोषत्यमुत्र यदि वा शिशिरापि लोके नीलद्रुमाणि विपिनानि न किं हिमानी ॥ १३ ॥
त्वां योगिनो जिन सदा परमात्मरूपमन्वेषयंति हृदयांबुजकोपदेशे । पूतस्य निर्मलरुचेर्यदि वा किमन्यदक्षस्य संभवपदं ननु कर्णिकायाः ॥१४॥ ध्यानाज्जिनेश भवतो भविनः क्षणेन देहं विहाय परमात्मदशां व्रजंति । तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके चामीकरत्वमचिरादिव धातुभेदाः ॥१५॥ अंतः सदैव जिन यस्य विभाव्यसे त्वं भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरं । एतत्स्वरूपमथ मध्यविवर्तिनो हि यद्विग्रहं प्रशमयंति महानुभावाः ॥ १६ ॥ आत्मा मनीषिभिरयं त्वदभेदबुद्ध्या ध्यातो जिनेंद्र भवतीह भवत्प्रभावः । पानीयमप्यमृतमित्यनुचिंत्यमानं किं नाम नो विषविकारमपाकरोति ॥१७॥ त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि नूनं विभो हरिहरादिधिया प्रपन्नाः । किं काचकामलिभिरीश सितोऽपि शंखो नो गृह्यते विविधवर्णविपर्ययेण ॥१८॥ धर्मोपदेशसमये सविधानुभावादास्तां जनो भवति [illegible]रुरप्यशोकः । अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि किं वा

निर्बोधमुपयाति न जीवलोकः ॥१९॥ चित्रं विभो कथमवाङ्मुखवृंतमेव विष्वक्पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः । त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश गच्छंति नूनमध एव हि बंधनानि ॥ २० ॥ स्थाने गभीरहृदयोदधिसंभवायाः पीयूषतां तव गिरः समुदीरयंति । पीत्वा यतः परमसंमदसंगभाजो भव्या व्रजंति तरसाप्यजरामरत्वं ॥ २१ ॥ स्वामिन्सुदूरमवनम्य समुत्पतंतो मन्ये वदंति शुचयः सुरचामरौघाः । येऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुंगवाय ते नूनमूर्ध्वगतयः खलु शुद्धभावाः ॥२२॥ श्यामं गभीरगिरमुज्ज्वलहेमरत्नसिंहासनस्थमिह भव्यशिखंडिनस्त्वां । आलोकयंति रभसेन नदंतमुच्चैश्चामीकराद्रिशिरसीव नवांबुवाहं ॥ २३ ॥ उद्गच्छता तव शितिद्युतिमंडलेन लुप्तच्छदच्छविरशोकतरुर्बभूव । सांनिध्यतोपि यदि वा तव वीतराग नीरागतां व्रजति को न सचेतनोपि ॥ २४ ॥ भो भोः प्रमादमवधूय भजध्वमेनमागत्य निर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहं । एतन्निवेदयति देव जगत्त्रयाय मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुंदुभिस्ते ॥ २५ ॥ उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः । मुक्ताकलापकलितोल्लसितातपत्रव्याजात्त्रिधा धृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥ २६ ॥ स्वेन प्रपूरितजगत्त्रयपिंडितेन कांतिप्रतापयशसामिव संचयेन । माणिक्यहेमरजतप्रविनिर्मितेन सालत्रयेण भगवन्नभितो विभासि ॥ दिव्यस्रजो जिन नमत्त्रिदशाधिपानामुत्सृज्य रत्नरचितानपि मौलिबंधान् । पादौ श्रयंति भवतो यदि वा परत्र त्वत्संगमे सुमनसो न रमंत एव ॥ २८ ॥ त्वं नाथ जन्मजलधेर्विपराङ्-

मुखोपि यत्तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान् । युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव चित्रं विभो यदसि कर्मविपाकशून्यः ॥२९॥ विश्वेश्वरोऽपि जनपालक दुर्गतस्त्वं किं वाक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश । अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकासहेतु ॥३०॥ प्राग्भारसंभृतनभांसि रजांसि रोषादुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि । छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥ ३१ ॥ यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रभीमभ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरधारं। दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे तेनैव तस्य जिन दुस्तरवारि कृत्यम् ॥३२॥ ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुंडप्रालंबभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः। प्रेतव्रजः प्रति भवंतमपीरितो यः सोऽस्यभवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ॥३३॥ धन्यास्त एव भुवनाधिप ये त्रिसंध्यमाराधयंति विधिवद्विधुतान्यकृत्याः । भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः पादद्वयं तव विभो भुवि जन्मभाजः ॥३४॥ अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि । आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमंत्रे किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥ ३५ ॥ जन्मांतरेऽपि तव पादयुगं न देव मन्ये मया महितमीहितदानदक्षं । तेनेह जन्मनि मुनीश पराभवानां जातो निकेतनमहं मथिताशयानां ॥ ३६ ॥ नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोसि। मर्माविधो विधुरयंति हि मामनर्थाः प्रोद्यत्प्रबंधगतयः कथमन्यथैते ॥३७ : आकर्णितोपि महितोपि [illegible] नूनं न चेतसि मया विधृतोसि भक्त्या । जातोस्मि तेन

मुखोऽपि यत्तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान्। युक्तं हि पार्थिवनिपस्य सतस्तवैव चित्रं विभो यदसि कर्मविपाकशून्यः ॥२९॥ विश्वेश्वरोऽपि जनपालक दुर्गतस्त्वं किं वाक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश। अज्ञानवत्यपि सदैव कथंचिदेव ज्ञानं त्वयि स्फुरति विश्वविकासहेतु ॥३०॥ प्राग्भारसंभृतनभांसि रजांसि रोषादुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि। छायापि तैस्तव न नाथ हता हताशो ग्रस्तस्त्वमीभिरयमेव परं दुरात्मा ॥ ३१ ॥ यद्गर्जदूर्जितघनौघमदभ्रभीमभ्रश्यत्तडिन्मुसलमांसलघोरधारं। दैत्येन मुक्तमथ दुस्तरवारि दध्रे तेनैव तस्य जिन दुस्तरवारिकृत्यम् ॥३२॥ ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुंडप्रालंबभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः। प्रेतव्रजः प्रति भवंतमपीरितो यः सोऽस्य भवत्प्रतिभवं भवदुःखहेतुः ॥३३॥ धन्यास्त एव भुवनाधिप ये त्रिसंध्यमाराधयंति विधिवद्विधुतान्यकृत्याः। भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः पादद्वयं तव विभो भुवि जन्मभाजः ॥३४॥ अस्मिन्नपारभववारिनिधौ मुनीश मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि। आकर्णिते तु तव गोत्रपवित्रमंत्रे किं वा विपद्विषधरी सविधं समेति ॥ ३५ ॥ जन्मांतरेऽपि तव पादयुगं न देव मन्ये मया महितमीहितदानदक्षं। तेनेह जन्मनि मुनीश पराभवानां जातो निकेतनमहं मथिताशयानां ॥ ३६ ॥ नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन पूर्वं विभो सकृदपि प्रविलोकितोऽसि। मर्माविधो विधुरयंति हि मामनर्थाः प्रोद्यत्प्रबंधगतयः कथमन्यथैते ॥३७॥ आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि नूनं न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या। जातोऽस्मि तेन जन-

हिये ॥ ह्वै लघुरूप तिरहिं संसार । यह प्रभु महिमा अकथ अपार ॥ १२ ॥ क्रोध निवार कियो मन शांत । कर्मसुभट जीते किहिं भांत ॥ यह पटतर देखहु संसार । नील विरछ ज्यों दहै तुसार ॥ १३ ॥ मुनिजनहिये कमल निज टोहि । सिद्धरूपसम ध्यावहिं तोहि ॥ कमलकरणिका विन नहिं और । कमलवीज उपजनकी ठौर ॥ १४ ॥ जव तुव ध्यान धरै मुनि कोय । तव विदेह परमातम होय ॥ जैसें धातु शिलातनु त्याग । कनक स्वरूप धवै जव आग ॥ १५ ॥ जाके मन तुम करहु निवास । विनशि जाय क्यों विग्रह तास ॥ ज्यों महंत विच आवै कोय । विग्रहमूल निवारै सोय ॥ १६॥ करहिं विवुध जे आतमध्यान । तुम प्रभावतें होय निदान ॥ जैसें नीर सुधा अनुमान । पीवत विषविकारकी हान ॥ १७ ॥ तुम भगवंत विमलगुणलीन । समलरूप मानहिं मतिहीन ॥ ज्यों नीलिया रोग दृग गहै ॥ वर्ण विवर्ण शंखसों कहै ॥

दोहा—निकटरहत उपदेश सुन, तरुवर भयो अशोक । ज्यों रवि ऊगत जीव सव, प्रगट होत भुविलोक ॥१९॥ सुमनवृष्टि ज्यों सुर करहिं, हेट वीठमुख सोहि ॥ त्यों तुम सेवत सुमनजन, वंध अधो मुख होहि ॥ २० ॥ उपजी तुम हिय उदधितें, वानी सुधा समान ॥ जिहँ पीवत भविजन लहहिं, अजर अमरपदथान ॥ २१ ॥ कहहिं सार तिहुँ लोककी, ये सुरचामर दोय । भाव सहित जो जिन नमैं, तिहँ गति ऊरध होय ॥ २२ ॥ सिंघासन गिरिमेरु सम, प्रभु धुनि गरजत घोर । श्याम सुतनु घनरूप लखि, नाचत [illegible]जन

शिव मंदिर अघहरन अनिंद । वंदहु पासचरन अरविंद ॥१॥ कमठमानभंजन वर वीर । गरिमासागर गुनगंभीर ॥ सुरगुरु पार लहैं नहिं जास । मैं अजान जंपू जस तास ॥ २ ॥ प्रभुस्वरूप अतिअगम अथाह । क्यों हमसेती होय निवाह ॥ ज्यों दिनअंध उलूको पोत । कहि न सकै रवि-किरन-उदोत ॥ ३ ॥ मोहहीन जानै मनमाहिं । तोहु न तुम गुन वरनें जाहिं ॥ प्रलयपयोधि करै जल वौन । प्रगटहिं रतन गिनै तिहिं कौन ॥ ४ ॥ तुम असंख्य निर्मल गुनखान । मैं मति हीन कहूं निजवान ॥ ज्यों बालक निज बांह पसार । सागर परिमिति कहै विचार ॥ ५ ॥ जे जोगींद्र करहिं तपखेद । तऊ न जानहिं तुम गुनभेद ॥ भक्तिभाव मुझ मन अभिलाख । ज्यों पंछी बोलै निज भाख ॥ ६ ॥ तुमजसमहिमा अगम अपार । नाम एक त्रिभुवन-आधार ॥ आवै पवन पदमसर होय । ग्रीषमतपन निवारै सोय ॥ ७ ॥ तुम आवत भविजन घटमाहिं । कर्मनिबंध शिथिल ह्वै जाँहिं ॥ ज्यों चंदनतरु बोलहिं मोर । डरहिं भुजंग लगे चहुँओर ॥ ८ ॥ तुम निरखत जन दीनदयाल । संकटतैं छूटैं ततकाल ॥ ज्यों पशु घेर लेहिं निशि चोर । ते तज भागहिं देखत भोर ॥ ९ ॥ तू भविजन तारक किमि होहि । ते चितधार तिरहिं ले तोहि ॥ यह ऐसैं कर जान स्वभाव । तिरहिं मसक ज्यों गर्भितवाव ॥ १० ॥ जिहँ सब देव किये वश वाम । तैं छिनमें जीत्यो सो काम ॥ ज्यों जल करै अगनिकुल हान । बडवानल पीवै सो पान ॥ ११ ॥ तुम अनंत गरवा गुन लिये । क्योंकर भक्ति धरौं निज

हिये ॥ ह्वै लघुरूप तिरहिं संसार । यह प्रभु महिमा अकथ अपार ॥ १२ ॥ क्रोध निवार कियो मन शांत । कर्मसुभट जीते किहिं भांत ॥ यह पटतर देखहु संसार । नील विरछ ज्यों दहै तुसार ॥ १३ ॥ मुनिजनहिये कमल निज टोहि । सिद्धरूपसम ध्यावहिं तोहि ॥ कमलकरणिका बिन नहिं और । कमलबीज उपजनकी ठौर ॥ १४ ॥ जब तुव ध्यान धरै मुनि कोय । तब विदेह परमातम होय ॥ जैसें धातु शिलातनु त्याग । कनक स्वरूप धवै जब आग ॥ १५ ॥ जाके मन तुम करहु निवास । विनशि जाय क्यों विग्रह तास ॥ ज्यों महंत बिच आवै कोय । विग्रहमूल निवारै सोय ॥ १६॥ करहिं विबुध जे आतमध्यान । तुम प्रभावतें होय निदान ॥ जैसें नीर सुधा अनुमान । पीवत विषविकारकी हान ॥ १७ ॥ तुम भगवंत विमलगुणलीन । समलरूप मानहिं मतिहीन ॥ ज्यों नीलिया रोग दृग गहै ॥ वर्ण विवर्ण शंखसों कहै ॥

दोहा—निकटरहत उपदेश सुन, तरुवर भयो अशोक । ज्यों रवि ऊगत जीव सब, प्रगट होत भुविलोक ॥१९॥ सुमनवृष्टि ज्यों सुर करहिं, हेट वीठमुख सोहि ॥ त्यों तुम सेवत सुमनजन, बंध अधो मुख होहि ॥ २० ॥ उपजी तुम हिय उदधितें, वानी सुधा समान ॥ जिहँ पीवत भविजन लहहिं, अजर अमरपदथान ॥ २१ ॥ कहहिं सार तिहुं लोककी, ये सुरचामर दोय । भाव सहित जो जिन नमैं, तिहँ गति ऊरध होय । २२ ॥ सिंघासन गिरिमेरु सम, प्रभु धुनि गरजत घोर । श्याम सुतनु घनरूप लखि, नाचत भविजन

मोर ॥ २३ ॥ छविहत होत अशोकदल, तुम भामंडल देख। वीतरागके निकट रह, रहत न राग विसेष ॥ २४ ॥ ... कहै तिहुँ लोककों, ये सुरदुंदुभिनाद । शिवपथसारथिवाह जिन, भजहु तजहु परमाद ॥ २५ ॥ तीन छत्र त्रिभुवन उदित, मुक्तागण छवि देत । त्रिविधरूप धर मनहु शशि, सेवत नखत समेत ॥ २६ ॥

पद्धरिछंद–प्रभु तुम शरीरदुति रतन जेम । परतापपुंज जिम शुद्ध हेम ॥ अतिधवल सुजस रूपा समान । तिनके गढ तीन विराजमान ॥ २७ ॥ सेवहिं सुरेंद्र कर नमत भाल। तिन सीस मुकुट तज देहि माल ॥ तुमचरणलगत लहलहै प्रीति । नहिं रमहिं और जन सुमन रीति ॥ २८ ॥ प्रभु भोगविमुख तन करमदाह । जन पार करत भवजल निवाह॥ ज्यों माटीकलश सुपक होय । ले भार अधोमुख तिरहिं तोय ॥ २९ ॥ तुम महाराज निरधन निराश । तज विभव विभव सबजगप्रकाश ॥ अक्षरस्वभावसुलिखे न कोय। महिमा भगवंतअनंत सोय ॥ ३० ॥ कर कोप कमठ निज बैर देख । तिन करी धूलिवरषा विशेष ॥ प्रभु तुम छाया नहिं भई हीन । सो भयो पापि लंपट मलीन ॥ ३२ ॥ गरजंत घोर घन अंधकार । चमकंत विज्जु जल मुसलधार ॥ बरषंत कमठ धरध्यान रुद्र । दुस्तर करंत निजभव समुद्र ॥ ३३ ॥

वस्तुछन्द ।

मेघमाली मेघमाली आए बल फोरि । भेजे तुरत पिशाचगण, नाय पास उपसर्ग कारण । अग्निजाल झलकंत मुख,

धुनि करंत जिमि मत्तवारण ॥ कालरूप विकराल तन, मुंड-माल तिह कंठ। है निशंक वह रंकनिज, करै कर्मदलगांठ ॥

चौपाई—जे तुम चरणकमल तिहुंकाल। सेवहिं तज माया-जंजाल ॥ भावभगतिमन हरष अपार। धन्य धन्य जग तिन अवतार ॥ ३५ ॥ भवसागरमहं फिरत अजान। मैं तुम सुजस सुन्यो नहिं कान ॥ जो प्रभुनाममंत्र मन धरै। तासों विपति भुजंगम डरै ॥ ३६ ॥ मनवांछित फल जिनपदमांहि। मैं पूरवभव पूजे नाहिं ॥ मायामगन फिरयो अज्ञान। करहिं रंकजन मुझ अपमान ॥ ३७ ॥ मोहतिमिर छायो दृग मोहि। जन्मांतर देख्यो नहिं तोहि ॥ तौ दुर्जन मुझ संगति गहैं। मरमछेदके कुवचन कहैं ॥ ३८ ॥ सुन्यो कान जस पूजे पाय। नैनन देख्यो रूप अघाय ॥ भक्तिहेतु न भयो चित चाव। दुखदायक किरियाविन भाव ॥ ३९ ॥ महाराज शरणागत पाल। पतितउधारण दीनदयाल ॥ सुमिरण करहुं नाय निज शीश। मुझ दुख दूर करहु जगदीश ॥ ४० ॥ कर्मनिकंदनमहिमा सार। अशरणशरण सुजस विस्तार ॥ नहिं सेये प्रभु तुमरे पाय। तो मुझ जन्म अकारथ जाय ॥ ४१ ॥ सुरगनवंदित दयानिधान। जगतारण जगपति जगजान ॥ दुखसागरतैं मोहि निकासि। निर्भयथान देहु सुखरासि ॥ ४२ ॥ मैं तुम चरणकमलगुन गाय। बहुविधि भक्ति करी मनलाय ॥ जनमजनम प्रभु पाऊं तोहि। यह सेवाफल दीजे मोहि ॥ ४३ ॥

[illegible]

इहिविधि श्रीभगवंत, सुजस जे भविजन भाषहिं। ते

निज पुण्यभँडार, संचि चिरपाप प्रणासहिं ॥ रोमरोम हुल संति, अंग प्रभु गुणमनध्यावहिं । स्वर्गसंपदा भुंज वेग पंचम गति पावहिं ॥ यह कल्याणमंदिर कियो, कुमुदचंद्रकी बुद्धि भाषा कहत 'बनारसी' कारण समकितशुद्ध ॥ ४४ ॥

इति श्रीकल्याणमन्दिरस्तोत्र भाषा समाप्ता।

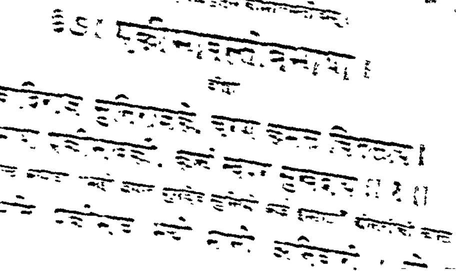
श्रीवादिराजप्रणीतं

६६ । एकीभावस्तोत्र ।

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्मबंधो घोरं दुःखं भव भवगतो दुर्निवारः करोति । तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे भक्तिरुन्मुक्तये चेज्जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्तापहेतु ॥ १ ॥ ज्योतीरूपं दुरितनिवहध्वांतविध्वंसहेतुं त्वामेवाहुर्जि नवर चिरं तत्त्वविद्याभियुक्ताः । चेतोवासे भवसि च मम स्फारमुद्भासमानस्तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे ॥ २ ॥ आनंदाश्रुस्नपितवदनं गद्गदं चाभिजल्पन्यश्चायेत त्वयि दृढमनाः स्तोत्रमंत्रैर्भवंतं । तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देहवल्मीकमध्यान्निष्कास्यंते विविधविषमव्याधयः काद्रवेयाः ॥ ३ ॥ प्रागेवेह त्रिदिवभवनादेष्यता भव्यपुण्यात्पृथ्वीचक्रं कनकमयतां देव निन्ये त्वयेदं । ध्यानद्वारं मम रुचिकरं स्वांतगेहं प्रविष्ट स्तत्किं चित्रं जिन वपुरिदं यत्सुवर्णीकरोषि ॥ ४ ॥ लोकस्यै कस्त्वमसि भगवन्निर्निमित्तेन बंधुस्त्वय्येवासौ सकलविषया शक्तिरप्रत्यनीका । भक्तिस्फीतां चिरमधिवसन्मामिकां चित्त शय्यां मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेशयूथं सहेथाः ॥ ५ ॥ जन्माटव्यां कथमपि मया देव दीर्घं भ्रमित्वा प्राप्तैवेयं तव

नयकथा स्फारपीयूषवापी। तस्या मध्ये हिमकरहिमव्यूहशीते नितांतं निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःखदावोपतापाः ॥ ६ ॥ पादन्यासादपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः। सर्वांगेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे श्रेयः किं तत्स्वयमहरहर्यन्न मामभ्युपेति ॥ ७ ॥ पश्यन्तं त्वद्वचनममृतं भक्तिपात्र्या पिबंतं कर्मारण्यात्पुरुषमसमानंदधाम प्रविष्टं। त्वां दुर्वारस्मरमदहरं त्वत्प्रसादैकभूमिं क्रूराकाराः कथमिव रुजाकंटका निर्लुठन्ति ॥ ८ ॥ पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्नमूर्तिर्मानस्तंभो भवति च परस्तादृशो रत्नवर्गः। दृष्टिप्राप्तो हरति स कथं मानरोगं नराणां प्रत्यासत्तिर्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्तिहेतुः ॥ ९ ॥ हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन्मूर्तिशैलोपवाही सद्यः पुंसां निरवधिरुजाधूलिबंधं धुनोति। ध्यानाहूतो हृदयकमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टस्तस्याशक्यः क इह भुवने देव लोकोपकारः ॥ १० ॥ जानासि त्वं मम भवभवे यच्च यादृक्च दुःखं जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्रवन्निष्पिनष्टि। त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वामुपेतोस्मि भक्त्या यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव एव प्रमाणं ॥ ११ ॥ प्रापद्दैवं तव नुतिपदैर्जीवकेनोपदिष्टैः पापाचारी मरणसमये सारमेयोपि सौख्यं। कः संदेहो यदुपलभते वासवश्रीप्रभुत्वं जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कारचक्रं ॥ १२ ॥ शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा भक्तिर्नो चेदनवधिसुखावंचिका कुंचिकेयं। शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्तिकामस्य पुंसो मुक्तिद्वारं परिदृढमहामोहमुद्राक-

शिव मंदिर अघहरन आनिंद । वंदहु पासचरन अरविंद ॥१॥ कमठमानभंजन वर वीर । गरिमासागर गुनगंभीर ॥ सुर-गुरु पार लहैं नहिं जास । मैं अजान जंपू जस तास ॥ २ ॥ प्रभुस्वरूप अतिअगम अथाह । क्यों हमसेती होय निवाह ॥ ज्यों दिनअंध उलूको पोत । कहि न सके रवि-किरन-उदोत ॥ ३ ॥ मोहहीन जानै मनमाहिं। तोहु न तुम गुन वरनें जाहिं ॥ प्रलयपयोधि करै जल वौन । प्रगटहिं रतन गिनै तिहिं कौन ॥ ४ ॥ तुम असंख्य निर्मल गुनखान । मैं मति हीन कहूं निजबान ॥ ज्यों बालक निज बांह पसार । सागर परिमिति कहै विचार ॥ ५॥ जे जोगींद्र करहिं तपखेद । तऊ न जानहिं तुम गुनभेद ॥ भक्तिभाव मुझ मन अभिलाख । ज्यों पंछी बोलैं निज भाख ॥ ६ ॥ तुमजसमहिमा अगम अपार । नाम एक त्रिभुवन-आधार ॥ आवै पवन पदमसर होय । ग्रीपमतपन निवारै सोय ॥ ७ ॥ तुम आवत भविजन घटमाहिं । कर्मनिबंध शिथिल ह्वै जाहिं ॥ ज्यों चंदनतरु बोलहिं मोर । डरहिं भुजंग लगे चहुँओर ॥ ८ ॥ तुम निरखत जन दीनदयाल । संकटतैं छूटे ततकाल ॥ ज्यों पशु घेर लेहिं निशि चोर । ते तज भागहिं देखत भोर ॥ ९ ॥ तू भविजन तारक किमि होहि । ते चितधार तिरहिं ले तोहि ॥ यह ऐसैं कर जान स्वभाव । तिरहिं मसक ज्यों गर्भितबाव ॥ १० ॥ जिहँ सब देव किये वश वाम । तैं छिनमें जीत्यो सो काम ॥ ज्यों जल करै अगनिकुल हान । बडवानल पीवै सो पान ॥ ११॥ तुम अनंत गरवा गुन लिये । क्योंकर भक्ति धरौं निज



वांटम् ॥ १३ ॥ प्रच्छन्नः खल्वयमघमयैरंधकारैः समंतात्पंथा मुक्तेः स्थपुटितपदः क्लेशगर्तैरगाधैः । तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव तत्त्वावभासी यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारतीरत्नदीपः ॥ १४ ॥ आत्मज्योतिर्निधिरनवधिर्द्रष्टुरानंदहेतुः कर्मक्षोणीपटलपिहितो योऽनवाप्यः परेषां । हस्ते कुर्वंत्यनतिचिरतस्तं भवद्भक्तिभाजः स्तोत्रैर्बंधप्रकृतिपुरुषोद्दामधात्रीखनित्रैः ॥ १५ ॥ प्रत्युत्पन्ना नयहिमगिरेरायता चामृताब्धेर्या देव त्वत्पदकमलयोः संगता भक्तिगंगा । चेतस्तस्यां मम रुचिवशादाप्लुतं क्षालितांहः कल्मषं यद्भवति किमियं देव संदेहभूमिः ॥ १६ ॥ प्रादुर्भूतस्थिरपदसुख त्वामनुध्यायतो मे त्वय्येवाहं स इति मतिरुत्पद्यते निर्विकल्पा । मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्तिमभ्रेषरूपां दोषात्मानोऽप्यभिमतफलास्त्वत्प्रसादाद्भवंति ॥ १७ ॥ मिथ्यावादं मलमपनुदन्सप्तभंगीतरंगैर्वागंभोधिर्भुवनमखिलं देव पर्येति यस्ते । तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेतसैवाचलेन व्यातन्वंतः सुचिरममृतासेवया तृप्नुवंति ॥ १८ ॥ आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावादहृद्यः शस्त्रग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः । सर्वांगेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां तत्किं भूषावसनकुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः ॥ १९ ॥ इंद्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते तस्यैवेयं भवलयकरी श्लाघ्यतामातनोति । त्वं निस्तारी जननजलधेः सिद्धिकांतापतिस्त्वं त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थं ॥ २० ॥ वृत्तिर्वाचामपरसदृशी न त्वमन्येन तुल्यः स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमंते ।

मैं सूक्तयोऽपि भगवन्भक्तिपीयूषपुष्टास्ते भव्यानामभि-
मतफला पारिजाता भवन्ति ॥ २१ ॥ कोपावेशो न तव न
क्वापि देव प्रसादो व्याप्तं चेतस्तव हि परमोपेक्षयैवानपे-
क्षम्। आज्ञावश्यं तदपि भुवनं संनिधिर्वैरहारी क्वैवंभूतं भुवनतिल-
क प्राभवं त्वत्परेषु ॥ २२ ॥ देव स्तोतुं त्रिदिवगणिकामण्डली-
गीतकीर्तिं तोतूर्ति त्वां सकलविषयज्ञानमूर्तिं जनो यः। तस्य
क्षेमं न पदमटतो जातु जोहूर्ति पन्थास्तत्त्वग्रन्थस्मरणविषये नै-
ष मोमूर्ति मर्त्यः ॥ २३ ॥ चित्ते कुर्वन्निरवधिसुखज्ञानदृग्वीर्य-
रूपं देव त्वां यः समयनियमादादरेण स्तवीति। श्रेयोमार्गं स
खलु सुकृती तावता पूरयित्वा कल्याणानां भवति विषयः
पञ्चधा पञ्चितानाम् ॥ २४ ॥ भक्तिप्रह्वमहेन्द्रपूजितपद त्वत्कीर्तने
न क्षमाः सूक्ष्मज्ञानदृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम्।
अस्माभिः स्तवनच्छलेन तु परस्त्वय्यादरस्तन्यते स्वात्माधीन-
सुखैषिणां स खलु नः कल्याणकल्पद्रुमः ॥ २५ ॥ वादिराज-
मनु शाब्दिकलोको वादिराजमनु तार्किकसिंहः। वादिराज-
मनु काव्यकृतस्ते वादिराजमनु भव्यसहायः ॥ २६ ॥

इति श्रीवादिराजसूरिकृतमेकीभावस्तोत्रम्।

३७। एकीभावस्तोत्रभाषा।

दोहा।

वादिराज मुनिराजके, चरण कमल चित लाय।
भाषा एकीभावकी, करूं स्वपर सुखदाय ॥ १ ॥

[illegible]

जो अति एकीभाव भयो मानो अनिवारी। सो मुझ

कर्मप्रबंध करत भव भव दुख भारी॥ ताहि तिहारी भक्ति जगत रवि ज्यों निरवारै। तो अव और कलेश कौन सो नाहिं विदारै ॥ १ ॥ तुम जिन जोतिस्वरूप दुरितअँधियारि निवारी। सो गणेश गुरु कहैं तत्वविद्याधनधारी ॥ मेरे चित घरमाहिं वसौ तेजोमय यावत। पापतिमर अवकाश तहां सो क्योंकर पावत ॥२॥ आनंदआंसूवदन धोय तुमसों चित सानै। गदगदसुरसों सुयशमंत्र पढि पूजा ठानै ॥ ताके वहुविधि व्याधि व्याल चिरकालनिकासी। भाजें थानक छोड़ देहवांवईके वासी ॥३॥ दिवितैं आवनहार भये भविभागउदयवल। पहलेही सुर जाय कनकमय कीय महीतल ॥ मनगृहध्यानदुवार आय निवसो जगनामी। जो सुवरन तन करो कौन यह अचरज स्वामी ॥ ४ ॥ प्रभु सव जगके विनाहेतुवंधव उपकारी। निरावरन सर्वज्ञ शक्ति जिनराज तिहारी ॥ भक्ति रचित मम चित्तसेज नित वास करोगे। मेरे दुखसंताप देख किम धीर धरोगे ॥५॥ भववनमें चिरकाल भ्रम्यो कछु कहिय न जाई। तुम थुतिकथा पियूष वापिका भागन पाई ॥ शशि तुपार घन सार हार शीतल नहिं जा सम। करत न्हौन तामाहिं क्यों न भवताप बुझै मम ॥ ६ ॥ श्रीविहार परिवाह होत शुचिरूप सकल जग। कमलकनक आभाव सुरभि श्रीवास धरत पग ॥ मेरो मन सर्वंग परस प्रभुको सुख पावै। अव सो कौन कल्यान जो न दिन दिन ढिग आवै ॥ ७ ॥ भव तज सुखपद वसे काममदसुभट सँहारे। जो तुमको निरखंत सदा प्रियदाम तिहारे ॥ तुम वचनामृतपान भक्तिअंजुलिमों पीवै। तिन्हें

भयानक क्रूररोग रिपु कैसे छीवै ॥ ८ ॥ मानथंभ पापान आन पापान पटंतर। ऐसे और अनेक रतन दीखें जगअंतर॥ देखत दृष्टिप्रमान मानमद तुरत मिटावै। जो तुम निकट न होय शक्ति यह क्योंकर पावै ॥ ९ ॥ प्रभुतन पर्वतपरस पवन उरमें निवहे है। तासों ततछिन सकल रोगरज वाहिर ह्वै है। जाके ध्यानाहूत वसो उर अंवुजमाहीं। कौन जगत उपकार करन समरथ सो नाहीं ॥ १० ॥ जनम जनमके दुःख सहे सव ते तुम जानों। याद किये मुझ हिये लगे आयुधसे मानों॥ तुम दयाल जगपाल स्वामि में शरन गही है। जो कछु करनो होय करो परमान वही है ॥ ११ ॥ मरनसमय तुम नाममंत्र जीवकतैं पायो। पापाचारी श्वान प्रान तज अमर कहायो॥ जो मणिमाला लेय जपै तुम नाम निरंतर। इंद्र संपदा लहै कौन संशय इस अंतर ॥१२॥ जो नर निर्मल ज्ञान मान शुचि चारित साधैं। अनवधि सुखकी सार भक्ति कूंची नहि लाधै॥ सो शिववांछक पुरुप मोक्षपट केम उघारै। मोह मुहर दिढ करी मोक्ष मंदिरके द्वारै ॥ १३ ॥ शिवपुर केरो पंथ पापतमसों अति छायो। दुखसरूप वहु कूपखाड़ सों विकट वतायो ॥ स्वामी सुखसों तहां कौन जन मारग लागैं। प्रभु प्रवचनमणिदीप जोनके आगैं आगैं॥ १४॥ कर्मपटलभूमाहिं दवी आतम निधि भारी। देखत अतिसुख होय विमुखजन नाहिं उघारी ॥ तुम सेवक ततकाल ताहि निहचै कर धारै। थुतिकुदालसों खोद वंद भू कठिन विदारै ॥ १५ ॥ स्यादवादगिरि उपज मोक्षसागरलों धाई। तुम

रणांबुज परस भक्तिगंगा सुखदाई ॥ मो चित निर्मल थयो होन रुचिपूरव तामें । अब वह हो न मलीन कौन जिन शय यामें ॥ १६ ॥ तुम शिवसुखमय प्रगट करत प्रभु चेतन तेरो । मैं भगवान समान भाव यों वरतें मेरो॥ दपि झूठ है तदपि तृप्ति निश्चल उपजावे । तुवप्रसाद सक ंक जीव वांछित फल पावे ॥ १७ ॥ वचनजलधि तुम देव कल त्रिभुवनमें व्यापे । भंगतरंगिनि विकथवादमल मलिन थापे ॥ मनसुमेरसों मथे ताहि जे सम्यक्ज्ञानी । परमामृतसों पत होहिं ते चिरलों प्रानी ॥ १८ ॥ जो कुदेव छविहीन सन भूषन अभिलाखे । वैरीसों भय भीत होय सो आयुध खे ॥ तुम सुंदर सर्वंग शत्रु समरथ नहिं कोई । भूषन वसन दादि ग्रहन काहेको होई ॥ १९ ॥ सुरपति सेवा करे कहा भु प्रभुता तेरी । सो सलाघना लहे मिटे जगसों जगफेरी । तुम भवजलधिजिहाज तोहि शिवकंत उचरिये । तुही जगत जनपाल नाथथुतिकी थुति करिये ॥ २० ॥ वचनजाल जड़- रूप आप चिन्मूरति झांई । तातें थुति आलाप नाहिं पहुंचे तुमतांई ॥ तो भी निर्फल नाहिं भक्तिरसभीने वायक । संत- नको सुरतरुसमान वांछित वरदायक ॥ २१ ॥ कोप कभी करो प्रीत कबहूं नहिं धारो । अति उदास वेचाह चित्त जिन- राज तिहारो ॥ तदपि आन जग बहै वैर तुम निकट न लहिये । यह प्रभुता जगतिलक कहां तुम विन सरदहिये ॥२२॥ सुरतिय गावें सुयश सर्वगति ज्ञानस्वरूपी । जो तुमको थिर ‍ में भवि आनंदरूपी ॥ ताहि छेम पुर चलन वाट

याकी नहिं हो है। श्रुतके सुमरनमाहिं सो न कबहूं नर नर मोहै ॥ २४ ॥ अतुल चतुष्टयरूप तुमें जो चितमें धारै। आदरसों तिहुंकालमाहिं जग थुति विस्तारै ॥ सो सुकृत-शिवपंथ भक्ति रचनाकर पूरै। पंचकल्यानक ऋद्धिपाय निह-चै दुख चूरै ॥ २४ ॥ अहो! जगपति पूज्य अवधि ज्ञानी मुनि हारे। तुम गुनकीर्तनमाहिं कौन हम मंद विचारे ॥ थुतिछलसों तुमविषै देव आदर विस्तारे। शिवसुखपूरनहार कल्पतरु यही हमारे ॥ २५ ॥ वादिराज मुनिराज शब्दवि-द्याके स्वामी। वादिराज मुनिराज तर्कविद्यापति नामी ॥ वादिराज मुनिराज काव्यकरता अधिकारी। वादिराज मुनिराज बड़े भविजन उपकारी ॥ २६ ॥

दोहा।

मूल अर्थ बहुविधि कुसुम, भाषासूत्रमझार।
भक्तिमाल 'भूधर' करो कंठ सुखकार ॥ १ ॥

इति एकीभावस्तोत्रभाषा।

१। इसके इस श्लोकका कवि [illegible] ऐसा दोहा बनाया है

वादिराज मुनिराज प्रभु, शाब्दिक तार्किक लोक।
[illegible] अति, [illegible] 'हाय' नमु धोक ॥ २६ ॥

२। [illegible] अनुवाद [illegible] ऐसा भी किया है

वादिराज मुनि[illegible] प्रभु, [illegible]
वादिराज मुनि[illegible] प्रभु [illegible]।
वादिराज मुनि[illegible] प्रभु हैं [illegible]
वादिराज मुनि[illegible] प्रभु हैं [illegible] ॥ २६ ॥

श्रीधनंजयकविप्रणीतं ।

६८ । विषापहारस्तोत्रं ।

स्वात्मस्थितः सर्वगतः समस्तव्यापारवेदी विनिवृत्तसंगः
प्रवृद्धकालोप्यजरो वरेण्यः पायादपायात्पुरुषः पुराणः ॥ १ ।
परैरचिंत्यं युगभारमेकः स्तोतुं वहन्योगिभिरप्यशक्यः
स्तुत्योऽद्य मेऽसौ वृषभो न भानोः किमप्रवेशे विशति प्रदीप
॥ २ ॥ तत्याज शक्रः शकनाभिमानं नाहं त्यजामि स्तवनानु
बंधं । स्वल्पेन बोधेन ततोधिकार्थं वातायनेनेव निरूपयामि ॥
त्वं विश्वदृश्वा सकलैरदृश्यो विद्वानशेषं निखिलैरवेद्यः । वक्तुं
कियान्कीदृशमित्यशक्यः स्तुतिस्ततोऽशक्तिकथा तवास्तु ॥४
व्यापीडितं बालमिवात्मदोषैरुल्लाघतां लोकमवापिपस्त्वं ।
हिताहितान्वेषणमांद्यभाजः सर्वस्य जंतोरसि बालवैद्यः ॥५॥
दाता न हर्ता दिवसं विवस्वानद्यश्व इत्यच्युतदर्शिताशः ।
सव्याजमेवं गमयत्यशक्तः क्षणेन दत्सेऽभिमतं नताय ॥६॥
उपैति भक्त्या सुमुखः सुखानि त्वयि स्वभावाद्विमुखश्च दुःखं ।
सदावदातद्युतिरेकरूपस्तयोस्त्वमादर्श इवावभासि ॥ ७ ॥
अगाधताब्धेः स यतः पयोधिर्मेरोश्च तुंगा प्रकृतिः स यत्र ॥
द्यावापृथिव्योः पृथुता तथैव व्याप त्वदीया भुवनांतराणि ॥८॥
तवानवस्था परमार्थतत्त्वं त्वया न गीतः पुनरागमश्च । दृष्टं
विहाय त्वमदृष्टमैषीर्विरुद्धवृत्तोऽपि समञ्जसस्त्वं ॥ ९ ॥ स्मरः
सुदग्धो भवतैव तस्मिन्नुद्धूलितात्मा यदि नाम शंभुः । अशेत
वृंदोपहतोऽपि विष्णुः किं गृह्यते येन भवानजागः ॥ १० ॥
स नीरजाः स्यादपरोऽघवान्वा तद्दोषकीर्त्यैव न ते गुणित्वं ॥

स्वतोंवुराशेर्महिमा न देव स्तोकापवादेन जलाशयस्य ॥११॥
कर्मस्थितिं जंतुरनेकभूमिं नयत्यमुं सा च परस्परस्य। त्वं
नेतृभावं हि तयोर्भवाब्धौ जिनेंद्र नौनाविकयोरिवाख्यः ॥१२॥
सुखाय दुःखानि गुणाय दोषान्धर्माय पापानि समाचरंति।
तैलाय बालाः सिकतासमूहं निपीडयंति स्फुटमत्वदीयाः ॥१३॥
विपापहारं मणिमौषधानि मंत्रं समुद्दिश्य रसायनं च। भ्राम्यं-
त्यहो न त्वमतिस्मरंति पर्यायनामानि तवैव तानि ॥ १४ ॥
चित्ते न किंचित्कृतवानसि त्वं देवः कृतश्चेतसि येन सर्वं।
हस्ते कृतं तेन जगद्विचित्रं सुखेन जीवत्यपि चित्तबाह्यः ॥१५॥
त्रिकालतत्त्वं त्वमवैस्त्रिलोकीस्वामीति संख्यानियतेरमीषां।
वोधाधिपत्यं प्रति नाभविष्यंस्तेन्येपि चेद्व्याप्स्यदमूनपीदं
॥ १६ ॥ नाकस्य पत्युः परिकर्म रम्यं नागम्यरूपस्य तवो-
पकारि। तस्यैव हेतुः स्वसुखस्य भानोरुद्बिभ्रतच्छत्रमिवाद-
रेण ॥ १७ ॥ क्वोपेक्षकस्त्वं क्व सुखोपदेशः स चेत्किमिच्छा-
प्रतिकूलवादः। क्वासौ क्व वा सर्वजगत्प्रियत्वं तन्नो यथातथ्य-
मवेविजं ते ॥ १८ ॥ तुंगात्फलं यत्तदकिंचनाच्च प्राप्यं समृद्धान्न
धनेश्वरादेः। निरंभसोप्युच्चतमादिवाद्रेर्नैकापि निर्याति धुनी
पयोधेः ॥१९॥ त्रैलोक्यसेवानियमाय दंडं दध्रे यदिंद्रो विन-
येन तस्य। तत्प्रातिहार्यं भवतः कुतस्त्यं तत्कर्मयोगाद्यदि
वा तवास्तु ॥ २० ॥ श्रिया परं पश्यति साधु निःस्वः श्रीमान्न
कश्चित्कृपणं त्वदन्यः। यथा प्रकाशस्थितमंधकारस्थायी-
क्षतेऽसौ न तथा तमःस्थं ॥ २१ ॥ स्ववृद्धिनिःश्वासनिमेष-
भाजि प्रत्यक्षमात्मानुभवेपि मूढः। किं चाखिलज्ञेयविवर्तिबोध-

स्वरूपमध्यक्षमवैति लोकः ॥ २२ ॥ तस्यात्मजस्तस्य पितेति देव त्वां येऽवगायन्ति कुलं प्रकाश्य । तेऽद्यापि नन्वाश्मनमित्यवश्यं पाणौ कृतं हेम पुनस्त्यजंति ॥ २३ ॥ दत्तस्त्रिलोक्यां पटहोभिभूताः सुरासुरास्तस्य महान्स लाभः । मोहस्य मोहस्त्वयि को विरोद्धुर्मूलस्य नाशो बलवद्विरोधः ॥ २४ ॥ मार्गस्त्वयेको ददृशे विमुक्तेश्चतुर्गतीनां गहनं परेण । सर्वं मया दृष्टमिति स्मयेन त्वं मा कदाचिद्भुजमालुलोके ॥ २५ ॥ स्वर्भानुरर्कस्य हविर्भुजोंभः कल्पांतवातोंबुनिधेर्विघातः । संसारभोगस्य वियोगभावो विपक्षपूर्वाभ्युदयास्त्वदन्ये ॥ २६ ॥ अजानतस्त्वां नमतः फलं यत्तज्जानतोन्यं न तु देवतेति । हरिन्मणिं काचधिया दधानस्तं तस्य बुद्ध्या वहतो न रिक्तः ॥२७॥ प्रशस्तवाचश्चतुराः कषायैर्दग्धस्य देवव्यवहारमाहुः । गतस्य दीपस्य हि नंदितत्वं दृष्टं कपालस्य च मंगलत्वं ॥२८॥ नानार्थमेकार्थमदस्त्वदुक्तं हितं वचस्ते निशमय्य वक्तुः । निर्दोषतां के न विभावयंति ज्वरेण मुक्तः सुगमः स्वरेण ॥२९॥ न क्वापि वांछा ववृते च वाक्ते काले क्वचित्कोपि तथा नियोगः । न पूरयाम्यंबुधिमित्युदंशुः स्वयं हि शीतद्युतिरभ्युदेति ॥३०॥ गुणा गभीराः परमाः प्रसन्ना बहुप्रकारा बहवस्तवेति । दृष्टोयमन्तः स्तवने न तेषां गुणो गुणानां किमतः परोस्ति ॥३१॥ स्तुत्या परं नाभिमतं हि भक्त्या स्मृत्या प्रणत्या च ततो भजामि । स्मरामि देव प्रणमामि नित्यं केनाप्युपायेन फलं हि साध्यं ।३२। ततस्त्रिलोकीनगराधिदेवं नित्यं परं ज्योतिरनंतशक्तिं । अपुण्यपापं परपुण्यहेतुं नमाम्यहं वंद्यमवंदितारं ॥ ३३ ॥ अशब्द-

गरपक्षमकल्पवंशं त्वां नीरसं नाद्विपमाप्तबोधं ॥ कवीन्द्र मानात्त-मेयमन्यैर्जिनेंद्रमस्मार्यमनुस्मरामि ॥ ३४ ॥ अनाप्यमन्यैर्मन-साप्यलंघ्यं निष्किंचनं प्रार्थितमर्थवद्भिः । विश्वस्य पारं तमदृष्ट-पारं पतिं जिनानां शरणं व्रजामि ॥३५॥ त्रैलोक्यदीक्षागुरवे नमस्ते यो वर्धमानोपि निजोन्नतोभूत् । प्राग्गंडशैलः पुनरद्रि-कल्पः पश्चान्न मेरुः कुलपर्वतोभूत् ॥ ३६ ॥ स्वयंप्रकाशस्य दिवा निशा वा न बाध्यता यस्य न बाधकत्वं । न लाघवं गौर-वमेकरूपं वंदे विभुं कालकलामतीतं ॥ ३७ ॥ इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद्वरं न याचे त्वमुपेक्षकोसि । छायातरुं संश्रयतः स्वतः स्यात्कश्छायया याचितयात्मलाभः ॥ ३८ ॥ अथास्ति दित्सा यदि वोपरोधस्त्वय्येव सक्तां दिश भक्ति-बुद्धिं । करिष्यते देव तथा कृपां मे को वात्मपोष्ये सुमुखो न सूरिः ॥ ३९ ॥ वितरति विहिता यथाकथंचिज्जिन विनताय मनीषितानि भक्तिः । त्वयि नुतिविषया पुनर्विशेषाद्दिशति सुखानि यशो 'धनंजयं' च ॥ ४० ॥

इति श्रीधनंजयकृतं विषापहारस्तोत्रं ।

स्वर्गीय कविवर शांतिदासकृत

६९ । विषापहारभाषा ।

दोहा ।

नमों नाभिनंदन बली, तत्त्वप्रकाशनहार ।
तुर्यकालकी आदिमें, भये प्रथम अवतार ॥ १ ॥

चाल या रोला छंद ।

निज आतममें लीन ज्ञानकरि व्यापत सारे । जानत सब

व्यापार संग नहिं कछू तिहारे ॥ वहुत कालके हो फुनि जरा न देह तिहारी । ऐसे पुरुष पुरान करहु रछ्या जु हमारी ॥ १ ॥ परकरिकैं जु अचिंत्य भार जुगको अति भारो । सो एकाकी भयो वृषभ कीनो निसतारो ॥ करि न सके जोगिंद्र तैवन मैं करिहौं ताको । भानु प्रकाश न करे दीपतम हरै गुफाको ॥ २ ॥ स्तवनकरनको गर्भ तज्यो सक्री वहु ज्ञानी। मैं नहिं तजौं कदापि स्वल्पज्ञानी शुभध्यानी ॥ अधिक अर्थकौं कहूं यथाविधि वैठि झरोकै । जालांतरधरि अक्ष भूमिधरकौं जु विलोकै ॥ ३ ॥ सकल जगतकौं देखत अर सवके तुम ज्ञायक । तुमकौं देखत नाहिं नाहिं जानत सुखदायक ॥ हौ किसाक तुम नाथ और कितनाक वखानै । तातैं श्रुति नहिं वनै असक्ती भये सयानै ॥ ४ ॥ वालकवत निजदोषथकी इहलोक दुखी अति । । रोगरहित तुम कियो कृपाकरि देव भुवनपति ॥ हित अनहितकी समझिमांहि हैं मंदमती हम । सव प्राणिनके हेत नाथ तुम वालवैद सम ॥५॥ दाता हरता नाहिं भानु सवकौं वहकावत । आज कालके छलकरि नितप्रति दिवस गुमावत ॥ हे अच्युत जो भक्त नमैं तुम चरनकमलकौं । छिनक एकमें आप देत मनवांछित फलकौं ॥६॥ तुमसौं सन्मुख रहै भक्तिसौं सो सुख पावै । जो सुभावतैं विमुख आपतैं दुखहि वढावै ॥ सदा नाथ अवदात एकद्युतिरूप गुसांई । इन दोन्योंके हेत स्वच्छ दरपणवत झाँई ॥७॥ हे अगाध जलनिधी समदजल है जितनौ ही । मेरू तुंग-

१ स्तवन । २ भाव । ३ पहाड़को ।

सुभाव सिखरलौं उच्च भन्यो ही ॥ वसुधा अर सुरलोक एहु इसभांति सई है। तेरी प्रभुता देव भुवनिकूं लंघि गई है ॥ ८॥ है अनवस्था धर्म परम सो तत्त्व तुमारे। कह्यो न आवागमन प्रभू मतमांहि तिहारे ॥ दृष्ट पदारथ छांडि आप इच्छति अदृष्टकौं। विरुधवृत्ति तव नाथ समंजस होय सृष्टकौं ॥ ९ ॥ कामदेवको किया भस्म जगत्राता थे ही। लीनी भस्म लपेटि नाम संभू निजदेही ॥ सूतो होय अचेत विष्णु वनिताकरि हार्‍यो। तुमकौं काम न गहै आप घट सदा उजार्‍यो ॥१०॥ पापवान वा पुन्यवान सो देव बतावे। तिनके औगुन कहैं नाहि तू गुणी कहावे ॥ निज सुभावतैं अंवुराशि निज महिमा पावे। स्तोक सरोवर कहे कहा उपमा वढि जावे ॥ ११ ॥ कर्मनकी थिति जंतु अनेक करै दुखकारी। सो थिति वहु परकार करै जीवनकी ख्वारी ॥ भवसमुद्रके मांहि देव दोन्योंके साखी। नाविक नाव समान आप वाणीमें भाखी ॥ १२ ॥ सुखकौं तो दुख कहै गुणनकूं दोष विचारै। धर्म करनके हेत पाप हिरदै विच धारै ॥ तेल निकासन काज धूलिकौं पेलै घानी। तेरे मतसौं वाह्य इसे जे जीव अज्ञानी ॥ १३ ॥ विष मोचै ततकाल रोगकौं हरै ततच्छन। मणि ओषधी रसांण मंत्र जो होय सुलच्छन ॥ ए सब तेरे नाम सुबुद्धी यो मन धरि हैं। भ्रमत अपर जन वृथा नहीं तुम सुमिरन करि है ॥ १४ ॥ किंचित भी चितमांहि आप कछु करो न स्वामी। जे राखै चितमांहि आपको शुभपरिणामी ॥ हस्तामलवत लखैं जगतकी परिणति जेतो। तेरे चितके

चाहय तोउ जीवै सुखसेती ॥ १५ ॥ तीनलोक तिरकालमां
तुम जानत सारी । स्वामी इनकी संख्या थी तितनीहि नि
हारी ॥ जो लोकादिक हुते अनंते साहिव मेरा । तेऽपि झल
कते आनि ज्ञानका ओर न तेरा ॥ १६ ॥ हैं अगम्य तवरू
करें सुरपति प्रभु सेवा । ना कछु तुम उपकार हेत देवन
देवा ॥ भक्ति तिहारी नाथ इंद्रके तोषित मनको । ज्यों र
सन्मुख छत्र करें छाया निज तनको ॥ १७ ॥ वीतरागत
कहां कहां उपदेश सुखाकर । सो इच्छाप्रतिकूल वचन किम
होय जिनेसर ॥ प्रतिकूली भी वचन जगतकूं प्यारे अतिही
हम कछु जानी नाहिं तिहारी सत्यासतिही ॥ १८ ॥ उच
प्रकृति तुम नाथ संग किंचित न धरनतैं । जो प्रापति तुम
थकी नाहि सो धनेसुरनतैं ॥ उचप्रकृति जलविना भूमिध
धुनी प्रकासै । जलधि नीरतैं भरयो नदी ना एक निकासै
॥ १९ ॥ तीन लोकके जीव करो जिनवरकी सेवा । नियम
थकी करदंड धरयो देवनके देवा ॥ प्रातिहार्य तौ बनै इंद्रके
बनैं न तेरे । अथवा तेरे बनैं तिहारे निमित परेरे ॥ २० ॥
तेरे सेवक नाहि इसे जे पुरुष हीनधन । धनवानोंकी ओर
लखत वे नाहि लखत पन ॥ जैसें तमथिति किये लखत पर
कास थितीकूं । याकूं सूझत नाहिं तमथिती मंदमतीकूं ॥२१
निजवृष सासोसास प्रगट लोचन टमकारा । तिनकों वेदत
नाहिं लोकजन मूढ विचारा ॥ सकल ज्ञेय ज्ञायक अमूरति ज्ञान
सुलच्छन । सो किमि जान्यो जाय देव तव रूप विचच्छन
॥ २२ ॥ नाभिरायके पुत्र पिता प्रभु भरततने हैं । कुल

प्रकाशिकैं नाथ तिहारो तवंन भने हैं ॥ ते लघुधी असमान गुननकों नाहिं भजें हैं । सुवरन आयो हाथि जानि पापानं तजें हैं ॥२३॥ सुरासुरनको जीति मोहने ढोल वजाया। तीन लोकमें किये सकल वशि यों गरभाया ॥ तुम अनंत वलवंत नाहिं ढिग आवन पाया। करि विरोध तुमथकी मूलतें नाश कराया ॥ २४॥एक मुक्तिका मार्ग देव तुमने परकास्या। गहन चतुरगति• मार्ग अन्य देवनकूं भास्या ॥ 'हम सब देखनहार' इसीविधि भाव सुमिरिके । भुज न विलोको नाथ कदाचित गर्भ जु धरिकै ॥२५॥ केतुविपक्षी अर्कतनो फुनि अग्नितनो जल। अंबुनिधीअरि प्रलयकालको पवन महावल ॥ जगतमाहिं जे भोग वियोग विपक्षी हैं निति। तेरो उदयो है विपक्षतें रहित जगतपति ॥ २६ ॥ जाने विन हू नवत आपको जो फल पावे। नमन अन्यको देव जानि सो हाथ न आवे ॥ हरी मणीकूं कान्च, कान्चकूं मणी रटत है ॥ ताकी बुधिमें भूल, मूल्य मणिको न घटत है ॥२७॥ जे विवहारी जीव वचनमें कुशल सयानें । ते कषायकरि दग्ध नरनकों देव वखानें ॥ ज्यों दीपक बुझि जाय ताय कहि 'नंदि' भयो है। भग्न घडेको कहैं कलस ए मँगलि गयो है ॥ २८ ॥ स्यादवाद संजुक्त अर्थको प्रगट वखानत। हितकारी तुम वचन श्रवनकरि को नहिं जानत ॥ दोपरहित ए देव शिरोमणि वक्ता जगगुर। जो ज्वरसेती मुक्त भयो सो कहत सरलसुर ॥ २९ ॥ विनं-वांछा ए वचन आपके खिरैं कदाचित। है नियोग ए कोपि जगतको करन सहजहित ॥ करै न वांछा इसी चंद्रमा पूरो

जलनिधि। सीतरश्मिकूं पाय उदधि जल वढै स्वयंसिधि।३०। तेरे गुणगंभीर परम पावन जगमाई। वहुप्रकार प्रभु हैं अनंत कछु पार न पाई॥ तिन गुणानको अंत एक याही विधि दीसे। ते गुण तुझ ही माहिं औरमें नाहिं जगीसे ॥ ३१॥ केवल श्रुति ही नाहि भक्तिपूर्वक हम ध्यावत। सुमरन प्रणमन तथा भजनकरि तुमगुण गावत॥ चितवन पूजन ध्यान नमनकरि नित आराधें। को उपावकरि देव सिद्ध फलको हम साधें॥ ३२॥ त्रैलोकी नगराधि देव नित ज्ञानप्रकाशी। परमज्योति परमातमशक्ति अनंती भासी॥ पुन्यपापतें रहित पुन्यके कारण स्वामी। नमों नमों जगवंद्य अवंद्यक नाथ अकामी॥३३॥ रस सपरस अर गंध रूप नहिं शब्द तिहारें। इनिके विषय विचित्र भेद सव जाननहारे॥ सव जीवनप्रतिपाल अन्यकरि हैं अगम्य गन। सुमरनगोचर नाहिं करों जिन तेरो सुमिरन॥ ३४॥ तुम अगाध जिनदेव चित्तके गोचर नाहीं। निःकिंचन भी प्रभू धनेश्वर जाचत साईं॥ भये विश्वके पार दृष्टिसों पार न पावे। जिनपति एम निहारि संतजन सरनें आवै॥ ३५॥ नमों नमों जिनदेव जगतगुरु शिक्षादायक। निजगुणसेती भई उन्नती महिमालायक॥ पाहनखंड पहार पछें ज्यों होत और गिर। त्यों कुलपर्वत नाहिं सनातन दीर्घ भूमिधर॥ ३६॥ स्वयं प्रकाशी देव रैन दिनकूं नहिं वाधित। दिवस रात्रि भी छतें आपकी प्रभा प्रकासित॥ लाघव गौरव नाहिं एकसो रूप तिहारो। कालकलातें रहित प्रभूसूं नमन हमारो।॥ ३७॥ इहविधि वह

परकार देव तव भक्ति करी हम। जाचूं वर न कदाचि दीन
है रागरहित तुम॥ छाया बैठत सहज वृक्षके नीचे है है। फिर
छायाकौ जाचत यामें प्रापति क्है है॥३८॥ जो कुछ इच्छा होय
देनकी तो उपगारी। द्यो बुधि ऐसी करूं प्रीतिसौं भक्ति
तिहारी॥ करो कृपा जिनदेव हमारे परि है तोषित। सनमुख
अपनो जानि कौन पंडित नाहिं पोषित।३९। यथाकथंचित भक्ति
रचै विनईजन के ही। तिनकूं श्रीजिनदेव मनोवांछित फल दे
ही॥ फुनि विशेष जो नमत संतजन तुमको ध्यावैं। सो सुख
जस 'धन-जय' प्रापति है शिवपद पावैं।४०। श्रावक माणिकचंद
सुबुद्धी अर्थ बताया। सो कवि 'शांतीदास' सुगमकरि छंद
बनाया॥ फिरिफिरिकै ऋषि 'रूपचंद' ने करी प्रेरणा। भाषा
स्तोतर विषापहारकी पढो भविजना॥ ४१॥

इति श्रीविषापहार स्तोत्र समाप्त।

श्रीभूपालकविप्रणीता

७०। जिनचतुर्विंशतिका।

श्रीलीलायतनं महीकुलगृहं कीर्तिप्रमोदास्पदं
वाग्देवीरतिकेतनं जयरमाक्रीडानिधानं महत्।
स स्यात्सर्वमहोत्सवैकभवनं यः प्रार्थितार्थप्रदं
प्रातः पश्यति कल्पपादपदलच्छायं जिनांघ्रिद्वयं॥ १॥
शांतं वपुः श्रवणहारि वचश्चरित्रं
सर्वोपकारि तव देव ततः श्रुतज्ञाः।
संसारमारवमहास्थलरुद्रसांद्र-
च्छायामहीरुहभवंतमुपाश्रयंते॥ २॥

स्वामिन्नद्य विनिर्गतोऽस्मि जननीगर्भांधकूपोदरा-
दद्योद्घाटितदृष्टिरस्मि फलवज्जन्मास्मि चाद्य स्फुटं ।
त्वामद्राक्षमहं यदक्षयपदानंदाय लोकत्रयी-
नेत्रेंदीवरकाननेंदुममृतस्यंदिप्रभाचंद्रिकं ॥ ३ ॥
निःशेषत्रिदशेंद्रशेखरशिखारत्नप्रदीपावली
सांद्रीभूतमृगेंद्रविष्टरतटीमाणिक्यदीपावलिः ।
केयं श्रीः क्व च निःस्पृहत्वमिदमित्यूहातिगस्त्वादृशः
सर्वज्ञानदृशश्चरित्रमहिमा लोकेश ! लोकोत्तरः ॥ ४ ॥
राज्यं शासनकारिनाकपति यत्त्यक्तं तृणावज्ञया
हेलानिर्दलितत्रिलोकमहिमा यन्मोहमल्लो जितः ।
लोकालोकमपि स्वबोधमुकुरस्यांतः कृतं यत्त्वया
सैषाश्चर्यपरम्परा जिनवर क्वान्यत्र संभाव्यते ॥ ५ ॥
दानं ज्ञानधनाय दत्तमसकृत्पात्राय सद्वृत्तये
चीर्णान्युग्रतपांसि तेन सुचिरं पूजाश्च बह्व्यः कृताः ।
शीलानां निचयः सहामलगुणैः सर्वः समासादितो
दृष्टस्त्वं जिन येन दृष्टिसुभगः श्रद्धापरेण क्षणं ॥ ६ ॥
प्रज्ञापारमितः स एव भगवान्पारं स एव श्रुत-
स्कंधाब्धेर्गुणरत्नभूषण इति श्लाघ्यः स एव ध्रुवं ।
नीयंते जिन येन कर्णहृदयालंकारतां त्वद्गुणाः
संसाराहिविषापहारमणयस्त्रैलोक्यचूडामणेः ॥ ७ ॥
जयति दिविजवृंदान्दोलितैरिंदुरोचि-
र्निचयरुचिभिरुच्चैश्चामरैर्वीज्यमानः ।
जिनपतिरनुरज्यन्मुक्तिसाम्राज्यलक्ष्मी-

युवतिनवकटाक्षक्षेपलीलां दधाने: ॥ ८ ॥

देवः श्वेतातपत्रत्रयचमरिरुहाशोकभाश्चक्रभाषा-
पुष्पौघासारसिंहासनसुरपटहैरष्टभिः प्रातिहार्यैः ।
साश्चर्यैर्भ्राजमानः सुरमनुजसभांभोजिनीभानुमाली
पायान्नः पादपीठीकृतसकलजगत्पालमौलिर्जिनेंद्रः ॥९॥

नृत्यत्स्वर्दंतिदंतांबुरुहवननटन्नाकनारीनिकायः
सद्यस्त्रैलोक्ययात्रोत्सवकरनिनदातोद्यमायान्निलिंपः ।
हस्तांभोजातलीलाविनिहितसुमनोदामरम्यामरस्त्री-
काम्यः कल्याणपूजाविधिषु विजयते देव देवागमस्ते ॥१०॥

चक्षुष्मानहमेव देव भुवने नेत्रामृतस्यंदिनं
त्वद्वक्त्रेंदुमतिप्रसादसुभगैस्तेजोभिरुद्भासितं
येनालोकयता मयानतिचिराच्चक्षुः कृतार्थीकृतं
द्रष्टव्यावधिवीक्षणव्यतिकरव्याजृंभमाणोत्सवं ॥ ११ ॥

जंतोः सकांतमपि मल्लमवैति कश्चि-
न्मुग्धो मुकुंदमरविंदजमिंदुमौलिं ।
मोघीकृतत्रिदशयोषिदपांगपात-
स्तस्य त्वमेव विजयी जिनराजमल्लः ॥ १२ ॥

किसलयितमनल्पं त्वद्विलोकाभिलाषा-
त्कुसुमितमतिसांद्रं त्वत्समीपप्रयाणात् ।
मम फलितममंदं त्वन्मुखेंदोरिदानीं
नयनपथमवाप्ताद्देव पुण्यद्रुमेण ॥ १३ ॥

त्रिभुवनवनपुष्प्यत्पुष्पकोदंडदर्प-
प्रसरदवनवांभोमुक्तिसूक्तिप्रसूतिः

स जयति जिनराजव्रातजीमूतसंघः
शतमखशिखिनृत्यारंभनिर्वंधवंधुः ॥ १४ ॥
भूपालस्वर्गपालप्रमुखनरसुरश्रेणिनेत्रालिमाला-
लीलाचैत्यस्य चैत्यालयमखिलजगत्कौमुदींदोर्जिनस्य।
उत्तंसीभूतसेवांजलिपुटनलिनीकुड्मलास्त्रिः परीत्य,
श्रीपादच्छाययापस्थितभवदवथुः संश्रितोस्मीव मुर्क्ति१५
देवं त्वदंघ्रिनखमंडलदर्पणेऽस्मि-
न्नर्घ्ये निसर्गरुचिरे चिरदृष्टवक्त्रः।
श्रीकीर्तिकांतिधृतिसंगमकारणानि
भव्यो न कानि लभते शुभमंगलानि ॥ १६ ॥
जयति सुरनरेंद्रश्रीसुधानिर्झरिण्याः
कुलधरणिधरोयं जैनचैत्याभिरामः।
प्रविपुलफलधर्मानोकहाग्रप्रवाल-
प्रसरशिखरशुंभत्केतनः श्रीनिकेतः ॥ १७ ॥
विनमदमरकांताकुंतलाक्रांतिकांति-
स्फुरितनखमयूखद्योतिताशांतरालः।
दिविजमनुजराजव्रातपूज्यक्रमाब्जो
जयति विजितकर्मारातिजालो जिनेंद्रः ॥ १८ ॥
सुप्तोत्थितेन सुमुखेन सुमंगलाय
दृष्टव्यमस्ति यदि मंगलमेव वस्तु।
अन्येन किं तदिह नाथ तवैव वक्त्रं
त्रैलोक्यमंगलनिकेतनमीक्षणीयं ॥ १९ ॥
त्वं धर्मोदयतापसाश्रमशुकस्त्वं काव्यबंधक्रम-

श्रीहानंदनकोकिलस्त्वमुचितः श्रीपल्लिकापद्मपदः ।
त्वं पुन्नागकथागविदमरसो हंसस्त्वमुत्तंसकैः
कर्मभूपाल न धार्यसे गुणमणिस्त्रमालिभिर्मौलिभिः ॥२०॥

शिवसुखमजरश्रीसंगमं चाभिलष्य
स्वमपि नियमयंति क्लेशपाशेन केचित् ।
वयमिह तु वचस्ते भूपतेर्भावयंतः
तदुभयमपि शश्वल्लीलया निर्विशामः ॥ २१ ॥

देवेंद्रास्तव मज्जनानि विदधुर्देवांगना मंगला-
न्यापेठुः शरदिंदुनिर्मलयशो गंधर्वदेवा जगुः ।
शेषाश्चापि यथानियोगमखिलाः सेवां सुराश्चक्रिरे
तत्किं देव वयं विदध्म इति नश्चित्तं तु दोलायते ॥२२॥

देव त्वज्जननाभिषेकसमये रोमांचसत्कंचुकै-
र्देवेंद्रैर्यदनर्ति नर्तनविधौ लब्धप्रभावैः स्फुटं ।
किं चान्यत्सुरसुंदरीकुचतटप्रांतावनद्धोत्तम-
[illegible] ॥ २३ ॥

देव [illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥२४॥

[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥ २५ ॥

दृष्टस्त्वं जिनराजचंद्रविकसद्भूपेंद्रनेत्रोत्पलैः
स्नातं त्वन्नुतिचंद्रिकांभसि भवद्विद्वच्चकोरोत्सवे।
नीतश्चाद्य निदाघजः क्लमभरः शांतिं मया गम्यते
देव ! त्वद्गतचेतसैव भवतो भूयात्पुनर्दर्शनं ॥ २६ ॥

इति भूपालकविप्रणीता जिनचतुर्विंशतिका समाप्ता।

कविवर भूधरदासजीकृत।

७१। भूपालचतुर्विंशति भाषा।

दोहा।

सकल सुरासुर पूज नित, सकल सिद्धिदातार।
जिनपद वंदू जोर कर, अशरन जन आधार ॥ ॥ १ ॥

चौपाईछन्द १५ मात्रा।

श्रीसुखवासमहीकुलधाम। कीरतिहर्पणथलअभिराम ॥
सरसुतिके रतिमहल महान। जय जुवतीको खेलन थान ॥
अरुण वरण वंछित वरदाय। जगतपूज्य ऐसे जिन पाय ॥
दर्शन प्राप्त करे जो कोय। सब शिवथानक सो जन होय ॥१॥
निर्विकार तुम सोमशरीर। श्रवणसुखद वाणी गंभीर ॥
तुम आचरण जगतमें सार। सब जीवनको है हितकार ॥
महानिंद भवमारू देश। तहां तुंग तरु तुम परमेश ॥
सघनछांहिमंडितछविदेत। तुम पंडित सेवें सुख हेत ॥ २ ॥
गर्भकूपतें निकस्यो आज। अब लोचन उघरे जिनराज ॥
मेरो जन्मसफल भयो अबै। शिवकारण तुम देखे जबै ॥
जगजननैनकमलवनखंड। विकसावनशशिशोकविहंड ॥
आनंदकरनप्रभातुमतणी। मोई अमी झरन चांदणी ॥ ३ ॥

बाजे दुंदुभि बरसें फूल । ढिगअशोक वाणी सुखमूल ॥
इहिविधि अनुपम शोभा मान । सुरनरसभा पदमनीभान ॥
लोकनाथ वंदें शिरनाय । सो हम शरण होहु जिनराय ॥९॥
सुरगजदंतकमलवनमाहिं । सुरनारीगण नाचत जाहिं ॥
बहुविधि बाजे बाजें थोक । सुन उछाह उपजे तिहुलोक ॥
हर्षत हरि जे जे उचरें । सुमनमाल अपछर कर धरें ॥
यों जन्मादि समय तुम होय । जयो देव देवागम सोय ॥१०॥
तीरथकारन तुम मुखचंद । जननयनामृतकरन अमंद ॥
सुंदर दुतिकर अधिक उजास । तीनभवन नहिं उपमा तास॥
ताहि निरखि मनवच हम भये । लोचन आज सुफल करलये ॥
देखनयोग जगतमें देख । उमग्यो उर आनंद विशेख ॥११॥
कैयक यों मानें मतिमंद । विजितकाम विधि ईश मुकुंद ॥
ये तो हैं वनितावश दीन । कामकटकजीतनबलहीन ॥
प्रभु आगें सुरकामिनि करें । ते कटाक्ष सब खाली परें ॥
यातें मदन विध्वंसन वीर । तुम भगवंत और नहिं धीर ॥१२॥
दर्शनप्रीति हिये जब जगी । तबै आम्रकोंपल बहु लगी ॥
तुम समीप उठ आवन ठयो । तबसों मधन प्रफुलित भयो ॥
अबहूं निज नैननढिग आय । मुखमयंक देख्यो जगराय ॥
मेरो पुन्नविरछ इस बार । सुफल फल्यो सब सुखदातार ॥१३॥

त्रिभुवन वनमें विस्तरी, कामदवानल जोर ।
वाणीवरषाजलसों शांति करहु चहुं ओर ॥
इह मोर नाचें निकट, भक्तिभाव धर मोद ।

मेघ सघन चौवीस जिन, जैवंते जग होय ॥ १४ ॥

चौपाई छंद १५ मात्रा।

भविजनकुमुदचंद सुखदैन । सुरनरनाथप्रमुखजगजैन ॥
ते तुम देख रमें इह भांति । पहुपगेह लह ज्यों अलिपांत ॥
शिरधर अंजुलि भक्तिसमेत । श्रीगृहप्रति परिदक्षण देत ॥
शिवसुखकीसी प्रापति भई । चरणछांहसों भवतपगई ॥१५॥
वह तुमपदनखदर्पण देव । परम पूज्य सुंदर स्वयमेव ॥
तामें जो भविभागविशाल । आननअविलोकै चिरकाल ॥
कमलाकीरति कांति अनूप । धीरजप्रमुख सकल सुखरूप ॥
वे जगमंगल कौन महान । जो न लहै वह पुरुष प्रधान ।१६।
इंद्रादिक श्रीगंगा जेह । उत्पतिथान हिमाचल येह ॥
जिनमुद्रामंडित अतिलसै । हर्ष होय देखे दुख नशै ॥
शिखर ध्वजागण सोहैं एम । धर्मसुतरुवर पल्लव जेम ॥
यों अनेक उपमाआधार । जयो जिनेश जिनालय सार ॥१७॥
शीश नवाय नमत सुरनार । केशकांतिमिश्रित मनहार ॥
नखउद्योत वरतै जिनराज । दशदिशपूरित किरणसमाज ॥
स्वर्गनागनरनायक संग । पूजत पायपद्म अतुलंग ॥
दुष्टकर्मदलदलन सुजान । जैवंते वरतो भगवान ॥ १८ ॥
सोकर जागें जो धीमान । पंडित सुधी सुमुख गुणवान ॥
आपन मंगलहेतु प्रशस्त । अवलोकन चाहै कछु वस्त ॥
और वस्तु देखें किस काज । जो तुम मुख राजै जिनराज ॥
तीनलोकको मंगलथान । प्रेक्षणीय तिहुँ जगकल्यान ॥१९॥
धर्मोदय तापसगृहकीर । काव्यबंधवनपिक तुम वीर ॥

मोक्षमल्लिका मधुपरसाल । पुन्यकथा कजसरसि मराल ॥
तुम जिनदेव सुगुणमणिमाल । सर्वहितंकर दीनदयाल ॥
ताको कौन न उन्नतकाय । धरै किरीटमाहिं हर्षाय ॥ २० ॥
केई वांछैं शिवपुर वास । केई करैं स्वर्गसुख आस ॥
पचैं पँचानल आदिक ठान । दुःख बंधै जस बँधै अयान ॥
हम श्रीमुखवानी अनुभवैं । सरधा पूरव हिरदै ठवैं ॥
तिस प्रभाव आनंदित रहैं । स्वर्गादिक सुख सहजे लहैं ॥२१॥
न्होनमहोत्सव इंद्रन कियो । सुरतिय मिल मंगल पढ़लियो ॥
सुयशशरदचंद्रोपम सेत । सो गंधर्व गान करलेत ॥
और भक्ति जो जो जिमजोग । शेष सुरन कीनी सुनियोग ॥
अब प्रभु करैं कौनसी सेव । हम चित भयो हिंडोलो एव ॥२२॥
जिनवर जन्मकल्यानक धोम । इंद्र आप नाचै कर होम ॥
पुलकितअंग पिताघर आय । नाचतविधिमें महिमा पाय ॥
अमरी बीन बजावै सार । धरी कुचाग्र करत झंकार ॥
इहि विधि कौतुक देख्यो जबै । औसर कौन कह सकै अबै ॥२३॥
श्रीप्रतिबिंब मनोहर एम । विकसनवदन कमलदल जेम ॥
नाहिं हेर हरखे हग दोय । कह न सकूं इतनो सुख होय ॥
नव सुरसंग कल्यानक काल । प्रगटरूप जोवै जगपाल ॥
इकटक दिष्ट एक चितलाय । वह आनंद कहा क्यों जाय ॥२४॥
देख्यो देव रमासन धाम । देख्यो नवनिधिको विसराम ॥
चिंता रतन सिद्धिरस अवै । जिनगृह देखन देखे सबै ॥
अथवा इन देखे कछु नाहिं । यह अनुगामी फल जगमाहिं ॥
स्वामी मान्यों अपूरव काज । भक्तिसमीर भई मुझ आज ॥२५॥

अब विनवै भूपाल नरेश । देखे जिनवर हरन कलेश ॥
नेत्रकमल विकसे जगचंद्र । चतुर चकोर करण आनंद ॥
थुतिजलसों यों पावन भयो । पापताप मेरो मिट गयो ॥
मो चित है तुम चरणनमाहिं । फिर दर्शन हूज्यो अब जाहिं ॥

छप्पय छंद ।

इहिविधि बुद्धिविशालराय भूपाल महाकवि ।
कियो ललित थुतिपाठ हिये सब समझ सकै नवि ॥
टीकाके अनुसार अर्थ कछु मनमें आयो ।
कहीं शब्द कहिं भाव जोड़ भाषा यश गायो ॥
आतम पवित्रकारण किमपि, बाल ख्याल सो जानियो ।
लीज्यो सुधार भूधरतणी, यह विनती बुध मानियो ॥२७॥

॥ इति ॥

७२। महावीराष्टकस्तोत्र

शिखरिणी ।

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः समं भांति ध्रौव्य-व्ययजननिलसंतोंतरहिताः । जगत्साक्षी मार्गप्रकटनपरो भानुरिव यो महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥१॥ अताम्रं यच्चक्षुः कमलयुगलं स्पंदरहितं जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यंतरमपि । स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमितमयी वातिविमला, महावी० ॥ २ ॥ नमन्नाकेंद्राली मुकुटमणिभाजालजटिलं लसत्पादांभोजद्वयमिह यदीयं तनुभृतां । भवज्ज्वालाशांत्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि, महावीर० ॥३॥ यदर्चाभावेन प्रमुदितमना दर्दुर इह क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगणसमृद्धः सुखनिधिः । लभंते सद्भक्ताः

शिवसुखसमाजं किसु तदा, महावीर० ॥४॥ कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगततनुर्ज्ञाननिवहो विचित्रात्माप्येको नृपतिवरसिद्धार्थतनयः। अजन्मापि श्रीमान् विगतभवरागोद्भुतगतिर्, महावीर० ॥ ५ ॥ यदीया वाग्गंगा विविधनयकल्लोलविमला बृहज्ज्ञानांभोभिर्जगति जनतां या स्नपयति। इदानीमप्येषा बुधजनमरालैः परिचिता, महावीर० ॥६॥ अनिर्वारोद्रेकस्त्रिभुवनजयी कामसुभटः कुमारावस्थायामपि निजबलाद्येन विजितः। स्फुरन्नित्यानंदप्रशमपदराज्याय स जिनः, महावीर० ॥७॥ महामोहातंकप्रशमनपराकस्मिकभिषङ् निरापेक्षो बंधुर्विदितमहिमामंगलकरः शरण्यः, साधूनां भवभयभृतामुत्तमगुणो, महावीर० ॥ ८ ॥

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेंदुना कृतं।
यः पठेच्छृणुयाच्चापि स याति परमां गतिं ॥९॥ इति।

७३। मंगलाष्टकम।

श्रीमन्नम्रसुरासुरेंद्रमुकुटप्रद्योतरत्नप्रभाभास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनांभोधीन्दवः स्थायिनः। ये सर्वे जिनसिद्धसूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः। स्तुत्या योगिजनैश्च पंचगुरवः कुर्वंतु ते मंगलम् ॥ १ ॥ सम्यग्दर्शनबोधवृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं मुक्तिश्रीनगराधिनाथजिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः। धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्यालयं, प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥ २ ॥ नाभेयादिजिनाधिपास्त्रिभुवनख्यातश्चतुर्विंशतिः श्रीमन्तो भरतेश्वरप्रभृतयो ये चक्रिणो द्वादश। ये विष्णुप्रतिविष्णुलांगलधराः सप्तोत्तरा

७४। अकलंकस्तोत्रं।

शार्दूलविक्रीडितछन्दः।

त्रैलोक्यं सकलं त्रिकालविषयं सालोकमालोकितं साक्षाद्येन यथा स्वयं करतले रेखात्रयं सांगुलि। रागद्वेषभयामयान्तकजरालोलत्वलोभादयो, नालं यत्पदलंघनाय स महादेवो मया वंद्यते ॥ १ ॥ दग्धं येन पुरत्रयं शरभवा तीव्रार्चिषा वह्निना, यो वा नृत्यति मत्तवत्पितृवने यस्यात्मजो वा गुहः। सोऽयं किं मम शंकरो भयतृषारोषार्तिमोहक्षयं कृत्वा यः स तु सर्ववित्तनुभृतां क्षेमंकरः शंकरः ॥ २ ॥ यत्नाद्येन विदारितं कररुहैर्दैत्येन्द्रवक्षःस्थलं सारथ्येन धनंजयस्य समरे योऽमारयत्कौरवान्। नासौ विष्णुरनेककालविषयं यज्ज्ञानमव्याहतं विश्वं व्याप्य विजृंभते स तु महाविष्णुः सदेष्टो मम ॥ ३ ॥ उर्वश्यामुदपादि रागबहुलं चेतो यदीयं पुनः पात्रीदंडकमंडलुप्रभृतयो यस्याकृतार्थस्थितिम् ॥ आविर्भावयितुं भवंति स कथं ब्रह्माभवेन्मादृशां क्षुत्तृष्णाश्रमरागरोगरहितो ब्रह्मा कृतार्थोऽस्तु नः ॥४॥ यो जग्ध्वा पिशितं समत्स्यकवलं जीवं च शून्यं वदन्, कर्त्ता कर्मफलं न भुंक्त इति यो वक्ता स बुद्धः कथम्। यज्ज्ञानं क्षणवर्त्तिवस्तुसकलं ज्ञातुं न शक्तं सदा यो जानन्युगपज्जगत्त्रयमिदं साक्षात्स बुद्धो मम ॥ ५ ॥

स्रग्धरा छंदः।

ईशः किं छिन्नलिंगो यदि विगतभयः शूलपाणिः कथं स्यात् नाथः किं भैक्ष्यचारी यतिरिति स कथं सांगनः सात्मजश्च। आर्द्राजः किन्त्वजन्मा सकलविदिति किं वेत्ति नात्मा-

न्तरायं संक्षेपात्सम्यगुक्तं पशुपतिमपशुः कोऽत्र धीमानुपास्ते ॥ ६ ॥ ब्रह्मा चर्माक्षसूत्री सुरयुवतिरसावेशविभ्रान्तचेताः शम्भुः खट्वांगधारी गिरिपतितनयापांगलीलानुविद्धः। विष्णुश्चक्राधिपः सन्दुहितरमगमद्गोपनाथस्य मोहादर्हन्विध्वस्तरागो जितसकलभयः कोऽयमेष्वाप्तनाथः ॥ ७ ॥ एको नृत्यति विप्रसार्य कुकुभां चक्रे सहस्रभुजानेकः शेषभुजंगभोगशयने व्यादाय निद्रायते । दृष्टुं चारुतिलोत्तमामुखमगादेकश्चतुर्वक्त्रतामेते मुक्तिपथं वदंति विदुषामित्येतदत्यद्भुतम् ॥ ८ ॥ यो विश्वं वेद वेद्यं जननजलनिधेर्भंगिनः पारदृश्वा पौर्वापर्याविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीयम्। तं वंदे साधुवंद्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषंतं बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥ ९ ॥ माया नास्ति जटा कपाल मुकुटं चन्द्रो न मूर्द्धावली, खट्वांगं न च वासुकिर्न च धनुः शूलं न चोग्रं मुखं। कामो यस्य न कामिनी न च वृषो गीतं न नृत्यं पुनः सोऽस्मान्पातु निरंजनो जिनपतिः सर्वत्र सूक्ष्मः शिवः ॥१०॥ नो ब्रह्मांकितभूतलं न च हरेः शम्भोर्न मुद्रांकितं नो चन्द्रार्ककरांकितं सुरपतेर्वज्रांकितं नैव च। षड्वक्त्रांकितबौद्धदेवहुतभुग्यक्षोरगैर्नांकितं नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्रमुद्रांकितं ॥ ११ ॥ मौंजीदंडकमंडलुप्रभृतयो नो लाञ्छनं ब्रह्मणो । रुद्रस्यापि जटाकपालमुकुटं कौपीनखट्वांगना । विष्णोश्चक्रगदादिशंखमतुलं बुद्धस्य रक्ताम्बरं नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्रमुद्रांकितं ॥ १२ ॥ नाहंकारवशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा केवलं नैरात्म्यं प्रतिपद्य न-

श्यति जने कारुण्यबुद्ध्या मया। राज्ञः श्रीहिमशीतलस्य सदसि प्रायोविदग्धात्मनो बौद्धौघान्सकलान् विजित्य स घटः पादेन विस्फालितः ॥ १३ ॥ खट्वांगं नैव हस्ते न च हृदि रचि लम्बते मुंडमाला भस्मांगं नैव शूलं न च गिरिदुहिता नैव ह कपालं। चन्द्रार्द्धं नैव मूर्द्धन्यपि वृषगमनं नैव कंठे फणी तं वन्दे त्यक्तदोषं भवभयमथनं चेश्वरं देवदेवं ॥ १४ किं वाद्यो भगवानमेयमहिमा देवोऽकलंकः कलौ क यो जनतासुधर्मनिहितो देवोऽकलंको जिनः। यस्य स्फ विवेकमुद्रलहरीजालेप्रमेयाकुला। निर्मग्ना तनुतेतरां भगव तारा शिरः कम्पनम् ॥ १५ ॥ सा तारा खलु देवता भगवत मन्यापि मन्यामहे, षण्मासावधिजाड्यसांख्यभगवद्भट्टाकलं प्रभोः। वाक्कल्लोलपरम्पराभिरमते नूनं मनोमज्जनव्यापा सहते स्म विस्मितमतिः सन्ताड़िततस्ततः ॥

इति श्रीअकलंकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

७५। पार्श्वनाथस्तोत्र।

भुजंगप्रयात छंद

नरेंद्रं फणींद्रं सुरेंद्रं अधीसं। शतेंद्रं सुपूजें भजें ना शीसं ॥ मुनींद्रं गणेंद्रं नमों जोडि हाथं। नमों देवदेवं सद पार्श्वनाथं ॥ १ ॥ गजेंद्रं मृगेंद्रं गह्यो तू छुडावे। महा आगतें नागतें तू बचावे ॥ महावीरतें युद्धमें तू जितावे। महारोगतें बंधतें तू छुडावे ॥ २ ॥ दुखीदुःखहर्ता सुखीसुक्खकर्ता। सदा सेवकोंको महानंदभर्ता ॥ हरे यक्ष राक्षस्स भूतं पिशाचं। विषं डांकिनी विघ्नके भय अवाचं। ३। दरिद्रीनको द्रव्यके दान

दीने । अपुत्रीनको तू भले पुत्र कीने ॥ महासंकटोंसे निकारै विधाता । सबै संपदा सर्वको देहि दाता ॥ ४ ॥ महाचोरको वज्रको भय निवारै । महापौनके पुंजतैं तू उबारै ॥ महाक्रोधकी अग्निको मेघ–धारा । महालोभ–शैलेशको वज्र भारा ॥५॥ महामोह अंधेरको ज्ञानभानं । महाकर्मकांतारको दौं प्रधानं ॥ किये नाग नागिनं अधोलोकस्वामी । हरचो मान तू दैत्यको हो अकामी ॥ ६ ॥ तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनं तुही दिव्यचिंतामणी नाग एनं ॥ पशू नर्कके दुःखतैं तू छुडावै । महास्वर्गमें मुक्तिमें तू वसावै ॥७॥ करै लोहको हेमपाषाण नामी । रटै नाम सो क्यों न हो मोक्षगामी ॥ करै सेव ताकी करैं देव सेवा । सुनै वैन सोही लहै ज्ञानमेवा ॥ ८ ॥ जपै जाप ताको नहीं पाप लागै । धरै ध्यान ताके सबै दोष भागै ॥ विना तोहि जाने धरे भव घनेरे । तुम्हारी कृपातैं सरैं काज मेरे ॥ ९ ॥

दोहा ।

गणधर इंद्र न कर सकैं, तुम विनती भगवान ।
'द्यानत' प्रीत निहारकै, कीजे आप समान ॥ १० ॥

७६ । पार्श्वनाथस्तोत्र भूधरकृत ।

दोहा—कर जिन पूजा अष्टविधि, भावभक्ति जिन भाय ।
अब सुरेश परमेश थुति, करौं शीश निज नाय ॥१॥

चौपाई ।

प्रभु इस जग समर्थ ना कोय । जासों तुम यश वर्णन होय ॥
चार ज्ञानधारी मुनि थकैं । हमसे मंद कहा कर सकैं ॥ २ ॥
यह उर जानत निश्चय हीन । जिनमहिमावर्णन हम कीन ॥

पर तुम भक्ति थके वाचाल । तिसवस होय गहूं गुणमाल ॥३॥
जय तीर्थंकर त्रिभुवन धनी। जय चंद्रोपम चूडामनी॥
जय जय परम धाम दातार । कर्मकुलाचल चूरनहार ॥ ४ ॥
जय शिवकामिनिकंत महंत। अतुल अनंत चतुष्टयवंत।
जय जय आशभरण वडभाग । तपलक्ष्मीके सुभग सुहाग ॥
जय जय धर्मध्वजाधर धीर। स्वर्गमोक्ष दाता वरवीर॥
जय रत्नत्रयरत्नकरंड । जय जिन तारण तरण तरंड ॥६॥
जय जय समवशरणशृंगार । जय संशयवनदहन तुषार ॥
जय जय निर्विकार निर्दोष। जय अनंत गुणमाणिक कोष॥
॥ ७ ॥ जय जय ब्रह्मचर्यदल साज । काम सुभट विजयी भटराज ॥ जय जय मोहमहातरुकरी । जय जय मद कुंजर-केहरी ॥ ८ ॥ क्रोधमहानल-मेह प्रचंड। मानमोहधर दामिनिदंड ॥ माया बेल धनंजयदाह । लोभ सलिलशोषण दिननाह ॥ ९ ॥ तुम गुणसागर अगम अपार । ज्ञानजहाज न पहुंचे पार ॥ तट ही तटपर डोलै सोय। कारन सिद्धि तहां ही होय ॥ १० ॥ तुमरी कीर्तिबेल बहु बढी । यत्न बिना जगमंडप चढी ॥ अवर कुदेव सुयश निज चहैं। प्रभु अपने थल ही यश लहैं ॥ ११ । जगके जीव घूमे बिन ज्ञान। कीना मोहमहाविष पान ॥ तुम सेवा विषनाशक जरी। यह मुनिजन मिलि निश्चय करी ॥ १२ ॥ जन्मलता मिथ्या मत मूल । जन्ममरण लागे तहं फूल । सो कबहू बिन भक्ति कुठार । कटै नहीं दुखफलदातार ॥ १३ ॥ कल्पतरोवर चित्रा वेलि । कामपोगरा नवनिधि मेल ॥ चिंतामनि पारस

पापाण। पुण्यपदारथ और महान ॥ १४ ॥ ये सव एकजन्म संयोग। किंचित सुख दातार नियोग ॥ त्रिभुवननाथ तुम्हारी सेव। जन्म जन्म सुखदायक देव ॥ १५ ॥ तुम जगवांधव तुम जगतात। अशरणशरण विरद विख्यात ॥ तुम सव जीवनके रखवाल। तुम दाता तुम परम दयाल ॥१६॥ तुम पुनीत तुम पुरुष प्रमान। तुम समदर्शी तुम सव जान। जय मुनि यज्ञ पुरुष परमेश। तुम ब्रह्मा तुम विष्णु महेश ॥१७॥ तुम जगभर्त्ता तुम जग जान। स्वामि स्वयंभू तुम अमलान ॥ तुम विन तीन काल तिहुं लोय। नाहीं शरण जीवका होय ॥ १८ ॥ यातैं अव करुणानिधि नाथ। तुम सन्मुख हम जोड़ैं हाथ ॥ जवलों निकट होय निर्वाण। जगनिवास छूटै दुख दान ॥१९॥ तवलों तुम चरणांवुज वास। हम उर होय यही अरदास ॥ और न कछु वांछा भगवान। ह्वे दयालु दीजे वरदान ॥ २० ॥

दोहा–इहविधि इंद्रादिक अमर, कर वहु भक्ति विधान।
निज कोठे वैठे सकल, प्रभु सन्मुख सुख मान ॥२१॥
जीति कर्म रिपु जे भये, केवल लब्धि निवास।
सो श्रीपार्श्वप्रभू सदा, करो विघ्नघन नाश ॥

इति पार्श्वनाथस्तोत्र।

७७। अथ अहिछित पार्श्वनाथ स्तोत्र।

जोगीरासेकी चालमें।

वंदो श्रीपारशपदपंकज, पंच परम गुरु ध्याऊं। शारद-माय नमो मनवचनन, गुरु गौतम शिर नाऊं॥ एक समय श्रीपारस जिनवर वन तिष्ठ वैरागी। वाह्याभ्यंतर परिग्रह

त्यागे आतमसों लव लागी ॥ १ ॥ कल्पद्रुमसम प्रभुतन सोहे, करपल्लव तनसाखा । अविचल आतम ध्यान पगे, प्रभु इकचित मन थिर राखा ॥ माता–तात कमठचर पापी। तपसी तप करि मूवो । अज्ञानी अज्ञान तपस्याबल, करि सो सुर हूवो ॥ २ ॥ मारग जात विमान रह्यो थिर, कोप अधिक मन ठान्यो । देखत ध्यानारूढ जिनेश्वर, शत्रु आपनो मान्यो ॥ भीषणरूप भयानक दृग कर, अरुणवरन तन कांपे । मूसलधारासम जल छोडे, अधर दशनतल चांपे ॥३॥ अति अंधियार भयानक निशि अति, गर्जे घटा घन घोरे। चपला चपल चमकती चहुंदिशि धीरन धीरज छोरे ॥ शब्द भयंकर करत असुर गण, अग्निजाल मुख छोडे। पवन प्रचंड चलाय प्रलयवत, द्रुमगण तृणसम तोड़े ॥ ४ ॥ पवन प्रचंड मूसलजलधारा, निशि अतिही अँधियारी । दामिनिदमक विकार पिसाचन, वन कीनो भयकारी ॥ अविचल धीर गँभीर जिनेश्वर, थिर आसन वन ठाडे । पवन परीषहमें नहिं कांपे, सुरगिरिसम मन गाढे ॥ ५ ॥ प्रभुके पुण्यप्रताप पवनवश, फणपतिआसन कंप्यो । अति भयभीत विलोकि चहुं दिशि, चक्रित ह्वै मन जंप्यो ॥ जान्यो प्रभु उपसर्ग अवधि-बल पद्मावतिजुत धायो । फणको छत्र कियो प्रभुके शिर, सर्वारिष्ट नशायो ॥ ६ ॥ फणपतिकृत उपसर्गनिवारण, देखि असुर दुठ भाग्यो । लोकालोक विलोकन प्रभुके, तुरतहिं केवल जाग्यो ॥ समवसरणकी रचना कारण, सुरपति आज्ञा दीनी । मणिमुक्ताहीराकंचनमय धनपति रचना कीनी ॥७॥

त्रिकाल सुवानी। 'आसा' आस करें सो पूरण, श्रीपारस सुखदानी ॥ १४ ॥ सुर नर जिय तिरयंच घनेरे, जिनवंदन चित आनें। वैरभावपरिहार निरंतर, प्रीति परस्पर ठानें ॥ दशहूं दिशि निरमल अति दीखे, भयो है सोभ घनेरा। स्वच्छसरोवरजलकर पूरे, वृक्ष फरे चहुं फेरा ॥ १५ ॥ माली आदिक खेती चहुं दिशि, भई स्वमेव घनेरी। जीवनवध नहिं होय कदाचित, यह अतिसय प्रभुकेरी ॥ नख अरु केश बढ़े नहिं प्रभुके, नहिं नैन न टमकारे। दर्पणवत प्रभुको तन दीपे, आनन चार निहारे ॥ १६ ॥ इंद्र नरेंद्र धनेंद्र सबै मिलि, धर्मामृत अभिलाषी। गणधर पदशिरनाय सुरासुर, प्रभुकी थुति अति भाषी ॥ दीनदयाल कृपाल दयानिधि, त्रगवंत भवि चीन्हे। धर्मामृत वर्षाय जिनेश्वर, तोषित बहुविध कीन्हे ॥ १७ ॥ आरजखंडविहार जिनेश्वर, कीनो भवि हितकारी। धर्मचक्र आगोनि चले प्रभु, केवलमहिमा भारी ॥ पंद्रह पांति कमल पंद्रह जुग, सुन्दर हेम सँम्हारे। अंतरीछ डग महिन चलें प्रभु, चरणांबुजतल धारे ॥ १८ ॥ मिटि उपसर्ग भए प्रभु केवलि, भूमि पवित्र सुहाई। सो अहिक्षेत्र भयो सुर नर मिल, पूजकको सुखदाई ॥ नाम लेतें सब विघन विनाशे, संकट क्षणमें चूरे। वंदन करत बढ़े सुख संपति मुमिरन आसा पूरे ॥ १९ ॥ जो अहिक्षेत्र विधान पढ़े नित, अथवा गाय सुनावे। श्रीजिनभक्ति धरै मनमें दिढ़, मनवांछित फल पावे ॥ जुगल वेद वसु एक अंक गणि, बुधजन वत्सर जान्यो। माघ शुक्ल दशैं रवि वासर, 'आसाराम' बखान्यो ॥ २० ॥   समाप्तं।

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः ॥३०॥ मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च ॥ ३१ ॥ सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत् ॥ ३२ ॥ नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवंभूता नयाः ॥ ३३ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥ द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमं ॥ २ ॥ सम्यक्त्वचारित्रे ॥ ३ ॥ ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च ॥ ४ ॥ ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्धयश्चतुस्त्रित्रिपंचभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमासंयमाश्च ॥ ५ ॥ गतिकषायलिंगमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्येकैकैकैकषड्भेदाः ॥ ६ ॥ जीवभव्याभव्यत्वानि च ॥ ७ ॥ उपयोगो लक्षणं ॥ ८ ॥ स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ॥९॥ संसारिणो मुक्ताश्च ॥ १० ॥ समनस्कामनस्काः ॥ ११ ॥ संसारिणस्त्रसस्थावराः ॥ १२ ॥ पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः ॥ १३ ॥ द्वींद्रियादयस्त्रसाः ॥ १४ ॥ पंचेंद्रियाणि ॥ १५ ॥ द्विविधानि ॥ १६ ॥ निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येंद्रियं ॥१७॥ लब्ध्युपयोगौ भावेंद्रियं ॥ १८ ॥ स्पर्शनरसनाघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि ॥ १९ ॥ स्पर्शरसगंधवर्णशब्दास्तदर्थाः ॥२०॥ श्रुतमनिंद्रियस्य ॥ २१ ॥ वनस्पत्यन्तानामेकं ॥ २२ ॥ कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि ॥२३॥ संज्ञिनः समनस्काः ॥२४॥ विग्रहगतौ कर्मयोगः ॥२५॥ अनुश्रेणि गतिः ॥२६॥ अविग्रहा जीवस्य ॥ २७ ॥ विग्रहवती च संसारिणः प्राक्

जंबूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः ॥७॥ द्विर्द्वि
र्विष्कंभाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः ॥ ८ ॥ तन्मध्ये
मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कंभो जंबूद्वीपः ॥ ९ ॥
भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि ॥१०
तद्विभाजिनः पूर्वापरायताः हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरु
क्मिशिखरिणो वर्षधरपर्वताः ॥ ११ ॥ हेमार्जुनतपनीयवैडूर्य
रजतहेममयाः ॥१२॥ मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्य
विस्ताराः ॥ १३ ॥ पद्ममहापद्मतिगिंछकेशरिमहापुंडरीकपुंड
रीका ह्रदास्तेषामुपरि ॥ १४ ॥ प्रथमो योजनसहस्रायामस्त
दर्द्धविष्कंभो ह्रदः ॥१५॥ दशयोजनावगाहः ॥१६॥ तन्मध्ये
योजनं पुष्करं ॥ १७ ॥ तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि
च ॥ १८ ॥ तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः
पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः ॥ १९ ॥ गंगासिंधु
रोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकांतासीतासीतोदानारीनरकांतासु
वर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदा सरितस्तन्मध्यगाः ॥ २० ॥ द्वयो
र्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः ॥ २१ ॥ शेषास्त्वपरगाः ॥ २२ ॥ चतु
र्दशनदीसहस्रपरिवृता गंगासिंध्वादयो नद्यः ॥ २३ ॥ भरतः
षड्विंशतिपंचयोजनशतविस्तारः [illegible] षट् चैकोनविंशतिभागा
योजनस्य [illegible] तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहांत
[illegible] उत्तरा दक्षिणतुल्याः [illegible] भरतैरावतयोर्वृद्धि
ह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम् ॥ २७ ॥ ताभ्यामप
रा भूमयोऽवस्थिताः [illegible] एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो
हैमवतकहारिवर्षकदैवकुरवकाः [illegible] तथोत्तराः ॥ ३० ॥

भावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धींद्रियावधिविषयतोऽधिकाः ॥ २० ॥
गतिशरीरपरिग्रहाऽभिमानतो हीनाः ॥ २१ ॥ पीतपद्मशुक्ल-
लेश्या द्वित्रिशेषेषु ॥ २२ ॥ प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः ॥ २३ ॥
ब्रह्मलोकालया लौकांतिकाः ॥ २४ ॥ सारस्वतादित्यवह्न्य-
रुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च ॥ २५ ॥ विजयादि
द्विचरमाः ॥ २६ ॥ औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनय
॥ २७ ॥ स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिप
ल्योपमार्द्धहीनमिताः ॥ २८ ॥ सौधर्मैशानयोः सागरोपमे
ऽधिके ॥ २९ ॥ सानत्कुमारमाहेंद्रयोः सप्त ॥ ३० ॥ त्रिसप्त
नवैकादशत्रयोदशपंचदशभिरधिकानि तु ॥३१॥ आरणाच्यु
तादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ
च ॥ ३२ ॥ अपरा पल्योपममधिकं ॥ ३३ ॥ परतः परतः
पूर्वापूर्वानंतराः ॥ ३४ ॥ नारकाणां च द्वितीयादिषु ॥ ३५ ॥
दशवर्षसहस्राणि प्रथमायां ॥ ३६ ॥ भवनेषु च ॥ ३७ ॥
व्यंतराणां च ॥ ३८ ॥ परापल्योपममधिकं ॥ ३९ ॥ ज्योति-
ष्काणां च ॥ ४० ॥ तदष्टभागोऽपरा ॥ ४१ ॥ लौकांतिकाना-
मष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषां ॥ ४२ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ॥ १ ॥ द्रव्याणि ॥ २ ॥
जीवाश्च ॥ ३ ॥ नित्यावस्थितान्यरूपाणि ॥ ४ ॥ रूपिणः
पुद्गलाः ॥ ५ ॥ आ आकाशादेकद्रव्याणि ॥ ६ ॥ निष्क्रियाणि
च ॥ ७ ॥ असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानां ॥ ८ ॥
आकाशस्यानन्ताः ॥ ९ ॥ संख्येयासंख्येयाश्च पुद्गलानां
॥१०॥ नाणोः ॥ ११ ॥ लोकाकाशेऽवगाहः ॥ १२ ॥ धर्माधर्मयोः

करणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः ॥ ६ ॥ अधिकरणं जीवाजीवाः ॥ ७ ॥ आद्यं संरंभसमारंभारंभयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषैस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ॥ ८ ॥ निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परं ॥ ९ ॥ तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यांतरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावर्णयोः ॥१०॥ दुःखशोकतापाक्रंदनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्यसद्वेद्यस्य ॥११॥ भूतव्रत्यनुकंपादानसरागसंयमादियोगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ॥ १२ ॥ केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ॥ १३ ॥ कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य ॥ १४ ॥ बह्वारंभपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ॥ १५ ॥ माया तैर्यग्योनस्य ॥ १६ ॥ अल्पारंभपरिग्रहत्वं मानुषस्य ॥ १७ ॥ स्वभावमार्दवं च ॥ १८ ॥ निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषां ॥ १९ ॥ सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य ॥ २० ॥ सम्यक्त्वं च ॥ २१ ॥ योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ॥२२॥ तद्विपरीतं शुभस्य ॥ २३ ॥ दर्शनविशुद्धिर्विनयसंपन्नता शीलव्रतेष्वनतीचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्यकरणमर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ॥ २४ ॥ परात्मनिंदाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ॥ २५ ॥ तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ॥ २६ ॥ विघ्नकरणमंतरायस्य ॥ २७ ॥

[illegible]

हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतं ॥ १ ॥ देशसर्व

नानंगक्रीडाकामतीव्राभिनिवेशाः ॥ २८ ॥ क्षेत्रवास्तुहिरण्य-सुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः ॥ २९ ॥ ऊर्ध्वा-धस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यंतराधानानि ॥ ३० ॥ आनय-नप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः ॥ ३१ ॥ कंदर्पकौत्कु-च्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि ॥३२॥ योगदुःप्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि ॥ ३३ ॥ अप्रत्यवे-क्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादरस्मृत्यनुपस्था-नानि ॥ ३४ ॥ सचित्तसंबंधसंमिश्राभिषवदुःपक्वाहाराः ॥३५॥ सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ॥३६॥ जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबंधनिदानानि ॥ ३७ ॥ अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानं ॥ ३८ ॥ विधिद्रव्यदातृपात्र-विशेषात्तद्विशेषः ॥ ३९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बंधहेतवः ॥ १ ॥ सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बंधः ॥२॥ प्रकृतिस्थित्यनुभागप्रदेशास्तद्विधयः ॥ ३ ॥ आद्यो ज्ञानदर्श-नावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रांतरायाः ॥ ४ ॥ पंचनव-द्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपंचभेदा यथाक्रमं ॥ ५ ॥ मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानां ॥ ६ ॥ चक्षुरचक्षुरवधिकेव-लानां निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च ॥७॥ सदसद्वेद्ये ॥८॥ दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्या-स्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायक-षायौ हास्यरत्यरतिशोकभयजुगुप्सास्त्रीपुंनपुंसकवेदा अनंता-

परीषहाः ॥ ८ ॥ क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्री-
चर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्का-
रपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि ॥ ९ ॥ सूक्ष्मसांपरायछद्मस्थवीत-
रागयोश्चतुर्दश ॥ १० ॥ एकादश जिने ॥ ११ ॥ बादरसांप-
राये सर्वे ॥१२॥ ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ॥१३॥ दर्शनमोहांतराययो-
रदर्शनालाभौ ॥१४॥ चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोश-
याचनासत्कारपुरस्काराः ॥१५॥ वेदनीये शेषाः ॥ १६ ॥ एका-
दयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः ॥ १७ ॥ सामायि-
कच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसांपराययथाख्यातमि-
ति चारित्रं ॥ १८ ॥ अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरि-
त्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित्त-
विनयवैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरं ॥ २० ॥ नवचतु-
र्दशपंचद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात् ॥२१॥ आलोचनप्रतिक्रम-
णतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपश्छेदपरिहारोपस्थापनाः ॥ २२ ॥
ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ॥ २३ ॥ आचार्योपाध्यायतपस्विशै-
क्ष्यग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानां ॥२४॥ वाचनापृच्छनानु-
प्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ॥२५॥ बाह्याभ्यंतरोपध्योः ॥२६॥ उत्तम-
संहननस्यैकाग्रचिंतानिरोधो ध्यानमांतर्मुहूर्तात् ॥२७॥ आर्त-
रौद्रधर्म्यशुक्लानि ॥ २८ ॥ परे मोक्षहेतू ॥ २९ ॥ आर्तममनोज्ञ-
स्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः ॥ ३० ॥
विपरीतं मनोज्ञस्य ॥ ३१ ॥ वेदनायाश्च ॥ ३२ ॥ निदानं च
॥ ३३ ॥ तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानां ॥ ३४ ॥ हिंसानृत-
स्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः ॥३५॥ आज्ञा-

पायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यं ॥ ३६ ॥ शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः ॥३७॥ परे केवलिनः ॥ ३८ ॥ पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतिक्रियानिवर्त्तीनि ॥३९॥ त्र्येकयोगकाययोगायोगानां ॥ ४० ॥ एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे ॥४१॥ अवीचारं द्वितीयं ॥ ४२ ॥ वितर्कः श्रुतं ॥ ४३ ॥ वीचारोऽर्थव्यंजनयोगसंक्रांतिः ॥ ४४ ॥ सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानंतवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशांतमोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ॥ ४५ ॥ पुलाकवकुशकुशीलनिर्ग्रंथस्नातका निर्ग्रन्थाः ॥ ४६ ॥ संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः ॥ ४७ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणांतरायक्षयाच्च केवलं ॥ १ ॥ बंधहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः ॥ २ ॥ औपशमिकादिभव्यत्वानां च ॥ ३ ॥ अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः ॥ ४ ॥ तदनंतरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकांतात् ॥ ५ ॥ पूर्वप्रयोगादसंगत्वाद्बंधच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च ॥ ६ ॥ आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरंडबीजवदग्निशिखावच्च ॥ ७ ॥ धर्मास्तिकायाभावात् ॥८॥ क्षेत्रकालगतिलिंगतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहनांतरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ॥ ९ ॥

इति तत्त्वार्थाधिगमे मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

अक्षरमात्रपदस्वरहीनं व्यंजनसंधिविवर्जितरेफं ।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे ॥१॥

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुंगवैः ॥ २ ॥
तत्त्वार्थसूत्रकर्तारं गृध्रपिच्छोपलक्षितं।
वंदे गणीन्द्रसंयातमुमास्वामिमुनीश्वरं ॥ ३ ॥

इति तत्त्वार्थसूत्रापरनाम तत्त्वार्थाधिगममोक्षशास्त्रं समाप्तं ॥ १२ ॥

श्रीअमितगतिसूरिविरचिता

७९ । भावनाद्वात्रिंशतिका ।

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम् ।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव ! ॥१॥
शरीरतः कर्तुमनंतशक्तिं विभिन्नमात्मानमपास्तदोषम् ।
जिनेंद्र ! कोषादिव खड्गयष्टिं तव प्रसादेन ममास्तु शक्तिः ॥२॥
दुःखे सुखे वैरिणि बन्धुवर्गे योगे वियोगे भुवने वने वा ।
निराकृताशेषममत्वबुद्धेः समं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ ॥३॥
मुनीश लीनाविव कीलिताविव स्थिरौ निपाताविव बिम्बिताविव
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा तमोधुनानौ हृदि दीपकाविव
एकेंद्रियाद्या यदि देव ! देहिनः प्रमादतः संचरता इतस्ततः
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तद
विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया ।
चारित्रशुद्धेर्यदकारि लोपनं तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो ॥६
विनिंदनालोचनगर्हणैरहं, मनोवचःकायकषायनिर्मितं ।
निहन्मि पापं भवदुःखकारणं भिषग्विषं मंत्रगुणैरिवाखिलं ॥
अतिक्रमं यद्विमतेर्व्यतिक्रमं जिनातिचारं सुचरित्रकर्मणः ।
व्यधामनाचारमपि प्रमादतः प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥८॥

क्षतिं मनःशुद्धिविधेरतिक्रमं व्यतिक्रमं शीलवृतेर्विलंघनम् ।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वदन्त्यनाचारमिहातिसक्ततां ॥९॥
यदर्थमात्रापदवाक्यहीनं मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तं ।
तन्मे क्षमित्वा विदधातु देवी सरस्वती केवलबोधलब्धिम् ॥
बोधिः समाधिः परिणामशुद्धिः स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्यसिद्धिः
चिंतामणिं चिंतितवस्तुदाने त्वां वंद्यमानस्य ममास्तु देवि ॥११॥
यः स्मर्यते सर्वमुनींद्रवृंदैः यः स्तूयते सर्वनरामरेंद्रैः ।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१२॥
यो दर्शनज्ञानसुखस्वभावः समस्तसंसारविकारबाह्यः ।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१३॥
निषूदते यो भवदुःखजालं, निरीक्षते यो जगदंतरालं ।
योंऽतर्गतो योगिनिरीक्षणीयः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥
विमुक्तिमार्गप्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्युव्यसनाद्व्यतीतः ।
त्रिलोकलोकी विकलोऽकलंकः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥
क्रोडीकृताशेषशरीरिवर्गाः, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः ।
निरिन्द्रियो ज्ञानमयोऽनपायः स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१६॥
यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तिः सिद्धो विबुद्धो धुतकर्मबन्धः ।
ध्यातो धुनीते सकलं विकारं, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥१७॥
न स्पृश्यते कर्मकलंकदोषैः, यो ध्वान्तसंघैरिव तिग्मरश्मिः ।
निरंजनं नित्यमनेकमेकं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥ १८ ॥
विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासी ।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥१९॥
विलोक्यमाने सति यत्र विश्वं, विलोक्यते स्पष्टमिदं विविक्तम् ।

शुद्धं शिवं शांतमनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२०॥
येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा, विषादनिद्राभयशोकचिन्ता।
क्षताऽनलेनेव तरुप्रपंचस्तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये ॥२१॥
न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी विधानतो नो फलको विनिर्मित
यतो निरस्ताक्षकषायविद्विषः सुधीभिरात्मैव सुनिर्मलो मतः २२
न संस्तरो भद्र ! समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च संघमेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतो भवानिशं, विमुच्य सर्वामपि बाह्यवासनां।
न सन्ति बाह्या मम केचनार्था भवामि तेषां न कदाचनाहम्।
इत्थं विनिश्चित्य विमुच्य बाह्यं स्वस्थः सदा त्वं भव भद्र मुक्त्यै
आत्मानमात्मन्यवलोक्यमानस्त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलु यत्र तत्र स्थितोपि साधुर्लभते समाधिं ।२५।
एकः सदा शाश्वतिको ममात्मा विनिर्मलः साधिगमस्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता न शाश्वताः कर्मभवाः स्वकीयाः २६
यस्यास्ति नैक्यं वपुषापि सार्द्धं तस्यास्ति किं पुत्रकलत्रमित्रैः।
पृथक्कृते चर्मणि रोमकूपाः कुतो हि तिष्ठंति शरीरमध्ये ॥२७॥
संयोगतो दुःखमनेकभेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौ परिवर्जनीयो, यियासुना निर्वृतिमात्मनीनाम् २८
सर्वं निराकृत्य विकल्पजालं संसारकान्तारनिपातहेतुम्।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्यमाणो निलीयसे त्वं परमात्मतत्त्वे ॥२९॥
स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते, स्फुटं स्वयंकृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥३०॥
निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो, न कोपि कस्यापि ददाति किंचन
विचारयन्नेवमनन्यमानसः परो ददातीति विमुंच शेमुषीम् ॥३१॥

यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः सर्वविविक्तो भृशमनवद्यः।
शश्वदधीतो मनसि, लभन्ते मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥३२॥

इति द्वात्रिंशता वृत्तैः, परमात्मानमीक्षते।
योऽनन्यगतचेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम्॥ ३२॥

---

५ पंचमाध्याय।

भाषा पर्वपूजासंग्रह।

८०। देवपूजा।

दोहा।

प्रभु तुम राजा जगतके, हमें देय दुख मोह।
तुम पद पूजा करत हूं, हमपै करुना होहि॥ १॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्रभगवन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्रभगवन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहित श्रीजिनेन्द्रभगवन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव! वषट्।

बहु तृषा सतायो, अति दुख पायो, तुमपै आयो, जल लायो।
उत्तम गंगाजल, शुचि अति शीतल, प्राशुक निर्मल, गुन गायो॥
प्रभु अंतरजामी त्रिभुवननामी, सबके स्वामी, दोष हरो।
यह अरज सुनीजे, ढील न कीजे, न्याय करीजे, दया धरो॥१॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्रभगवद्भ्यः जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामि स्वाहा।१।

अघ तपन निरंतर, अगनिपटंतर, मो उर अंतर खेद कर्‌यो।
लै बावन चंदन, दाहनिकंदन, तुमपदवंदन हरष धर्‌यो।प्रभु०।

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्राय चंदनं।

औगुन दुखदाता, कह्यो न जाता, मोहि असाता, बहुत करे।
तंदुल गुनमंडित, अमल अखंडित, पूजत पंडित, प्रीति धरे। प्र०

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो अक्षतं ॥

सुरनरपशुको दल, काम महाबल, बात कहत छल मोहि लिया।
ताके शर लाऊं, फूल चढाऊं, भक्ति बढाऊं, खोल हिया। प्रभु०।

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यः पुष्पं ॥

सब दोषनमाहीं, जासम नाहीं, भूख सदा ही, मो लागे।
मद घेवर बावर, लाडू बहु धर, थार कनक भर तुम आगे। प्रभु०

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो नैवेद्यं० ॥

अज्ञान महातम, छाय रह्यो मम, ज्ञान ढक्यो हम दुख पावैं।
तम मेटनहारा, तेज अपारा, दीप सँवारा, जस गावैं। प्रभु०।

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो दीपं ॥

इह कर्म महावन, भूल रह्यो जन, शिवमारग नहिं पावत है।
कृष्णागरुधूपं, अमलअनूपं, सिद्धस्वरूपं, ध्यावत है ॥ प्रभु० ॥

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं० ॥

सबतें जोरावर, अंतराय अरि, सुफल विघ्न करि डारत है।
फलपुंज विविध भर, नयनमनोहर, श्रीजिनवरपद धारत है। प्र०

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं० ।

आठों दुखदानी, आठनिशानी, तुम ढिंग आनि निवारन हो।
दीननिस्तारन, अधमउधारन, 'द्यानत' तारन, कारन हो। प्र०

ओं ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्र[illegible]
[illegible] ॥

जयमाला।

गुण अनन्त को कहि सकै, छियालीस जिनराय।
प्रगट सुगुन गिनती कहूं, तुम ही होहु सहाय ॥ १ ॥

चौपाई (१६ मात्रा)

एक ज्ञान केवल जिनस्वामी। दो आगम अध्यातम नामी ॥
तीन काल विधि परगट जानी। चार अनंतचतुष्टय ज्ञानी ॥२॥
पंच परावर्तन परकासी। छहों दरवगुनपरजयभासी ॥
सातभंगवानी परकाशक। आठों कर्म महारिपु नाशक ॥३॥
नव तत्त्वनके भाखनहारे। दश लक्षनसौं भविजन तारे ॥
ग्यारह प्रतिमाके उपदेशी। बारह सभा सुखी अकलेशी ॥४॥
तेरहविधि चारितके दाता। चौदह मारगनाके ज्ञाता ॥
पंद्रह भेद प्रमाद निवारी। सोलह भावन फल अविकारी ॥५॥
तारे सत्रह अंक भरत भुव। ठारै थान दान दाता तुव ॥
भाव उनीस जु कहे प्रथम गुन। वीस अंक गणधरजीकी धुन ।६।
इकइस सर्व घातविधि जानै। वाइस वंध नवम गुणथानै ॥
तेइस निधि अरु रतन नरेश्वर। सो पूजें चौवीस जिनेश्वर ।७।
नाश पचीस कषाय करी हैं। देशघाति छब्बीस हरी हैं ॥
तत्त्व दरव सत्ताइस देखे। मति विज्ञान अठाइस पेखे ॥८॥
उनतिस अंक मनुष सब जाने। तीस कुलाचल सर्व वखाने।
इकतिस पटल सुधर्म निहारे। वत्तिस दोष समायिक टारे ॥९॥
तेतिस सागर सुखकर आये। चौंतिस भेद अलब्धि वताये ॥
पैंतिस अच्छर जप सुखदाई। छत्तिस कारन रीति मिटाई ।१०।
सैंतिस मग कहि ग्यारह गुनमें। अठतिस पद लहि नरक अपुनमें
उनतालीस उदीरन तेरम। चालिस भवन इंद्र पूजें नम ॥११॥
इकतालीस भेद आराधन। उदै तियालीस तीर्थंकर भन ॥
तेतालीस वंध ज्ञाता नहिं। द्वार चवालिस नर चौथेमहिं ॥१२॥

पैंतालीस पल्यके अच्छर। छियालिस विन दोष मुनीश्वर॥
नरक उदै न छियालिस मुनिधुन प्रकृति छियालिस नाश दशमगुन
छियालीस घन राजु सात भुव। अंक छियालिस सरसों कहि कुव
भेद छियालिस अंतर तपवर। छियालिस पूरन गुन जिनवर १४

अडिल्ल–मिथ्यातपन निवारन चंद समान हो
मोहतिमिर वारनको कारन भानु हो॥
कामकपाय मिटावन मेघ मुनीश हो
'द्यानत' सम्यकरतनत्रय गुनईश हो॥ १५॥

ॐ ह्रीं अष्टादशदोषरहितषट्चत्वारिंशद्गुणसहितश्रीजिनेन्द्रेभ्यः पूर्णार्घं॥

८१। सरस्वतीपूजा।

दोहा–जनम जरा मृतु छय करै, हरै कुनय जडरीति।
भवसागरसों ले तिरै पूजै जिनवचप्रीति॥ १॥

ओं ह्रीं श्री जिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतिवाग्वादिनि! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

छीरोदधिगंगा, विमल तरंगा, सलिल अभंगा, सुखसंगा।
भरि कंचन झारी, धार निकारी, तृषानिवारी, हितचंगा॥
तीर्थंकरकी धुनि, गणधरने सुनि, अंग रचे चुनि, ज्ञानमई॥
सो जिनवरवानी, शिवसुखदानी, त्रिभुवन मानी, पूज्य भई

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

करपूर मँगाया, चंदन आया, केशर लाया, रंग भरी।
शारदपद वंदों मन अभिनंदों, पापनिकंदों, दाह हरी॥ती०॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

सुखदामकमोदं, धारकमोदं, अति अनुमोदं चंदसमं।

वहुभक्ति वढाई, कीरति गाई, होहु सहाई, मात ममं ॥ ती०॥
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

वहुफूलसुवासं, विमलप्रकाशं, आनँदरासं, लाय धरे।
मम काम मिटायो, शील वढायौ, सुखउपजायौ दोष हरे ॥ती०॥
ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

पकवान वनाया, वहुघृत लाया, सव विध भाया, मिष्ट महा।
पूजूं थुति गाऊं, प्रीति वढाऊं, क्षुधा नशाऊं, हर्ष लहा ॥ ती०॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

करि दीपक जोतं, तमछय होतं, ज्योति उदोतं, तुमहिं चढे।
तुम हो परकाशक, भरमविनाशक, हम घट भासक ज्ञान वढ़े ती०
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

शुभगंध दशोंकर, पावकमें धर, धूप मनोहर खेवत हैं।
सव पाप जलावें, पुण्य कमावें, दास कहावें सेवत हैं ॥तीर्थं०॥७।
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

वादाम छुहारी लौंग सुपारी, श्रीफल भारी ल्यावत हैं।
मनवांछित दाता मेट असाता, तुम गुन माता, ध्यावत हैं ॥ती०
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

नयननसुखकारी, मृदुगुनधारी, उज्वलभारी, मोल धरै।
शुभगंधसम्हारा, वसननिहारा, तुमतर धारा ज्ञान करै ॥ ती०॥
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

जलचंदन अच्छत, फूल चरू चत, दीप धूप अति फल लावै।
पूजाको ठानत, जो तुम जानत, सो नर द्यानत, सुख पावै।ती०।
ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

अथ जयमाला।

सोरठा—ओंकार धुनिसार, द्वादशांगवाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै ॥

पहलो आचारांग वखानो। पद अष्टादश सहस प्रमानो। दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं। पद छत्तीस सहस गुरु भाषं ॥ १॥
तीजा ठाना अंग सुजानं। सहस बियालिस पदसरधानं॥ चौथो समवायांग निहारं। चौंसठ सहस लाख इकधारं ॥२॥
पंचम व्याख्याप्रज्ञपति दरसं। दोय लाख अट्ठाइस सहसं। छट्ठा ज्ञातृकथा विसतारं। पांचलाख छप्पन हजारं॥ ३॥
सप्तम उपासकाध्ययनंगं। सत्तर सहस ग्यारलख भंगं। अष्टम अंतकृतं दस ईसं। सहस अठाइस लाख तेईसं॥४॥
नवम अनुत्तरदश सुविशालं। लाख बानवे सहस चवालं। दशम प्रश्नव्याकरण विचारं। लाख तिरानवे सोल हजारं॥५॥
ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं। एक कोड़ चौरासी लाखं। चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं। दो हजार सब पद गुरुशाखं॥६॥
द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं। इकसौ आठ कोड़ि पन वेदं॥ अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं। सहित पंचपद मिथ्या हन हैं॥७
इक सौ बारह कोड़ि वखानो। लाख तिरासी ऊपर जानो। ठावन सहस पंच अधिकाने। द्वादश अंग सर्व पद माने॥८॥
कोड़ि इकावन आठ हि लाखं। सहस चुरासी छहसौ भाखं॥ साढ़े इकीस सिलोक बताये। एक एक पदके ये गाये॥१०॥

घत्ता।

जा बानीके ज्ञानमें, सूझे लोक अलोक।
'द्यानत' जग जयवंत हो, सदा देत हों धोक॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै महार्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

—:○:—

दोहा—चहुं गति दुखसागरविषे, तारनतरनजिहाज।
रतनत्रयनिधि नगन तन, धन्य महा मुनिराज ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह ! अत्रावतरावतर। संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

शुचि नीर निर्मल छीरदधिसम, सुगुरु चरन चढ़ाइया।
तिहुं धार तिहुं गदटार स्वामी, अति उछाह बढ़ाइया॥
भवभोगतनवैराग्य धार, निहार शिवतप तपत हैं।
तिहुं जगतनाथ अधार साधु सु, पूज नित गुन जपत हैं ॥१॥
ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो जलं नि० ॥ १ ॥

करपूर चंदन सलिलसों घसि, सुगुरुपद पूजा करो।
सब पापताप मिटाय स्वामी. धरम शीतल विस्तरो॥ भव० ॥२॥
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं नि० ॥ २ ॥

तंदुल कमोद सुवास उज्वल, सुगुरुपगतर धरत हैं।
...कार औगुनहार स्वामी, वंदना हम करत हैं॥ भवभो०।३।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि० ॥ ३ ॥

...फूलरासप्रकाश परिमल, सुगुरुपाँयनि परत हों।
...र मारउपाधि स्वामी, शील दृढ़ उर धरत हों ॥भव०।४।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं ॥ ४ ॥

...त मिष्ट सलोन सुंदर, सुगुरु पायँनि प्रीतिसों।
...धारोग विनाश स्वामी, सुथिर कीजे रीतिसों ॥भव०।५।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

...दीप सजोत जगमग, सुगुरुपद पूजों सदा।
...ज्ञानउजास स्वामी. मोहि मोह न हो कदा ॥ भव०।६।

पहलो आचारांग बखानो । पद अष्टादश सहस प्रमानो । दूजो
सूत्रकृतं अभिलाषं । पद छत्तीस सहस गुरु भाषं ॥ १ ॥
तीजा ठाना अंग सुजानं । सहस बियालिस पदसरधानं ॥
चौथो समवायांग निहारं । चौसठ सहस लाख इकधारं ॥२॥
पंचम व्याख्याप्रज्ञपति दरसं । दोय लाख अट्ठाइस सहसं ।
छट्ठा ज्ञातृकथा विसतारं । पांचलाख छप्पन हजारं ॥ ३ ॥
सप्तम उपासकाध्ययनंगं । सत्तर सहस ग्यारलख भंगं ।
अष्टम अंतकृतं दस ईसं । सहस अठाइस लाख तेईसं ॥४॥
नवम अनुत्तरदश सुविशालं । लाख बानवै सहस चवालं ।
दशम प्रश्नव्याकरण विचारं । लाख तिरानवै सोल हजारं ॥५॥
ग्यारम सूत्रविपाक सु भाखं । एक कोड़ चौरासी लाखं ।
चार कोड़ि अरु पंद्रह लाखं । दो हजार सब पद गुरुशाखं ॥६॥
द्वादश दृष्टिवाद पनभेदं । इकसौ आठ कोड़ि पन वेदं ॥
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं । सहित पंचपद मिथ्या हन हैं ॥७
इक सौ बारह कोड़ि बखानो । लाख तिरासी ऊपर जानो ।
ठावन सहस पंच अधिकाने । द्वादश अंग सर्व पद माने ॥८॥
कोड़ि इकावन आठ हि लाखं । सहस चुरासी छहसौ भाखं ॥
साढ़े इकीस सिलोक बताये । एक एक पदके ये गाये ॥१०॥

घत्ता ।

जा बानीके ज्ञानमें, सूझे लोक अलोक ।
'द्यानत' जग जयवंत हो, सदा देत हों धोक ॥

ओं ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

—:○:—

८२। गुरुपूजा।

दोहा—चहुं गति दुखसागरविषै, तारनतरनजिहाज।
रतनत्रयनिधि नगन तन, धन्य महा मुनिराज ॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह! अत्रावतरावतर। संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

शुचि नीर निर्मल छीरदधिसम, सुगुरु चरन चढ़ाइया।
तिहुं धार तिहुं गदटार स्वामी, अति उछाह बढ़ाइया॥
विभोगतनवैराग्य धार, निहार शिवतप तपत हैं।
तिहुं जगतनाथ अधार साधु सु, पूज नित गुन जपत हैं॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो जलं नि० ॥ १ ॥

करपूर चंदन सलिलसौं घसि, सुगुरुपद पूजा करौं।
सब पापताप मिटाय स्वामी, धरम शीतल विस्तरौं॥ भव० ॥२॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं नि० ॥ २ ॥

तंदुल कमोद सुवास उज्वल, सुगुरुपगतर धरत हैं।
गुनकार औगुनहार स्वामी, वंदना हम करत हैं॥ भवभो०॥३॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि० ॥ ३ ॥

शुभफूलरासप्रकाश परिमल, सुगुरुपाँयनि परत हौं।
निरवार मारउपाधि स्वामी, शील दृढ़ उर धरत हौं॥भव०॥४॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं ॥ ४ ॥

पकवान मिष्ट सलौन सुंदर, सुगुरु पाँयनि प्रीतिसौं।
कर छुधारोग विनाश स्वामी, सुथिर कीजे रीतिसौं॥भव०॥५॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं ॥ ५ ॥

दीपकउदोत सजोत जगमग, सुगुरुपद पूजौं सदा।
तमनाश ज्ञानउजास स्वामी, मोहि मोह न हो कदा॥ भव०॥६॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं० ॥ ६ ॥

बहु अगर आदि सुगंध खेऊं, सुगुण पद पद्महिं खरे।
दुखपुंजकाठ जलाय स्वामी; गुण अछय चितमें घरे ॥भव०॥

ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं नि० ॥ ७ ॥

भर थार पूग बदाम बहुविधि, सुगुरुक्रम आगें धरों।
मंगल महाफल करो स्वामी, जोर कर विनती करों ॥भव०॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० ॥ ८ ॥

जल गंध अक्षत फूल नेवज, दीप धूप फलावली।
द्यानत सुगुरुपद देहु स्वामी, हमहिं तार उतावली ॥ भव०॥

ओं ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुगुरुभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि० ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

दोहा—कनककामिनी विषयवश, दीसै सबसंसार।
त्यागी वैरागी महा, साधु सुगुन भंडार ॥ १ ॥
तीन घाटि नवकोड सब, वंदौ सीस नवाय।
गुन तिन अट्ठाईस लौं, कहूं आरती गाय ॥ २ ॥

वेसरी छंद—एक दया पालें मुनिराजा, रागदोष द्वै हरन परं। तीनों लोक प्रगट सब देखैं, चारों आराधन निकरं ॥ पंच महाव्रत दुद्धर धारैं, छहों दरब जानें सुहितं। सातभंगवानी मन लावैं, पावैं आठ रिद्ध उचितं ॥ ३ ॥ नवों पदारथ विधिसों भाखैं, बंध दशों चूरन करनं। ग्यारह शंकर जानै मानै, उत्तम बारह व्रत धरनं ॥ तेरह भेद काठिया चूरे, चौदह गुनथानक लखियं। महाप्रमाद पंचदश नाशै, सोलकषाय सबै नशियं ॥ ४ ॥ बंधादिक सत्रह सब चूरे, ठारह जन्म न मरन मुनं। एक समय उनईस परीषह,

वीत प्ररूपनिमें निपुणं ॥ भाव उदीक इकीसों जानैं, बाईस अभक्षन त्याग करं। अहिमिंदर तेईसों वेदे, इन्द्र सुरग चौबीस वरं ॥ ५ ॥ पच्चीसों भावन नित भावैं, छब्बिस अंगउपंग पढे। सत्ताईसों विषय विनाशें अट्ठाईसों गुण सु पढे। शीत समय सर चौहटवासी, ग्रीषमगिरिशिर जोग धरें। वर्षा वृक्ष-तरें थिर ठाढे, आठ करम हनि सिद्ध वरें ॥ ६ ॥

दोहा—कहीं कहांलों भेद मैं, बुध थोरी गुन भूर।
हेमराज सेवक हृदय, भक्ति करो भरपूर ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं [illegible] अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

८२। बीसविहरमानतीर्थंकर पूजा।

दोहा।

ज्ञायक यश जय सुमति सुग, सुख द्युतिरूप अपार।
घायक विधि घायकनिके, लायक जग उद्धार ॥ १ ॥
सीमंधर आदिक सकल, विपद बाहुमित लैन।
आह्वानन त्रिविधा करूं, इत तिष्ठहु सुख दैन ॥ २ ॥

ओं ह्रीं [illegible] अत्र अवतरत अवतरत। संवौषट्।

ओं ह्रीं [illegible] अत्र तिष्ठत। तिष्ठत। ठः ठः।

ओं ह्रीं [illegible] अत्र मम सन्निहिताः भवत भवत वषट्।

अष्टक। [illegible]

शीतल मल्लि अमल तृट्हारक, लेयसुधासम भृंगभरं।
जिनपति चरन अग्र त्रय धारा, धरूं तापत्रय नाशकरं ॥
जय कमलानन सुंदरशासन, भासन नमद्रय बोधवरं।

श्रीधर श्री सीमंधरआदिक यजूं वीस जिन श्रेयकरं ॥ १ ॥
ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थवर्तमानविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो जलं० ॥ १ ॥

मलयपटीर घसित वर कुंकुम, शीतलगंध सुरंग भर्यो ।
सारसवरन चरन तव धारत, अकुलदाह अपार हर्यो ॥जय०
ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थितवर्तमानविंशतिजिनेंद्रेभ्यः चंदनं० ॥ २ ॥

जीरक श्याम सुगंधित तंदुल, श्वेतवरन वर अनियारे ।
लहिअक्षत अक्षयपद पावन, धरूं पुंज दृग मनहारे ॥ जय०॥
ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो अक्षतान् निर्वपा० ॥ ३ ॥

केतकि कंज गुलाब जुही वर, सुमन सुवासित मनहारी ।
धारत चरन लहैं समतासर, नसैं मदनशर दुखकारी ॥जय०॥
ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थवर्तमानविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो पुष्पं० ॥ ४ ॥

विंजन विविध छहोंरस पूरित, सद्य सु सुंदर बलकारी ।
श्रीपतिचरनचढाऊं चरुवर, निजबलदायकक्षुतहारी ॥जय०
ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थविंशतिविद्यमानजिनेंद्रेभ्यो नैवेद्यं० ॥ ५ ॥

प्रजलित ज्योति कपूर मनोहर, अथवा पूरित स्नेहवरं ।
करत आरती हरि भव आरति, निजगुणज्योतिप्रकाशकरं ॥
ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थविद्यमानविंशतिजिनेंद्रेभ्यो दीपं नि० ॥ ६ ॥

चूरित अगर पटीरादिकवर, गंध हुताशनसंग धरूं ।
खेऊं धूपजगेशचरनढिंग, चाहतहूं विधि नाश करूं ॥ जय०
ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थविंशतिविद्यमानतीर्थंकरेभ्यो धूपं नि० ॥ ७ ॥

फल दाडिम एला पिकवल्लभ[1], खारिक आदिक मिष्ट भले ।
लेकर चरन चढावत जिनके, पावत हैं फलमोक्षरले ॥ जय०
ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिकविदेहक्षेत्रस्थवर्तमानविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो फलं नि० ॥ ८ ॥

जल चंदन अक्षत मनसिजशर, चरु दीपक वर धूप फलं ।

---

१ कपित्थद्रुम भी पाठ है । जिसका अर्थ केला और पिकवल्लभका अर्थ आम होता है ।

भवगदनाशन श्रीपदके पद, वारतहूं करि अर्घ भलं ॥जय०॥

ओं ह्रीं श्रीसीमंधरादिविदेहक्षेत्रस्थविंशतिविद्यमानजिनेन्द्रेभ्यो अर्घ्यं निर्व० ॥

अथ जयमाला ।

दोहा—द्वीप अर्द्ध द्वय मेरु पन, मेरु मेरु प्रति च्यार ।
विहरत विभव अनंत युत, अवनि विदेहमझार ॥१॥

पद्धरी छंद (१६ मात्रा)

सीमंधर सुखसीम सुहाये, युगमंधर युगवृष प्रगटाये ।
बाहु बाहुबलमोहविदार्‌यो, जिन सुबाहु मनमथ मद मार्‌यो ॥
संजातक निज जाति पिछानी, स्वयंप्रभू प्रभुता निज ठानी ।
ऋषभानन ऋषिधर्म प्रकाशन, वीर्यअनंत कर्मरिपु नाशन ॥
सूरप्रभू निजभा परिपूरन, प्रभु विशाल त्रिकशल्य विचूरन ।
देववज्रधरभ्रमगिरिभंजन, चंद्रानन जगजनमनरंजन ॥४॥
चंद्रबाहु भवताप निवारी, ईश भुजंगम-धुनि-मनि धारी ।
ईश्वर शिवगवरीदुखभंजन, नेमिप्रभूवृषनेमि निरंजन ॥५॥
वीरसेन विधि-अरि-जय वीरं, महाभद्र नाशक भवपीरं ।
देव देवयशको यश गावैं, अजितवीर शिवरमनि सुहावैं ॥६॥
ये अनादि विधिबंधनमाहीं, लब्धियोग निजनिधि लखपाई ।
सम्यक बलकर अरि चकचूरन, क्रमतें भये परम दुति पूरन ॥
अंतरीक आननपर सोहैं, परम विभूतिप्रकाशक जो हैं ।
चौंसठ चमर छत्रत्रय राजै, कोटि दिवाकर दुति लखि लाजै ॥
जय दुंदुभि धुनि होत सुहानी, दिव्यध्वनि जगजनदुखहानी ।
नर अशोक जनशोक नशावै, भामंडल भवभान दिखावै ॥९॥
हर्षित सुमन सुमन बरसावैं, सुमन अंगना सुगुन सु गावैं ।
नवरतनपूरन चतुरंग भीनी, सेत भक्तिवश नाम नवीनी ॥१०॥

वजततार तनननननन नन नन, घुगरू धमक झुनननन झुननन
धी धी धृकट धृकट द्रम द्रम द्रम, धुनतमुरजपुरुतालतरलसम॥
तायेई येई येई चरन चलावें, कटिकर मोरि भाँव दरसावें।
मानथंभ मानीमद खंडन, जिन-प्रतिमा-युत पापविहंडन॥१२॥
शालचतुक गोपुरकर सोहे, सजलखातिका जनमन मोहे।
द्विजगन कोक मयूर मरालं, शुक-कलरव-रव होत रसालं॥
पूरित सुमन सुमनकी बारी, वन-बंगला गिरवर छविधारी।
तूप ध्वजा गन पँक्ति विराजे, तोरन नवनिधि द्वार सु छाजे॥
इत्यादिक रचना बहुतेरी, द्वादश सभा लसत चहुं फेरी।
गनधर कहत पार नहिं पावें, 'थान' निहारतही बनि आवे॥
श्रीप्रभुके इच्छा न लगारं, भविजन भाग्यउदय सु विहारं।
यह रचना में प्रगट लखाऊं, याहित हरषि हरषि गुन गाऊं॥

छंद घत्ता।

यह जिनगुनसारं करन उचारं, हरत विकारं अघभारं।
जय यशदातारं बुधिविस्तारं, करत अपारं सुखसारं॥ १७॥

ओं ह्रीं विदेहक्षेत्रस्थवर्तमानविंशतितीर्थंकरेभ्यः अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अडिल्ल छंद।

जो भविजन जिन बीस यजें शुभ भावसूं।
कहैं सुगुनगनगान भक्ति धरि चावसूं॥
लहैं सकल सम्पति अरु सम्पति निम्नेंग।
सुर नर पद धर जाय मुक्ति रमनी वरें॥ १॥

इत्याशीर्वादः । समाप्त

—:○:—

खुरमा जु गिंदोड़ा; बरफी पेड़ा, घेवर मोदक, भरि थारी।
विधिपूर्वक कीने, घृतपयभीने, खँडमें लीने, सुखकारी ॥वसु०॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंधिअष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृ-
त्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

मिथ्यात महातम, छाय रह्यो हम, निजभव परणति, नहिं सूझे।
इहकारण पाकें, दीप सजाकें, थाल धराकें, हम पूजें ॥ वसु० ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंधिअष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृ-
त्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

दशगंध कुटाकें, धूप बनाकें, निजकर लाकें, धरि ज्वाला।
तसु धूम उड़ाई, दशदिश छाई, बहु महकाई, अति आला ॥वसु०॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंधिअष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृ-
त्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

बादाम छुहारे, श्रीफल भारे, पिस्ता प्यारे, द्राख वरं।
इन आदि अनोखे, लखि निरदोखे, थाल संजोखे, भेट धरं ॥वसु०॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंधिअष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृ-
त्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल चंदन तंदुल, कुसुम रु नेवज, दीप धूप फल, थाल रचौं ॥
जयघोष कराऊं, बीन बजाऊं, अर्घ चढाऊं, खूब नचौं ॥वसु०॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंधिअष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीति अकृ-
त्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

दोहा

[illegible] मान [illegible] अरु [illegible] ॥
[illegible] ते सब पूजौं [illegible] ॥१॥

[illegible]

[illegible] अरु आठ ॥

ते सब पूजों अर्घ चढ़ाय । मनवचतन त्रयजोग मिलाय ॥२॥

ओं ह्रीं मध्यलोकसंबंधिचतुःशताष्टपंचाशत् श्रीजिनचैत्यालयेभ्यो अर्घ्यं० ॥२॥

अडिल्ल—ऊर्ध्वलोकके मांहि भवनजिन जानिये ।
लाख चुरासी सहस सत्याणव मानिये ॥
तापै धरि तेईस जजों शिर नायकें ।
कंचनथालमझार जलादिक लायकें ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं ऊर्ध्वलोकसंबंधिचतुरशीतिलक्षसप्तनवतिसहस्रत्रयोविंशति श्रीजिनचै० अर्घ्यं ०

वसुकोटि छप्पनलाख ऊपर, सहससत्याणव मानिये ।
सतच्यारपै गिन ले इक्यासी, भवनजिनवर जानिये ॥
तिहुँलोकभीतर सासते, सुर असुर नर पूजा करैं ।
तिन भवनको हम अर्घ लेकें, पूजि हैं जगदुख हरैं ॥

ओं ह्रीं त्रैलोक्यसंबंध्यष्टकोटिषट्पंचाशल्लक्षसप्तनवतिसहस्रचतुःशतैकाशीतिसंख्याकृ-त्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

अथ जयमाला ।

दोहा—अब वरणों जयमालिका, सुनो भव्य चित लाय ।
जिनमंदिर तिहुं लोकके, देहुं सकल दरसाय ॥ १ ॥

जय अमल अनादि अनंत जान । अनिमित जु अकीर्तम अचल मान ॥ जय अजय अखंड अरूपधार । षट् द्रव्य नहीं दीसैं लगार ॥ २ ॥ जय निराकार अविकार होय । राजत अनंतपरदेश सोय ॥ जय शुद्ध सुगुण अवगाह पाय । दश-दिशामाहिं इहविधि लखाय ॥ ३ ॥ यह भेद अलोकाकाश जान । तामध्य लोक नभ तीन मान ॥ स्वयमेव बन्यो अवि-चल अनंत । अविनाशि अनादि जु कहत संत ॥ ४ ॥ पुरु-षाअकार ठाड़ो निहार । कटि हाथ धारि द्वै पग पसार ॥

अडिल्ल छंद ।

अष्टकरम करि नष्ट अष्ट गुण पाय के ।
अष्टम वसुधा माहिं विराजे जाय के ॥
ऐसे सिद्ध अनंत महंत मनाय के ।
संवौषट् आह्वान करूं हरषाय के ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

छन्द त्रिभंगी

हिमवनगतगंगा आदि अभंगा, तीर्थ उतंगा सरवंगा।
आनिय सुरसंगा सलिल सुरंगा, करि मनचंगा भरि भृंगा॥
त्रिभुवनके स्वामी त्रिभुवननामी, अंतरजामी अभिरामी।
शिवपुरविश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी सिरनामी॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जलं निर्वपामीति स्वाहा।

हरिचंदन लायो कपूर मिलायो, बहु महकायो मनभायो।
जलसंग घसायो रंग सुहायो, चरनन आयो हरषायो॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुल उजियारे शशिदुतिटारे, कोमल प्यारे अनियारे।
तुषखंडविदारे जलसु पखारे, पुंज तुम्हारे ढिग धारे॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सुरतरुकी बारी, प्रीतिविहारी, किरिया प्यारी गुलजारी।
भरि कंचन थारी माल संवारी, तुम पद धारी अतिसारी॥

ॐ ह्रीं श्री अनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान निवाजे स्वाद विराजे अमृत लाजे

वहु मोदक छाजे, घेवर भ्राजे, पूजन काजे करि ताजे ।।त्रिभु०

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये नैवेद्यं ॥५॥

आपा परभासे ज्ञानप्रभासे, चित्त विकासे तम नासे ।
ऐसे विध खासे दीप उजासे, धरि तुम पासे उल्लासे ।।त्रिभु०।।

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये दीपं ॥ ६ ॥

चुंवक अलिमाला गंधविशाला, चंदनकाला गरु वाला ।
तस चूर्ण रसाला करि ततकाला, अगनीज्वालामें डाला ।।त्रि०

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये धूपं० ॥७॥

श्रीफल अतिभारा, पिस्ता प्यारा, दाख छुहारा सहकारा ।
रितु रितुका न्यारा सत्फलसारा, अपरंपारा लै धारा ।।त्रिभु०।

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये फलं ॥८॥

जल फल वसुवृंदा अरघअमंदा, जजत अनंदाके कंदा ।
मेटो भवफंदा सव दुखदंदा, 'हीराचंदा' तुम वंदा ।।त्रिभु०।।९।।

ओं ह्रीं श्रीअनाहतपराक्रमाय सर्वकर्मविनिर्मुक्ताय सिद्धचक्राधिपतये अर्घ्यं ॥९॥

अथ जयमाला ।

दोहा—ध्यानदहनविधिदारु दहि, पायो पद निरवान ।
पंचभावजुत थिर थये, नमों सिद्ध भगवान ।। १ ।।

मोटक छंद ।

सुख सम्यकदर्शन ज्ञान लहा । अगुरू-लघु सूक्षमवीर्य महा ।
अवगाह अवाध अघायक हो । सवसिद्धिनमोंसुखदायक हो ।।
असुरेंद्र सुरेंद्र नरेंद्र जजें । भुचरेंद्र खगेंद्र गणेन्द्र भजें ।।
जर जामन मर्ण मिटायक हो । सवसिद्धिनमोंसुखदायक हो ।।
अमलं अचलं अकलं अकुलं । अछलं असलं अरलं अतुलं ।।
अरलं सरलं शिवनायक हो । सवसिद्धिनमोंसुखदायक हो ।।
अजरं अमरं अघरं सुघरं । अडरं अहरं अमरं अधरं ।।

८६। समुच्चयचौबीसी पूजा।

(कविवर वृन्दावनजीकृत)

वृषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पदम सुपास जिनराय।
चंद पुहुप शीतल श्रेयांस नमि, वासुपूज पूजितसुरराय॥
विमल अनंत धरमजसउज्ज्वल, शांति कुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्वप्रभु, वर्द्धमानपद पुष्प चढ़ाय॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरपर्यंतचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरपर्यंतचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिमहावीरपर्यंतचतुर्विंशतिजिनसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

मुनिमनसम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गंध भरा।
भरि कनककटोरी धीर, दीनी धार धरा॥
चौबीसौं श्रीजिनचंद, आनंदकंद सही।
पदजजत हरत भवफंद, पावत मोक्षमही॥ १॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

गोशीर कपूर मिलाय, केशर रंग भरी।
जिनचरनन देत चढ़ाय, भवआताप हरी॥ चौबीसौं॥ २॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो भवातापविनाशनाय चंदनं [illegible]

तंदुल सित सोमसमान, सुंदर अनियारे।
मुक्ताफलकी उनमान, पुंज धरौं प्यारे॥ चौबीसौं॥ ३॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं [illegible]

वरकंज कदंब कुरंड, सुमन सुगंध भरे।
जिन अग्र धरौं गुनमंड, कामकलंक हरे॥ चौबीसौं॥ ४॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरांतेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं [illegible]

[illegible]

[illegible] हरै चौबीसौं [illegible]

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि० ॥५॥

मणिलेकन दीप जगाय, धारौं तुम आगे।
तम तिमिरमोह क्षय जाय, ज्ञानकला जागे ॥ चौबीसौं० ॥६॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि० ॥६॥

दशगंध हुताशनमाहिं, हे प्रभु खेवत हौं।
मिस धूम करम जरि जाहिं, तुम पद सेवत हौं ॥ चौबीसौं०॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं नि० ॥७॥

शुचि पक्व सुरस फल सार, सब ऋतुके ल्यायो।
देखत दृगमनको प्यार, पूजत सुख पायो ॥ चौबीसौं० ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं नि० ॥८॥

जलफल आठों शुचिसार, ताको अर्घ करौं।
तुमको अरपौं भवतार, भवतरि मोक्ष वरौं ॥ चौबीसौं० ॥९॥

ॐ ह्रीं श्रीवृषभादिवीरान्तेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥९॥

जयमाला।

दोहा—श्रीमत तीरथनाथपद, माथ नाय हितहेत।
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर अमरपददेत ॥ १ ॥

घत्ता।

जय भवतमभंजन जनमनकंजन, रंजन दिनमनि स्वच्छ करा।
शिवमगपरकाशक अरिगननाशक, चौबीसौं जिनराज वरा ॥

पद्धरी छन्द।

जय ऋषभदेव रिषिगन नमंत। जय अजित जीत वसुअरि तुरंत
जय संभव भवभय करत चूर। जय अभिनंदन आनंदपूर ॥
जय सुमति सुमतिदायक दयाल। जय पद्म पद्मदुतितनरसाल ॥
जय जय सुपास भवपासनाश। जय चंद चंदतनदुतिप्रकाश ॥
जय पुष्पदंत दुतिदंत सेत। जय शीतल शीतलगुननिकेत ॥

जय श्रेयनाथ नुतसहसभुज्ज । जय वासवपूजित वासुपुज्ज ॥
जय विमल विमलपददेनहार । जय जय अनंत गुनगन अपार ॥
जय धर्म धर्म शिवशर्म देत । जय शांति शांति पुष्टी करेत ॥
जय कुंथु कुंथुवादिक रखेय । जय अर जिन वसुअरि छयकरेय ॥
जय मल्लि मल्ल हतमोहमल्ल । जय मुनिसुव्रत व्रतशल्लदल्ल ॥
जय नमि नित वासवनुत सपेम । जय नेमनाथ वृषचक्रनेम ॥
जय पारसनाथ अनाथनाथ । जय वर्द्धमान शिवनगर साथ ॥

घत्तानंद छंद ।

चौवीस जिनंदा आनँदकंदा पापनिकंदा सुखकारी ।
तिनपदजुगचंदा उदय अमंदा, वासववंदा हितधारी ॥ ९

ओं ह्रीं श्रीवृषभादिचतुर्विंशतिजिनेभ्यो महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

सोरठा ।

भुक्ति-मुक्ति-दातार, चौवीसों जिनराज वर ।
तिनपद मनवचधार, जो पूजें सो शिव लहैं ॥ १० ॥

इत्याशीर्वादः (पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

८७। अथ श्रीआदिनाथजीकी पूजा ।

अडिल ।

परमपूज्य वृषभेश स्वयंभूदेवजू । पिता नाभि मरुदेवि करैं
सुर सेवजू ॥ कनक वरण तनतुंग धनुपपनसततनो । कृपासिंधु
इत आय तिष्ट मम दुख हनो ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

हिमवनोद्भव वारि सुधारके । जजतहूं गुणबोध उचारके ।
परम भाव सुखोदधि दीजिये । जनममृत्युजराक्षय कीजिये ॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्राय जलं निर्वपामीति स्वाहाः ॥ १ ॥

मलय चंदन दाहनिकंदनं । घसि उभै करमें कर वंदनं ॥
जजत हूं प्रशमाश्रम दीजिये । तपततापत्रिधा छय कीजिये ॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्राय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ · ॥

अमल तंदुल खंडविवर्जितं । सित निसेस हिमामिय तर्जितं ॥
जजतहूं तसुपुंज धरायजी । अखय संपति द्यो जिनरायजी ॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

कमल चंपक केतुकी लीजिये । मदनभंजन भेंट धरीजिये ॥
परम शील महासुख दाय हैं । समरशूल निमूल नशाय हैं ॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

सरस मोदन मोदक लीजिये । हरनभूख जिनेश जजीजिये ॥
शकल आकुलअंतकहेतु हैं । अतुल शांति सुधारस देतु हैं ॥

ओं ह्रीं श्रीआदिनाथजिनेंद्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

निवड मोह महातम छाइयो । स्वपर भेद न मोहि लखाइयो ॥
हरन कारन दीपक तासके । जजतहूं पद केवलभासके ॥

ओं ह्रीं आदिनाथजिनेंद्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

अगर चंदन आदिक लेयकें । परम पावन गंध सुखेयकें ॥
अगनिसंग जरें मिस धूमके । शकल कर्म उड़े यहधूमके ॥

ओं ह्रीं आदिनाथजिनेंद्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

सरस पक्वमनोहर पावने । विविध ले फल पूज रचावने ॥
त्रिजगनाथ कृपा अब कीजिये । हमहि मोक्ष महाफल दीजिये ॥

ओं ह्रीं आदिनाथ जिनेंद्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल फलादि समस्त मिलायके । जजतहूं पद मंगल गायके ॥
भगतवत्सल दीनदयालजी । करहु मोहि सुखी लखि हालजी ॥

ओं ह्रीं आदिनाथजिनेंद्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

पंचकल्याणक।

असित दोज अषाढ़ सुहावनी। गरभ मंगलको दिन पावनी॥
हरि सची पितु मातहिं सेवही। जजत हैं हम श्रीजिनदेवही॥
ओं ह्रीं आषाढ़कृष्णद्वितीयादिने गर्भमंगलप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेंद्राय अर्घ्यं॥१॥
असित चैत सुनौमि सुहाइयो। जनममंगल तादिन पाइयो॥
हरि महागिरपै जजियो तबै। हम जजैं पद पंकजको अबैं॥
ओं ह्रीं चैत्रकृष्णनवमीदिने जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेंद्राय अर्घ्यं॥२॥
असित नौमिसु चैतधरयो सही। तपविशुद्ध सबै समता गही॥
निज सुधारससौं लव लाइयो। हम जजैं पद अर्घ चढ़ाइयो॥
ओं ह्रीं चैत्रकृष्णनवमीदिने दीक्षामंगलप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेंद्राय अर्घं॥३॥
असित फागुन ग्यारसि सोहनो। परम केवलज्ञान जग्यो भनो॥
हरिसमूह जजे तित आयकें। हम जजैं इत मंगल गायकें॥
ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णैकादश्यां ज्ञानमंगलप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेंद्राय अर्घं॥४॥
असित चौदस माघ विराजई। परम मोक्ष लियो जिनराजई॥
हरि समूह जजे कैलाशजी। हम जजैं इतधार हुलासजी॥
ओं ह्रीं माघकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीआदिनाथजिनेंद्राय अर्घं निर्व०॥५

जयमाला।

जय जय जिनचंदा आदि जिनंदा हरि भवफंदा कंदा जू।
वासवसतवंदा धरि आनंदा ज्ञानअमंदा नंदा जू॥१॥

छंद मोतीदाम

त्रिलोकहितंकर पूरन पर्म। प्रजापति विष्णु चिदातम धर्म॥
जतीस्वर ब्रह्म विदांवर बुद्ध। वृषंक असंक क्रियांबुधि शुद्ध।
जबै गरभागममंगल जान। तबै हरि हर्ष हिये अति आन॥
पिता जननीपदसेव करेय। अनेक प्रकार उमंग भरेय॥३।
जये जबही तबही हरि आय। गीरींद्रविषै किय न्होन सुजाय

८८। श्रीचंद्रप्रभजिनपूजा।

छप्पय—अनौप्म्य यमकालंकार तथा शब्दालंकार शान्तरस।

चारुचरन आचरन, चरन चितहरनचिहनचर।
चंदचंदतनचरित, चंदथल चहत चतुर नर॥
चतुक चंड चकचूरि, चारि चिदचक्र गुनाकर।
चंचल चलितसुरेश, चूलनुत चक्र धनुरधर॥
चरअचरहितू तारनतरन, सुनत चहकि चिरनंद शुचि।
जिनचंदचरन चरच्यो चहत, चितचकोर नचि रचि रुचि॥१॥

दोहा—धनुष डेढसौ तुंग तन, महासेन नृपनंद।
मातुलछमनाउर जये, थापों चंदजिनंद॥२॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट।
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्र! तत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्॥

अष्टक।

चाल द्यानतरायकृत नंदीश्वराष्टककी अष्टपदी तथा होलीकी चालमें, तथा गरबा आदि अनेक चालोंमें।

गंगाह्रदनिरमल नीर, हाटकभृंगभरा।
तुम चरन जजों वरवीर, मेटो जनमजरा॥
श्रीचंदनाथदुति चंद, चरनन चंद लगै।
मनवचतन जजत अमंद, आतमजोति जगै॥१॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामि०॥१॥

श्रीखंडकपूर सुचंग, केशररंग भरी।
घसि प्रासुकजलके संग, भवआताप हरी॥ श्री०॥२॥

ओं ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामि॥२॥

तंदुल सित सोमसमान, समलय अनियारे।

दिप पुंज मनोहर आन, तुमपदतर प्यारे ॥ श्री० ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामि ॥ ३ ॥

सुरद्रुमके सुमन सुरंग, गंधित अलि आवै ।
तासों पद पूजत चंग, कामविथा जावै ॥ श्री० ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामि ॥ ४ ॥

नेवज नानापरकार, इंद्रियबलकारी ।
सो लै पद पूजौं सार, आकुलताहारी ॥ श्री० ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामि ॥ ५ ॥

तमभंजन दीप सँवार, तुमढिग धारतु हौं ।
मम तिमिरमोह निरवार, यह गुन धारतु हौं ॥ श्री० ६ ॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामि ॥ ६ ॥

दशगंधहुतासनमाहिं, हे प्रभु खेवतु हौं ।
मम करम दुष्ट जरि जांहि, यातैं सेवतु हौं ॥ श्री० ॥ ७ ॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

अति उत्तम फल सु मंगाय, तुम गुनगावतु हौं ।
पूजौं तनमन हरषाय, विघन नशावतु हौं ॥ श्री० ॥ ८ ॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

सजि आठों दरव पुनीत, आठों अंग नमौं ।
पूजौं अष्टमजिन मीत, अष्टम अवनि गमौं ॥ श्री० ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

पंचकल्याणक ।

छंद तोटक (वर्ण १२)

कलि पंचम चैत सुहात अली । गरभागममंगल मोद भली ॥
हरि हर्षित पूजत मातु पिता । हम ध्यावत पावत शर्महिता ॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णपंचम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घ्यं नि० ॥ १ ॥

कलि पौष इकादशि जन्म लयो । तब लोकविषैं सुखथोक भयो ॥

सुरईश जजें गिरशीश तवें । हम पूजत हैं नुतशीस अवें ॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्व० ॥ २ ॥

तप दुद्धर श्रीधर आप धरा । कलिपौष इग्यारसि पर्व वरा ॥
निजध्यानविषै लवलीन भये । धनि सो दिन पूजत विघ्न गये ॥

ओं ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां निःक्रमणमहोत्सवमंडिताय चंद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं नि० ।३।

वर केवलभानु उद्योत कियो । तिहुंलोकतणों भ्रम मेट दियो ॥
कलिफाल्गुणसप्तमि इंद्र जजे । हम पूजहिं सर्व कलंक भजे ॥

ओं ह्रीं फाल्गुनकृष्णसप्तम्यां केवलज्ञानमंडिताय श्रीचन्द्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं निर्व० ।४।

सित फाल्गुण सप्तमि मुक्ति गये ॥ गुणवंत अनंत अबाध भये ॥
हरि आय जजे तित मोदधरे । हम पूजत ही सब पाप हरे ॥

ओं ह्रीं फाल्गुनशुक्लसप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीचंद्रप्रभजिनेन्द्राय अर्घं नि० ॥५॥

जयमाला ।

दोहा—हे मृगांकअंकित चरण, तुम गुण अगम अपार ।
गणधरसे नहिं पार लहिं, तौ को वरनत सार ॥ १ ॥
पै तुम भगति हिये मम, प्रेरे अति उमगाय ।
तातें गाऊं सुगुण तुम, तुम ही होउ सहाय ॥ २ ॥

छंद पद्धरि (१६ मात्रा)

जय चंद्र जिनेंद्र दयानिधान । भवकाननहानन दौंप्रमान ॥ जय गरभजनममंगल दिनंद । भविजीवविकाशन शर्मकंद ॥ ॥ ३ ॥ दशलक्षपूर्वकी आयु पाय । मनवांछित सुख भोगे जिनाय ॥ लखि कारण ह्वै जगतैं उदास । चिंत्यो अनुप्रेक्षा सुखनिवास ॥ ४ ॥ तित लौकांतिक बोध्यो नियोग । हरि शिविका सजि धरियो अभोग ॥ तापै तुम चढ़ि जिनचंदराय । ताछिनकी शोभा को कहाय ॥ ५ ॥ जिन अंग सेत सित चमर ढार । सित छत्र शीस गलगुलकहार ॥ सित रतन-

जड़ित भूषण विचित्र। सित चंद्रचरण चरचैं पवित्र ॥ ६ ॥ सित तनद्युति नाकाधीश आप। सित शिविका कांधे धरि सुचाप ॥ सित सुजस सुरेश नरेश सर्व। सित चितमें चिंतत जात पर्व ॥७॥ सित चंद्रनगरतें निकसि नाथ। सित बनमें पहुंचे सकल साथ ॥ सितशिलाशिरोमणि स्वच्छछाँह। सित तप तित धार्यो तुम जिनाह ॥ ८ ॥ सित पयको पारण परमसार। सित चंद्रदत्त दीनों उदार ॥ सित करमें सो पय-धार देत। मानो बांधत भवसिंधुसेत ॥ ९ ॥ मानों सुपुण्य-धारा प्रतच्छ। तित अचरज पन सुर किय ततच्छ ॥ फिर जाय गहन सित तपकरंत। सित केवलज्योति जग्यो अनंत ॥१०॥ लहि समवसरणरचना महान। जाके देखत सब पाप हान ॥ जहँ तरु अशोक शोभै उतंग। सब शोकतनो चूरै प्रसंग ॥ ११ ॥ सुर सुमनवृष्टि नभतें सुहात। मनु मन्मथ तज हथियार जात ॥ बानी जिनमुखसों खिरत सार। मनु तत्त्वप्रकाशन मुकुर धार ॥ १२ ॥ जहँ चौंसठ चमर अमर दुरंत। मनु सुजस मेघ झरि लगिय तंत ॥ सिंहासन है जहँ कमल जुक्त। मनु शिवसरवरको कमलशुक्त ॥ १३ ॥ दुंदुभि जिन बाजत मधुर सार। मनु करमजीतको है नगार ॥ सिर छत्र फिरै त्रय श्वेत वर्ण। मनु रतन तीन त्रयताप हर्ण ॥१४॥ तनप्रभातनों मंडल सुहात। भवि देखत निजभव सात सात ॥ मनु दर्पणद्युति यह जगमगाय। भविजन भव मुख देखत सु आय ॥ १५ ॥ इत्यादि विभूति अनेक जान। बाहिज दीसत महिमा महान ॥ ताको बरनत नहिं लहत पार। तौ अंतरंग

को कहे सार ॥ १६ ॥ अनअंत गुणनिजुत करि विहार । धरमोपदेश दे भव्य तार ॥ फिर जोगनिरोधि अघाति हान । सम्मेदथकी लिय मुकतिथान ॥ १७ ॥ वृन्दावन वंदत शीश नाय । तुम जानत हो मर्म उर जु भाय ॥ तातें का कहौं सु वार वार । मनवांछित कारज सार सार ॥ १८ ॥

छंद घत्तानंद ।

जय चंदजिनंदा, आनँदकंदा, भवभयभंजन राजे हैं ।
रागादिक द्वंदा, हरि सब फंदा, मुकतिमांहि थिति साजे हैं ॥

ओं ह्रीं श्रीचंद्रप्रभजिनेंद्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

छंद चौबोला ।

आठों दरब मिलाय गाय गुण, जो भविजन जिनचंद जजें ।
ताके भवभवके अघ भाजें, मुक्तसारसुख ताहि सजें ॥ २० ॥
जमके त्रास मिटें सब ताके, सकल अमंगल दूर भजें ।
वृंदावन ऐसो लखि पूजत, जातें शिवपुरि राज रजें ॥ २१ ॥

इत्याशीर्वादः । परिपुष्पांजलिं क्षिपेत् । इति श्रीचंद्रप्रभजिनपूजा समाप्त ।

८९ । श्रीशांतिनाथजिनपूजा ।

मत्तगयंद छंद (तथा यमकालंकार)

या भवकाननमें चतुरानन, पापपनानन घेरि हमेरी ।
आतमजानन मानन ठानन, बान न होन दई सठ मेरी ॥
तामदभानन आपहि हो, यह छानन आन न आननटेरी ।
आन गही शरनागतको अब, श्रीपतजी पत राखहु मेरी ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ॥३॥

बादाम खजूरं, दाड़िम पूरं, निंबुक भूरं, ले आयो।
तासों पद जजों शिवफल सजों, निजरसरज्जों उमगायो ॥श्री०

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

वसुद्रव्य सँवारी, तुमढिगधारी, आनँदकारी दृगप्यारी।
तुम हो भवतारी करुनाधारी, यातैं थारी शरनारी ॥ श्री० ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

पंचकल्याणक।

सुन्दरी तथा द्रुतविलंबित छंद।

असित सातयँ भादव जानिये। गरभमंगल तादिन मानिये ॥
सचि कियो जननी पद चर्चनं। हम करैं इत ये पद अर्चनं ॥१॥

ओं ह्रीं भाद्रपदकृष्णसप्तम्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घं नि० ॥

जनम जेठ चतुर्दशि श्याम है। सकलइंद्र सुआगत धाम है ॥
गजपुरे गज साजि सबै तबैं। गिरि जजे इत मैं जजिहों अबैं ॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घं नि०।

भवशरीर सुभोग असार हैं। इमि विचार तबै तप धार हैं ॥
भ्रमर चौदशि जेठ सुहावनी। धरमहेत जजों गुनपावनी ॥३॥

ओं ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां निःक्रमणमहोत्सवमंडिताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घं।

शुकलपौष दशैं सुखराश है। परम-केवल-ज्ञान प्रकाश है ॥
भवसमुद्रउधारन देवकी। हम करैं नित मंगल सेवकी ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं पौषशुक्लदशम्यां केवलज्ञानप्राप्ताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घं नि० ॥

असित चौदस जेठ हने अरी। गिरि समेदथकी शिव-तियवरी
सकल इंद्र जजैं तित आइकैं। हम जजैं इत मस्तक नाइकैं ॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठकृष्णचतुर्दश्यां मोक्षमंगलप्राप्ताय श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय अर्घं नि० ॥५॥

जयमाला।

छंद रथोद्धता, चंद्रवत्मा तथा चंद्रवर्त्म (वर्ण ११, लाटानुप्रास)

शांति शांतिगुनमंडिते सदा। जाहि ध्यावत सुपंडित सदा ॥

पाय । भवि जीवनकों शिवमग वताय ॥ ९ ॥ शिवपुर पहुंचे तुम हे जिनेश । गुनमंडित अतुल अनंत भेप ॥ मैं ध्यावतु हौं नित शीश नाय । हमरी भवबाधा हरि जिनाय ॥ १० ॥ सेवक अपनों निज जान जान । करुना करि भौभय भान भान ॥ यह विघन मूल तरु खंड खंड । चितचिंतित आनँद मंड मंड ॥ ११ ॥

घत्तानंद छंद (मात्रा ३१) ।

श्रीशांतिमहंता, शिवतियकंता, सुगुन अनंता, भगवंता ।
भवभ्रमन हनंता, सौख्य अनंता, दातारं तारनवंता ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्रीशांतिनाथजिनेंद्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

छंद रूपक सवैया (मात्रा ३१) ।

शांतिनाथजिनके पदपंकज, जो भवि पूजे मनवचकाय ।
जनम जनमके पातक ताके, ततछिन तजिकें जाय पलाय ॥
मनवांछित सुख पावै सो नर, वांचे भगतिभाव अति लाय ॥
तातें 'वृंदावन' नित वंदैं, जातें शिवपुरराज कराय ॥ १ ॥

इत्याशीर्वादः । पुष्पांजलिं क्षिपेत् ।

९० । निर्वाणक्षेत्र पूजा ।

परम पूज्य चौवीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये ।
सिद्धभूमि निशदीस, मनवचतन पूजा करौं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र अवतरत अवतरत संवौषट् ।
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र तिष्ठत तिष्ठत । ठः ठः ।
ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्राणि ! अत्र मम सन्निहितानि भवत भवत । वषट् ।

गीता छंद ।

शुचि छीर दधि सम नीर निरमल, कनकझारीमें भरौं ।
संसारपार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं ॥

अथ जयमाला।

सोरठा—श्रीचौवीस जिनेश, गिरिकैलाशादिक नमों।
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवाणतें ॥ १ ॥

चौपाई १६ मात्रा।

नमों रिषभ कैलासपहारं। नेमिनाथ गिरनार निहारं ॥
वासुपूज्य चंपापुर वंदों। सनमति पावापुर अभिनंदों ॥ २ ॥
वंदों अजित अजितपददाता। वंदों संभव भवदुखघाता ॥
वंदों अभिनंदन गणनायक। वंदों सुमति सुमतिके दायक।
वंदों पदम मुकतिपदमाकर। वंदों सुपास आशपासाहर ॥
वंदों चंद्रप्रभ प्रभुचंदा। वंदों सुविधि सुविधिनिधि कंदा ॥४॥
वंदों शीतल अघ तप शीतल। वंदों श्रियांस श्रियांस महीतल
वंदों विमल विमल उपयोगी। वंदों अनँत अनँत सुखभोगी ॥
वंदों धर्म धर्म विसतारा। वंदों शांति शांतिमनधारा ॥
वंदों कुंथु कुंथु रखवालं। वंदों अर अरिहर गुणमालं ॥ ६ ॥
वंदों मल्लि काममल चूरन। वंदों मुनिसुव्रत व्रतपूरन ॥
वंदों नमि जिन नमित सुरासुर। वंदों पास पासभ्रमजगहर ॥
बीसों सिद्धभूमि जा ऊपर। शिखर सम्मेद महागिरि भूपर ॥
एकवार वंदे जो कोई। ताहि नरक पशुगति नहिं होई ॥८॥
नरपतिनृप सुरशक्र कहावे। तिहुँ जग भोग भोगि शिव पावे ॥
विघनविनाशन मंगलकारी। गुणविलास वंदों भवतारी ॥९॥

घत्ता—जो तीरथ जावै पाप मिटावै, ध्यावै गावै भगति करै।
ताको जस कहिये संपति लहिये, गिरिके गुण को बुध उचरै ॥

ओं ह्रीं चतुर्विंशतितीर्थंकरनिर्वाणक्षेत्रेभ्यो पूर्णार्घं निर्वपामि ॥

६१। अथ सप्तर्षि पूजा।

छप्पय।

प्रथम नाम श्रीमन्व दुतिय स्वरमन्व ऋषीश्वर।
तीसर मुनि श्रीनिचय सर्वसुंदर चौथो वर॥
पंचम श्रीजयवान विनयलालस षष्ठम भनि।
सप्तम जयमित्राख्य सर्व चारित्रधाम गनि॥
ये सातों चारणऋद्धिधर, करूं तासु पद थापना।
मैं पूजूं मनवचकायकरि, जो सुख चाहूं आपना॥

ओं ह्रीं चारणर्द्धिधरश्रीसप्तर्षीश्वराः! अत्रावतरतावतरत संवौषट्। अत्र तिष्ठत तिष्ठत। ठः ठः। अत्र मम सन्निहिता भवत भवत। वषट्।

अष्टक—गीता छंद।

शुभतीर्थउद्भव जल अनूपम, मिष्ट शीतल लायकें॥
भव तृषा कंद निकंद कारण, शुद्ध घट भरवायकें॥
मन्वादि चारण ऋद्धिधारक, मुनिनकी पूजा करूं।
ता करें पातिक हरें सारे, सकल आनँद विस्तरूं॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वस्वरमन्वनिचयसर्वसुन्दरजयवानविनयलालसजयमित्रर्षिभ्यो अर्घं॥

श्रीखंड कदलीनंद केशर, मंद मंद घिसायकें।
तसुगंध प्रसरति दिगदिगंतर, भरकटोरी लायकें॥ मन्वा०॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यः चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

अति धवल अक्षत खंड वर्जित, मिष्ट राजनभोगकें॥
कलधौत थारा भरत सुन्दर, चुनित शुभउपयोगकें॥ मन्वा०॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यः अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

बहु वर्ण सुवरण सुमन आछे, अमल कमल गुलाबके।
केतकी चंपा चारु मरुआ, चुने निजकर चावकें॥ मन्वा०॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा। ४।

पकवान नानाभांति चातुर, रचित शुद्ध नये नये।
सदमिष्ट लाडू आदि भर बहु, पुरटके थारा लये॥ मन्वा०॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो नैवेद्यं निर्वपामिति स्वाहा॥ ५॥
कलधौत दीपक जडित नाना, भरित गोघृतसारसों।
अति ज्वलित जगमगजोति जाकी, तिमिरनाशनहारसों। म०
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा॥ ६॥
दिक्चक्र गंधित होत जाकर, धूप दशअंगी कही।
सो लाय मनवचकाय शुद्ध, लगायकर खेऊं सही॥ मन्वा०॥
ॐ ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो धूपं निर्वपामि स्वाहा॥ ७।
वर दाख खारक अमित प्यारे, मिष्ट चुष्ट चुनायके।
द्रावडी दाडिम चारु पुंगी, थाल भर भर भायके॥ मन्वा०
ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा॥ ८॥
जल गंध अक्षत पुष्प चरु वर, दीप धूप सु लावना।
फल ललित आठों द्रव्य मिश्रित, अर्घ कीजे पावना॥ मन्वा
ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ९॥

अथ जयमाला।

छन्द त्रिभंगी।

वंदूं ऋषि राजा, धर्मजहाजा, निजपरकाजा करत भले।
करुणाके धारी, गगनविहारी, दुख अपहारी, भरम दले॥
काटत जमफंदा, भविजनवृन्दा, करत अनंदा चरणनमें।
जो पूजें ध्यावें, मंगल गावें, फेर न आवें भववनमें॥ १॥

छंद पद्धरी।

जय श्रीमनु मुनिराजा महंत। त्रस थावरकी रक्षा करंत॥
जय मिथ्यातम नाशक पतंग। करुणारसपूरित अंग अंग।
जय श्रीस्वरमनु अकलंकरूप। पद सेव करत नित अमर भूप

जय जपत तिहारो नाम कोय। लख पुत्रपौत्र कुलवृद्धि होय॥
जय भरे लक्ष अतिशय भँडार। दारिद्रतनो दुख होय छार॥
जय चोर अग्नि डाकिन पिशाच। अरु ईति भीति सब नसत सांच
जय तुम सुमरत सुखलहत लोक। सुर असुर नवत पद देत धोक

छंद रोला—ये सातों मुनिराज महातप लछमीधारी।
परम पूज्य पद धरैं सकल जगके हितकारी।
जो मनवचतन शुद्ध होय सेवै औ ध्यावै॥
सो जन मनरंगलाल अष्ट ऋद्धिनकौं पावै॥ १६॥

दोहा—नमन करत चरनन परत, अहो गरीबनिवाज।
पंच परावर्तननितैं, निरवारो ऋषिराज॥ १७॥

ओं ह्रीं श्रीमन्वादिसप्तर्षिभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

९२। अथ पंचमेरुपूजा भाषा।

गीताछंद।

तीर्थंकरोंके न्हवनजलतैं, भये तीरथ शर्मदा।
तातैं प्रदच्छन देत सुरगन, पंचमेरनकी सदा॥
दो जलधि ढाईदीपमें सब, गनतमूल विराजही।
पूजौं असी जिनधाम प्रतिमा, होहि सुख दुख भाजही॥ १॥

ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्रावतरावतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनप्रतिमासमूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

चौपाई आंचलीबद्ध (१५ मात्रा)।

सीतलमिष्टसुवास मिलाय, जलसों पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥
पांचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमाको करौं प्रनाम॥

महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥ १ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जलकेशरकरपूर मिलाय, गंधसों पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥ पांचों० ॥ २ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अमल अखंड सुगंध सुहाय, अच्छतसों पूजों जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुखहोय ॥ पांचों० ॥ ३ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्योऽक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

वरन अनेक रहे महकाय, फूलनसों पूजों जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पांचों० ॥ ४ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

मन वांछित बहु तुरत बनाय, चरुसों पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पांचों० ॥ ५ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

तमहर उज्वल ज्योति जगाय, दीपसों पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥ पांचों० ॥ ६ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

खेऊं अगर अमल अधिकाय, धूपसों पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय ॥ पांचों० ॥ ७ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

सुरस सुवर्ण सुगंध सुभाय, फलसों पूजों श्रीजिनराय।
महा सुख होय देखे नाथ परमसुख होय ॥ पांचों० ॥ ८ ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

आठ दरबमय अरघ बनाय, द्यानत पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखेनाथ परमसुख होय ॥ पांचों० ॥ [illegible] ॥
ओं ह्रीं पंचमेरुसंबंधिजिनचैत्यालयस्थजिनबिंबेभ्यो [illegible] निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अथ जयमाला।

सोरठा।

प्रथम सुदर्शन स्वामि, विजय अचल मंदर कहा।
विद्युन्माली नाम, पंचमेरु जगमें प्रगट ॥ १ ॥

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजे, भद्रशाल वन भूपर छाजे।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी ॥ २ ॥
ऊपर पाँचशतकपर सोहे, नंदनवन देखत मन मोहे ॥ चैत्या
साढे बासठ सहस उंचाई, वन सुमनस शोभे अधिकाई ॥ चै
ऊंचायोजन सहस छत्तीसं, पांडुकवन सोहै गिरिसीसं ॥ चै०
चारों मेरु समान वखाने, भूपर भद्रसाल चहुं जाने।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी ॥ ६ ॥
ऊंचे पांच शतकपर भाखे, चारों नंदनवन अभिलाखे।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी ॥ ७ ॥
साढे पचपन सहस उतंगा, वन सौमनस चार बहुरंगा।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मनवचतन वंदना हमारी ॥ ८ ॥
उच्च अठाइस सहस बताये, पांडुक चारों वन शुभ गाये।
चैत्यालय सोलह सुखकारी मनवचतन वंदना हमारी ॥ ९ ॥
सुरनर चारन वंदन आवें, सो शोभा हम किह मुख गावें।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मनवचतनवंदना हमारी ॥ १० ॥

दोहा।

पंचमेरुकी आरती, पढे सुने जो कोय।
'द्यानत' फल जाने प्रभू, तुरत महासुख होय ॥ ११ ॥

ॐ ह्रीं पञ्चमेरुसम्बन्धिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

(इसके बाद विसर्जन करना चाहिये)

९३। श्रीनंदीश्वरद्वीप (अष्टाह्निका) की पूजा।

अडिल्ल।

सरव पर्वमें वडो अठाई परव है। नंदीश्वर सुर जांहिं लेय वसु दरव है॥ हमै सकति सो नांहि इहां करि थापना। पूजें जिनग्रहप्रतिमा है हित आपना॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वर द्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमासमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

कंचनमणिमय भृंगार, तीरथनीरभरा।
तिहुं धार दयी, निरवार जामन मरन जरा॥
नंदीश्वर श्रीजिनधाम, बावन पूज करों।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनँदभावधरों॥ १॥

ओं ह्रीं श्रीनंदीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

भवतपहर शीतल वाच, सो चंदन नाहीं,
प्रभु यह गुन कीजे सांच, आयो तुम ठांहीं॥ नंदी॥ चंदनं०॥
उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहें.
सब जीते अक्षसमाज, तुम सम अरु को है॥ नंदी०॥ अक्षतान्
तुम कामविनाशक देव, ध्याऊं फूलनसों।
लहुं शील लच्छमी एव, छटों सूलनसों॥ नंदी०॥ पुष्पं०॥
नेवज इंद्रियबलकार, सो तुमने चूरा।
चरु तुम ढिग सोहै सार, अचरज है पूरा॥ नंदी०॥ नैवेद्य॥
दीपककी ज्योति प्रकाश, तुम तनमाहिं लसै।
टूटे करमनकी राशि, ज्ञानकणी दरसे॥ नंदी०॥ दीपं॥६॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति ॥

तंदुल धवल सुगंध अनूप । पूजों जिनवर तिहुं जगभूप ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो । दरशविशुद्धि० ।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति ॥ ३ ॥

फूल सुगंध मधुपगुंजार । पूजों जिनवर जगआधार ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरशवि० ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं ॥ ४ ॥

सदनेवज बहुविध पकवान । पूजों श्रीजिनवर गुणखान ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥दरशवि० ॥५॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं ॥

दीपकजोति तिमर छयकार, पूजूं श्रीजिन केवलधार ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥
दरशविशुद्धि भावना भाय । सोलह तीर्थंकरपद दाय ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यः मोहांधकारविनाशनाय दीपं ॥

अगर कपूर गंध शुभखेय । श्रीजिनवर आगे महकेय ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरश० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपा० ॥

...फल आदि बहुत फलसार, पूजों जिन वांछितदातार ।
...रमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥दरश० ॥ ८॥

... मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपा० ॥८॥

... फल आठों दरव चढाय । 'द्यानत' वरत करों मनलाय ।
परमगुरु हो, जय जय नाथ परमगुरु हो ॥ दरश० ॥९॥

ओं ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥

अथ जयमाला ।

दोहा—षोडशकारण गुण करै, हरै चतुरगतिवास ।
पाप पुण्य सब नाशकै, ज्ञानभान परकास ॥ १ ॥

चौपाई १६ मात्रा ।

दरशविशुद्धि धरै जो कोई । ताको आवागमन न होई ॥
विनय महा धारै जो प्रानी । शिववनिताकी सखी बखानी ॥
शील सदा दिढ जो नर पालै । सो औरनकी आपद टालै ॥
ज्ञानाभ्यास करै मनमाहीं । ताके मोहमहातम नाहीं ॥ ३ ॥
जो संवेगभाव विसतारै । सुरगमुकतिपद आप निहारै ॥
दान देय मन हरष विशेखै । इह भव जस पर भव सुख देखै ॥
जो तप तपै खपै अभिलाषा । चूरै करमशिखर गुरु भाषा ।
साधुसमाधि सदा मन लावै । तिहुंजगभोग भोगि शिव जावै ॥
निशदिन वैयावृत्य करैया । सो निहचै भवनीर तिरैया ॥
जो अरहंतभगति मन आनै । सो जन विषय कषाय न जानै ॥
जो आचारज भगति करै है । सो निर्मल आचार धरै है ॥
बहुश्रुतवंतभगति जो करई । सो नर संपूरन श्रुत धरई ॥७॥
प्रवचन भगति करै जो ज्ञाता । लहै ज्ञान परमानंददाता ॥
षट्आवश्यक नित जो साधै । सो ही रत्नत्रय आराधै ॥ ८ ॥
धरमप्रभाव करै जे ज्ञानी । तिन शिवमारग रीति पिछानी ॥
वत्सल अंग सदा जो ध्यावै । सो तीर्थंकर पदवी पावै ॥ ९ ॥

दोहा—एही सोलह भावना, सहित धरै व्रत जोय ।
देव इंद्र नरवंद्यपद, 'द्यानत' शिवपद होय ॥ १० ॥

[illegible]

[illegible]

९५। अथ दशलक्षणधर्मपूजा भाषा।

अडिल्ल।

उत्तम छिमा मारदव आरजवभाव हैं।
साच सत्य संजम तप त्याग उपाव हैं॥
आकिंचन ब्रमचरज धरम दश सार हैं।
चहुंगतिदुखतैं काढि मुकतिकरतार हैं॥ १॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

सोरठा—हेमाचलकी धार, मुनिचित सम शीतल सुरभि।
भवआताप निवार, दसलच्छन पूजौं सदा॥ १॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यादिदशलक्षणधर्मेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

चंदन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा। भवआ०॥ २

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

अमल अखंडितसार. तंदुल चंद्रसमान शुभ॥ भवआ०॥३

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

फूल अनेकप्रकार, महकैं ऊरधलोक लौं॥ भवआ०॥ ४॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

नेवज विविध निहार, उत्तम षटरससंजुगत॥ भवआ०॥५।

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ ५॥

बाति कपूर सुधार, दीपकजोति सुहावनी॥ भवआ०॥६॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा॥ ६॥

अगर धूप विस्तार. फैले सर्व सुगंधता॥ भवआ०॥ ७॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामीति स्वाहा॥ ७॥

फलकी जाति अपार, घ्रान नयन मनमोहने॥ भवआ०॥८॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय फलं निर्वपामीति स्वाहा॥ ८॥

९५। अथ दशलक्षणधर्मपूजा भाषा।

अडिल।

उत्तम छिमा मारदव आरजवभाव हैं।
साच सत्य संजम तप त्याग उपाव हैं॥
आकिंचन ब्रमचरज धरम दश सार हैं।
चहुंगतिदुखतैं काढि मुकतिकरतार हैं॥ १॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

सोरठा—हेमाचलकी धार, मुनिचित सम शीतल सुरभि।
भवआताप निवार, दसलच्छन पूजों सदा॥ १॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणिदशलक्षणधर्मेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

चंदन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा। भवआ०॥ २।

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

अमल अखंडितसार तंदुल चंद्रसमान शुभ॥ भवआ०॥३॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

फूल अनेकप्रकार, महकैं ऊरधलोक लों॥ भवआ०॥ ४॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

नेवज विविध निहार, उत्तम षटरससंजुगत॥ भवआ०॥५॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ ५॥

बाति कपूर सुधार, दीपकजोति सुहावनी॥ भवआ०॥६॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा॥ ६॥

अगर धूप विस्तार, फैलै सर्व सुगंधता॥ भवआ०॥ ७॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामीति स्वाहा॥ ७॥

फलकी जाति अपार, घ्रान नयन मनमोहने॥ भवआ०॥८॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय फलं निर्वपामीति स्वाहा॥ ८॥

आठों दरब सँवार, द्यानत अधिक उछाहसों ॥ भंवआं० ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

अंगपूजा।

सोरठा—पीडैं दुष्ट अनेक, बांध मार बहुविधि करैं।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा ॥ १ ॥

चौपाई मिश्रित गीता छंद।

उत्तमछिमा गहोरे भाई। इहभव जस परभव सुखदाई ॥
गाली सुनि मन खेद न आनो। गुनको औगुन कहै अयानो
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बांध मार बहुविधि करे।
घरतें निकारे तन विदारें, वैर जो न तहां धरै ॥
तैं करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अतिक्रोधअगनि बुझाय प्रानी, साम्य जल ले सीयरा ॥१॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्मांय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

मान महाविषरूप, करहि नीचगति जगतमें।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥ २ ॥

उत्तम मार्दवगुन मन माना। मानकरनको कौन ठिकाना।
वस्यो निगोदमाहितें आया। दमरी रूकन भाग विकाया ॥
रूकन विकाया कर्मवशतें, देव इकइंद्री भया।
उत्तम मुआ चांडाल हूवा, भूप कीडोंमें गया ॥
जीतव्य-जोवन-धनगुमान कहा करै जलबुदबुदा।
करि विनय बहुगुन बडे जनकी ज्ञानका पावै उदा ॥२॥

ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कपट न कीजे कोय, चोरनके पुर ना बसै।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु संपदा ॥ ३ ॥

आठों दरव सँवार, द्यानत अधिक उछाहसों ॥ भवआ० ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

अंगपूजा ।

सोरठा—पीड़ैं दुष्ट अनेक, बांध मार बहुविधि करैं ।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा ॥ १ ॥

चौपाई मिश्रित गीता छंद ।

उत्तमछिमा गहोरे भाई । इहभव जस परभव सुखदाई ॥
गाली सुनि मन खेद न आनो । गुनको औगुन कहै अयानो
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बांध मार बहुविधि करै ।
घरतैं निकारै तन विदारैं, वैर जो न तहां धरै ॥
तैं करम पूरव किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा ।
अतिक्रोधअगनि बुझाय प्रानी, साम्य जल ले सीयरा ॥१॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

मान महाविषरूप, करहि नीचगति जगतमें ।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥ २ ॥

उत्तम मार्दवगुन मन माना । मानकरनकौं कौन ठिकाना ।
वस्यो निगोदमाहितैं आया । दमरी रूकन भाग विकाया ॥
रूकन विकाया कर्मवशतैं, देव इकइंद्री भया ।
उत्तम मुआ चांडाल हूवा, भूप कीडोंमें गया ॥
जीतव्य-जोवन-धनगुमान कहा करै जलबुदबुदा ।
करि विनय बहुगुन बडे जनकी ज्ञानका पावै उदा ॥२॥

ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

कपट न कीजे कोय, चोरनके पुर ना बसै ।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु संपदा ॥ ३ ॥

९५। अथ दशलक्षणधर्मपूजा भाषा।

अडिल।

उत्तम छिमा मारदव आरजवभाव हैं।
साच सत्य संजम तप त्याग उपाव हैं॥
आकिंचन ब्रमचरज धरम दश सार हैं।
चहुंगतिदुखतैं काढि मुकतिकरतार हैं॥ १॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

सोरठा—हेमाचलकी धार, मुनिचित सम शीतल सुरभि।
भवआताप निवार, दसलच्छन पूजौं सदा॥ १॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्यादिदशलक्षणधर्मेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

चंदन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा। भवआ०॥ २

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा॥ २॥

अमल अखंडितसार, तंदुल चंद्रसमान शुभ॥ भवआ०॥३

ओं ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

फूल अनेकप्रकार, महकें ऊरधलोक लों॥ भवआ०॥ ४॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

नेवज विविध निहार, उत्तम पटरससंजुगत॥ भवआ०॥५॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ ५॥

बाति कपूर सुधार, दीपकजोति सुहावनी॥ भवआ०॥६॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा॥ ६॥

अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगंधता॥ भवआ०॥ ७॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय धूपं निर्वपामीति स्वाहा॥ ७॥

फलकी जाति अपार, घ्रान नयन मनमोहने॥ भवआ०॥८॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय फलं निर्वपामीति स्वाहा॥ ८॥

आठों दरव सँवार, द्यानत अधिक उछाहसों ॥ भवआ० ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

अंगपूजा ।

सोरठा—पीडैं दुष्ट अनेक, बांध मार बहुविधि करैं ।
घरिये छिमा विवेक, कोप न कीजे पीतमा ॥ १ ॥

चौपाई मिश्रित गीता छंद ।

उत्तमछिमा गहोरे भाई । इहभव जस परभव सुखदाई ॥
गाली सुनि मन खेद न आनो । गुनको औगुन कहै अयानो
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बांध मार बहुविधि करै ।
घरतें निकारैं तन विदारैं, वैर जो न तहां धरै ॥
तैं करम पूरव किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा ।
अतिक्रोधअगनि बुझाय प्रानी, साम्य जल ले सीयरा ॥१॥

ओं ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

मान महाविषरूप, करहि नीचगति जगतमें ।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावै प्रानी सदा ॥ २ ॥

उत्तम मार्दवगुन मन माना । मानकरनको कौन ठिकाना ।
वस्यो निगोदमाहितें आया । दमरी रूकन भाग विकाया ॥
रूकन विकाया कर्मवशतें, देव इकइंद्री भया ।
उत्तम मुआ चांडाल हूवा, भूप कीडोंमें गया ॥
जीतव्य-जोवन-धनगुमान कहा करै जलबुदबुदा ।
करि विनय बहुगुन वडे जनकी ज्ञानका पावै उदा ॥२॥

ओं ह्रीं उत्तममार्दवधर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

कपट न कीजे कोय, चोरनके पुर ना वसै ।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु संपदा ॥ ३ ॥

उत्तमआर्जवरीति वखानी। रंचक दगा वहुत दुखदानी।
मनमें है सो वचन उचरिये। वचन होय सो तनसों करिये॥
करिये सरल तिहुंजोग अपने, देख निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपटप्रीति अँगारसी॥
नहिं लहै लछमी अधिक छलकरि, करमबंध विशेषता।
भय त्याग दूध विलाव पीवै, आपदा नहिं देखता॥ ३॥
ओं ह्रीं उत्तमार्जवधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ ३॥

धरि हिरदै संतोष, करहु तपस्या देहसौं।
शौच सदा निरदोष, धरम बडो संसारमें॥ ४॥
उत्तम शौच सर्व जग जानो। लोभ पापको वाप वखानो॥
आसापास महा दुख दानी। सुख पावै संतोषी प्रानी॥
प्रानी सदा शुचि शीलजपतप, ज्ञानध्यानप्रभावतें।
नित गंगजमुन समुद्र न्हाये, अशुचिदोष सुभाव तें॥
ऊपर अमल, मल भर्यो भीतर, कौन विध घट शुचि कहै
बहु देह मैली सुगुनथैली, शौचगुन साधू लहै॥ ४॥
ओं ह्रीं उत्तमशौचधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥ ४॥

कठिन वचन मति बोल, परनिंदा अरु झूठ तज।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जगमें सुखी॥ ५॥
उत्तम सत्यवरत पालीजे, परविश्वासघात नहिं कीजे॥
सांचे झूठे मानव देखो, आपनपूत स्वपास न पेखो॥
पेखो तिहायत पुरुष सांचेको, दरब सब दीजिये।
मुनिराज श्रावककी प्रतिष्ठा, सांचगुण लख लीजिये॥
ऊंचे सिंहासन बैठि वसुनृप, धरमका भूपति भया।
वच झूठसेती नरक पहुंचा, सुरगमें नारद गया॥ ५॥

ओं ह्रीं उत्तमसत्यधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

काय छहों प्रतिपाल, पंचेंद्री मन वश करो।
संजमरतन सँभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं ॥ ६ ॥
उत्तम संजम गहु मन मेरे। भव भवके भाजें अघ तेरे ॥
सुरग नरकपशुगतिमें नाहीं, आलसहरन करन सुख ठाँहीं ॥
ठाँहीं पृथी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैंना, कान मन सब वश करो।
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जगकीचमें।
इक घरी मत विसरो करो नित, आव जममुख-बीचमें ॥

ओं ह्रीं उत्तमसंयमधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

तप चाहें सुरराय, करमसिखरको वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करै निज सकति सम ॥७॥
उत्तम तप सबमाहिं बखाना। करमशैलको वज्र समाना ॥
बस्यो अनादिनिगोदमझारा। भूविकलत्रय पशुतन धारा ॥
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आव निरोगता।
श्रीजैनवानी तत्त्वज्ञानी, भई विषयपयोगता।
अति महादुरलभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरैं।
नरभवअनूपमकनकघरपर, मणिमयी कलसा धरैं ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं उत्तमतपोधर्मांगाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

दान चार परकार, चारसंघको दीजिये।
धन बिजुरी उनहार, नरभवलाहो लीजिये ॥ ८ ॥
उत्तमत्याग कह्यो जगसारा। औषध शास्त्र अभय आहारा।
निहचै रागद्वेष निरवारै। ज्ञाता दोनों दान सँभारै ॥
दोनों सँभारै कूपजल सम, दरब घरमें परिनया।

निजहाथ दीजे साथ लीजे, खाय खोया वह गया ॥
धनि साध सास्त्र अभयदिवैया, त्याग राग विरोधकों ॥
विन दान श्रावक साध दोनों, लहैं नाहीं बोधकों ॥ ८ ॥
ओंह्रीं उत्तमत्यागधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

परिगह चौविस भेद, त्याग करैं मुनिराज जी।
त्रिसनाभाव उछेद, घटती जान घटाइए॥ ९ ॥
उत्तम आकिंचन गुण जानों। परिगहचिंता दुख ही मानो॥
फाँस तनकसी तनमें साले। चाह लँगोटीकी दुख भाले॥
भालै न समता सुख कभी नर, विना मुनिमुद्रा धरैं।
धनि नगनपर तन-नगन ठाडे, सुर असुर पायनि परैं॥
घरमाहिं त्रिसना जो घटावे, रुचि नहीं संसारसों।
बहुधन बुरा हू भला कहिये, लीन पर उपगारसों॥ ९ ॥
ओं ह्रीं उत्तमाकिंचन्यधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

शीलबाड नौ राख, ब्रह्मभाव अंतर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नरभव सदा ॥१०
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनो। माता बहिन सुता पहिचानो॥
सहैं बानवरषा बहु सूरे। टिकैं न नैन बान लखि क्रूरे॥
क्रूरे तियाके अशुचितनमें कामरोगी रति करै।
बहु मृतक सड़हिं मसानमाहीं, काक ज्यों चोंचैं भरै॥
संसारमें विषवेल नारी, तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरमदशपैडि चढिकैं, शिवमहलमें पग धरा ॥११
ओं ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्यधर्मांगाय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

अथ समुच्चय जयमाला।

दोहा—दशलच्छन वंदों सदा, मनवांछित फलदाय।

स्वप्ने यदीया जननी क्षपायां गजादिवह्न्यंतमिदं ददर्श।
यत्तात इत्याह गुरुः परोऽयं नौमि प्रमोदादभिनंदनं तं ॥ ४।
कुवादिवादं जयता महांतं नयप्रमाणैर्वचनैर्जगत्सु।
जैनं मतं विस्तरितं च येन तं देवदेवं सुमतिं नमामि ॥ ५॥
यस्यावतारे सति पितृधिष्ण्ये ववर्ष रत्नानि हरेर्निदेशात्।
घनाधिपः पण्णवमासपूर्वं पद्मप्रभं तं प्रणमामि साधुं ॥ ६॥
नरेंद्रसर्पेश्वरनाकनाथैः वाणी भवंती जगृहे स्वचित्ते।
यस्यात्मबोधः प्रथितः सभायामहं सुपार्श्वं ननु तं नमामि ॥७॥
सत्प्रातिहार्यातिशयप्रपन्नो गुणप्रवीणो हतदोषसंगः।
यो लोकमोहांधतमःप्रदीपश्चंद्रप्रभं तं प्रणमामि भावात् ॥ ८॥
गुप्तित्रयं पंच महाव्रतानि पंचोपदिष्टा समितिश्च येन।
बभाण यो द्वादशधा तपांसि तं पुष्पदंतं प्रणमामि देवं ॥ ९।
ब्रह्मव्रतांतो जिननायकेनोत्तमक्षमादिर्दशधापि धर्मः।
येन प्रयुक्तो व्रतबंधबुद्ध्या तं शीतलं तीर्थकरं नमामि ॥ १०।
गणे जनानंदकरे धरांते विध्वस्तकोपे प्रशमैकचित्ते।
यो द्वादशांगं श्रुतमादिदेश श्रेयांसमानौमि जिनं तमीशं ॥११
मुक्त्यंगनाया रचिता विशाला रत्नत्रयीशेखरता च येन।
यत्कंठमासाद्य बभूव श्रेष्ठा तं वासुपूज्यं प्रणमामि वेगात् ॥१२
ज्ञानी विवेकी परमस्वरूपी ध्यानी व्रती प्राणिहितोपदेशी।
मिथ्यात्वघाती शिवसौख्यभोजी बभूव यस्तं विमलं नमामि
आभ्यंतरं बाह्यमनेकधा यः परिग्रहं सर्वमपाचकार।
यो मार्गमुद्दिश्य हितं जनानां वंदे जिनं तं प्रणमाम्यनंतं ॥१४
सार्द्धं पदार्था नव सप्ततत्त्वैः पंचास्तिकायाश्च न कालकायाः।

षड्द्रव्यनिर्णीतिरलोकयुक्तिर्येनोदिता तं प्रणमामि धर्मं ॥१५
यश्चक्रवर्ती भुवि पंचमोऽभूच्छ्रीनंदनो द्वादशको गुणानां ।
निधिप्रभुः षोडशको जिनेंद्रस्तं शांतिनाथं प्रणमामि भेदात् ।
प्रशंसितो यो न बिभर्ति हर्षं विराधितो यो न करोति रोषं ।
शीलव्रताद् ब्रह्मपदं गतो यस्तं कुंथुनाथं प्रणमामि हर्षात् ॥१७॥
यः संस्तुतो यः प्रणतः सभायां यः सेवितोंतर्गणपूरणाय ।
पदाच्युतैः केवलिभिर्जिनस्य देवाधिदेवं प्रणमाम्यरं तं ॥ १८ ॥
रत्नत्रयं पूर्वभवांतरे यो व्रतं पवित्रं कृतवानशेषं ।
कायेन वाचा मनसा विशुद्ध्या, तं मल्लिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥
ब्रुवन्नमः सिद्धिपदाय वाक्य,-मित्यग्रहीद्यः स्वयमेव लोचं ।
लौकांतिकेभ्यः स्तवनं निशम्य, वंदे जिनेशं मुनिसुव्रतं तं ॥२०॥
विद्यावते तीर्थंकराय तस्मा,-याहारदानं ददतो विशेषात् ।
गृहे नृपस्याजनि रत्नवृष्टिः, स्तौमि प्रणामान्नयतो नमिं तं ।२१।
राजीमतीं यः प्रविहाय मोक्षे, स्थितिं चकारापुनरागमाय ।
सर्वेषु जीवेषु दयां दधानस्तं नेमिनाथं प्रणमामि भक्त्या ॥
सर्पाधिराजः कमठारितोयै,-र्ध्यानस्थितस्यैव फणावितानैः ।
स्योपसर्गं निरवर्तयत्तं, नमामि पार्श्वं महतादरेण ॥ २३ ॥
वार्णवे जंतुसमूहमेन,-माकर्षयामास हि धर्मपोतात् ।
ज्जंतमुद्वीक्ष्य य एनसापि, श्रीवर्द्धमानं प्रणमाम्यहं तं ॥२४॥
धर्मं दशधा करोति पुरुषः स्त्री वा कृतोपस्कृतं
र्वज्ञध्वनिसंभवं त्रिकरणव्यापारशुद्ध्यानिशं ।
नां जयमालया विमलया पुष्पांजलिं दापय-
त्यं संश्रियमातनोति सकलं स्वर्गापवर्गस्थितिं ॥ २५ ॥

६७। अथ स्वयंभूस्तोत्र भाषा।

चौपाई।

राजविषै जुगलनि सुख कियो। राज त्याग भवि शिवपद लियो॥ स्वयंबोध स्वंभू भगवान। वंदौं आदिनाथ गुणखान॥ १॥ इंद्र छीरसागरजललाय। मेरु न्हवाये गाय बजाय॥ मदनविनाशक सुखकरतार। वंदौं अजित अजितपदकार॥ २॥ शुकलध्यानकरि करमविनाशि। घाति अघाति सकल दुखराशि॥ लह्यो मुकतिपदसुख अविकार। वंदौं संभव भवदुख टार॥ ३॥ माता पच्छिम रयनमझार। सुपने सोलह देखे सार॥ भूप पूछि फल सुनि हरषाय। वंदौं अभिनंदन मन लाय॥४॥ सब कुवादवादीसरदार। जीते स्याद्वादधुनिधार॥ जैनधरमपरकाशक स्वाम। सुमतिदेवपद करहुं प्रनाम॥ ५॥ गर्भ अगाऊ धनपति आय। करी नगर-शोभा अधिकाय॥ बरसे रतन पंचदश मास। नमौं पदमप्रभु सुखकी रास॥ ६॥ इंद फनिंद नरिंद त्रिकाल। बानी सुनि सुनि होहिं खुस्याल॥ द्वादशसभा ज्ञानदातार। नमौं सुपारसनाथ निहार॥ ७॥ सुगुन छियालिस हैं तुममाहिं। दोष अठारह कोऊ नाहिं॥ मोहमहातमनाशक दीप। नमौं चंद्रप्रभ राख समीप॥ ८॥ द्वादशविधि तप करम विनाश। तेरह भेद चरित परकाश॥ निज अनिच्छ भविइच्छकदान। वंदौं पुहुपदंत मन आन॥ ९॥ भविसुखदाय सुरगतैं आय। दशविधि धरम कह्यो जिनराय॥ आप समान सबनि सुख देह। वंदौं शीतल धर्मसनेह॥ १०॥ समतासुधा कोपविष

नाश । द्वादशांगवानी परकाश ॥ चारसंघ आनँददातार । नमों श्रियांस जिनेश्वर सार ॥ ११ ॥ रतनत्रयचिरमुकुट-विशाल । सोभै कंठ सुगुनमनिमाल ॥ मुक्तिनार भरता भगवान । वासुपूज वंदों धर ध्यान ॥ १२ ॥ परम समाधि-सरूप जिनेश । ज्ञानी ध्यानी हितउपदेश ॥ कर्मनाशि शिवसुख विलसंत । वंदों विमलनाथ भगवंत ॥ १३ ॥ अंतर वाहिर परिगह डारि । परमदिगंवरव्रतको धारि ॥ सर्वजीवहित राह दिखाय । नमों अनंत वचनमनलाय ॥१४॥ सात तत्त्व पंचासतिकाय । अरथ नमों छदरव वहु-भाय ॥ लोक अलोक सकल परकाश । वंदौ धर्मनाथ अवि नाश ॥ १५ ॥ पंचम चक्रवरति निधिभोग । कामदेव द्वाद-शम मनोग ॥ शांतिकरन सोलम जिनराय । शांतिनाथ वंदौ हरखाय ॥ १६ ॥ वहु थुति करे हरष नहिं होय । निंदे दोष गहैं नहिं कोय । शीलवान परब्रह्मस्वरूप । वंदों कुंथु-नाथ शिवभूप ॥ १७ ॥ द्वादशगण पूजें सुखदाय । थुति वंदना करैं अधिकाय ॥ जाकी निजथुति कवहुं न होय । वंदों अरजिनवर पद दोय ॥ १८ ॥ परभव रतनत्रय अनु-राग । इह भव व्याहसमय वैराग ॥ वालब्रह्मपूरनव्रतधार । वंदों मल्लिनाथ जिनसार ॥ १९ ॥ विन उपदेश स्वयं वैराग । थुति लौकांत करैं पगलाग ॥ नमःसिद्ध कहि सव व्रत लेहिं वंदों मुनिसुव्रत व्रत देहिं ॥ २० ॥ श्रावक विद्यावंत निहार । भगतिभावसों दियो अहार ॥ वरसी रतन राशि ततकाल । वंदों नमिप्रभु दीनदयाल ॥ २१ ॥ सव जीवनकी वंदी

रागरोष द्वै बंधन तोर ॥ रजमति तजि शिवतियसों मिले।
नेमिनाथ वंदों सुखनिले ॥२२॥ दैत्य कियो उपसर्ग अपार।
ध्यान देखि आयो फनिधार ॥ गयो कमठ शठ मुख कर
श्याम। नमों मेरुसम पारसस्वाम ॥ २३ ॥ भवसागरतें जीव
अपार। धरमपोतमें धरे निहार ॥ डूबत काढे दया विचार।
वर्द्धमान वंदों बहुवार ॥ २४ ॥

दोहा—चौबीसों पदकमलजुग, वंदों मनवचकाय।
'द्यानत' पढे सुनै सदा, सो प्रभु क्यों न सहाय ॥२५॥

९८। अथ रत्नत्रयपूजा भाषा।

दोहा।

चहुंगतिफनिविषहरनमणि, दुखपावक जलधार।
शिवसुखसुधासरोवरी, सम्यक्त्रयी निहार ॥ १ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट् सन्निधिकरणम्। सोरठा।

छीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनों।
जनमरोग निरवार, सम्यकरत्नत्रय भजूं ॥ १ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय जन्मरोगविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

चंदन केसर गारि, परिमल महासुगंधमय। जन्मरो० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

तंदुल अमल चितार, बासमती सुखदासके। जन्मरो० ॥३॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

महकें फूल अपार, अलि गुंजें ज्यों थुति करें। जन्मरो० ॥४॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगंधयुत। जन्मरो० ॥५॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

दीपरतनमय सार, जोत प्रकाशै जगतमें । जन्मरो० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

धूप सुवास विथार, चंदन अगर कपूरकी । जन्मरो० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

फल शोभा अधिकार, लौंग छुहारे जायफल । जन्मरो० ॥८॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

आठदरब निरधार, उत्तमसों उत्तम लिये । जन्मरो० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

सम्यकदरशन ज्ञान, व्रत शिवमग तीनों मयी ।

पार उतारन यान, 'द्यानत' पूजों व्रतसहित ॥ १० ॥

ओं ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

दर्शनपूजा ।

दोहा—सिद्ध अष्टगुनमय प्रगट, मुक्त जीवसोपान ।

जिहँविन ज्ञानचरित अफल, सम्यकदर्श प्रधान ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शन ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

सोरठा ।

नीर सुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै ।

सम्यकदर्शनसार, आठअंग पूजों सदा ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जल केसर घनसार, ताप हरै सीतल करै । सम्यकद० ॥ २ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै । सम्यकद० ॥ ३ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै । सम्यकद० ॥ ४ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

नेवज विविधप्रकार, छुधा हरै थिरता करै। सम्यकद० ॥ ५ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

दीपज्योति तमहार, घटपट परकाशै महा। सम्यकद० ॥ ६ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

धूप घ्रानसुखकार, रोग विघन जड़ता हरै। सम्यकद० ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

श्रीफलआदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै। सम्यकद० ॥ ८ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फलफूल चरु। सम्यकद० ॥ ९ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ॥

जयमाला।

दोहा—आप आप निहचै लखै, तत्त्वप्रीति व्योहार।
रहितदोष पच्चीस है, सहित अष्ट गुन सार ॥ १ ॥

चौपाई मिश्रित गीताछन्द।

सम्यकदरशन रतन गहीजै। जिनवचमें संदेह न कीजै।
इह भव विभवचाह दुखदानी। परभवभोग चहै मत प्रानी ॥
प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरमगुरुप्रभु परखिये ॥
परदोष ढकिये धरम डिगतेको, सुथिर कर हरखिये ॥
चहुंसंघको वात्सल्य कीजै, धरमकी परभावना।
गुन आठसों गुन आठ लहिकैं, इहां फेर न आवना ॥ २ ॥

ओं ह्रीं अष्टांगसहितपंचविंशतिदोषरहिताय सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं निर्वपा० [illegible]।

ज्ञानपूजा।

दोहा—पंचभेद जाके प्रगट, ज्ञेयप्रकाशन भान।
मोह-तपन-हर-चंद्रमा, सोई सम्यकज्ञान ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञान ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

सोरठा ।

नीरसुगंध अपार, त्रिषा हरै मल छय करै ।
सम्यकज्ञान विचार, आठभेद पूजों सदा ॥ १ ॥

ओं ह्रीं अष्टविधिसम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जलकेसर घनसार, ताप हरै शीतल करै । सम्यकज्ञा० ॥२॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अक्षत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै । सम्यकज्ञा० ।३।

ओं ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

पहुपसुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै । सम्यक० । पुष्पं
नेवज विविधप्रकार, छुधा हरै थिरता करै । सम्यकज्ञा० । नै०
दीप ज्योति तमहार, घटपट परकाशै महा । सम्यक० । दीपं
धूप घ्रानसुखकार, रोग विघन जडता हरै । सम्यकज्ञा० । धूपं
श्रीफल आदि विथार, निहचै सुरशिवफल करै । सम्य० । फलं
जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु । सम्यकज्ञा० । अर्घं

अथ जयमाला ।

दोहा—आप आप जानै नियत, ग्रंथपठन व्योहार ।
संसय विभ्रम मोह विन, अष्टअंग गुनकार ॥ १ ॥

चौपाई-मिश्रित गीताछंद ।

सम्यकज्ञान रतन मन भाया, आगम तीजा नैन वताया ।
अच्छर शुद्ध अरथ पहिचानौ, अच्छर अरथ उभय सँग जानौं
जानौ सुकालपठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये ।
तपरीति गहि बहु मान देकें, विनयगुन चितलाइये ॥
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान-दर्पन देखना ।

इस ज्ञानहीसों भरत सीझा, और सब पटपेखना ॥ २ ॥

ओं ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ॥

चारित्रपूजा ।

दोहा—विषयरोग औषध महा, दवकषायजलधार ।
तीर्थंकर जाको धरें, सम्यकचारितसार ॥ १ ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्र ! अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ॥

सोरठा ।

नीरसुगंध अपार, त्रिषा हरे मल छय करे ।
सम्यकचारितसार, तेरहविध पूजों सदा ॥ १ ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

जल केशर घनसार, ताप हरे शीतल करे । सम्यकचारित० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

अछत अनूप निहार, दारिद नाशे सुख भरे । सम्यकचा० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

पहुपसुवास उदार, खेद हरे मन शुचि करे । सम्यकचारित० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

नेवज विविधप्रकार छुधा हरे थिरता करे । सम्यकचा० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

दीपजोति तमहार, घटपट परकाशे महा । सम्यकचा० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ६ ॥

धूप घ्रान सुखकार, रोग विघन जडता हरे । सम्यकचा० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुरशिवफल करे । सम्यकचा० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ८ ॥

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु। सम्यक्चा० ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

अथ जयमाला।

दोहा—आप आप थिर नियत नय; तपसंजम व्योहार।
स्वपरदया दोनों लिये, तेरहविध दुखहार ॥ १ ॥

चौपाई मिश्रित गीताछंद।

सम्यक्चारित रतन सँभालौ, पांच पाप तजिके व्रत पालौ।
पंचसमिति त्रय गुपति गहीजै, नरभव सफल करहु तन छीजै ॥
छीजै सदा तनको जतन यह एक संजम पालिये।
बहु रुल्यो नरक निगोदमाहीं, विषकषायनि टालिये।
शुभकरम जोग सुघाट आया, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरमकी नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है ॥ २ ॥

ओं ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ३ ॥

अथ समुच्चय जयमाला।

दोहा—सम्यक्दरशन-ज्ञान-व्रत, इन विन मुकति न होय।
अंध पंगु अरु आलसी, जुदे जलैं दव-लोय ॥ १ ॥

चौपाई १६ मात्रा।

जापै ध्यान सुथिर बन आवै। ताके करमबंध कट जावै ॥
तासों शिवतिय प्रीति बढावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥१॥
ताको चहुंगतिके दुख नाहीं। सो न परै भवसागरमाहीं ॥
जनमजरामृतु दोष मिटावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥ ३ ॥
सोई दशलच्छनको साधै। सो सोलहकारण आराधै।
सो परमातम पद उपजावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै ॥ ४ ॥
सोई शक्रचक्रिपद लेई। तीनलोकके सुख विलसेई ॥

सो रागादिक भाव वहावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै॥ ५॥
सोई लोकालोक निहारै। परमानंददशा विसतारै॥
आप तिरै औरन तिरवावै। जो सम्यकरतनत्रय ध्यावै॥ ६॥
दोहा—एकस्वरूपप्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब, 'द्यानत' कों सुखदाय॥ ७॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

(अर्घके बाद विसर्जन करना चाहिये)

६६। दीपावली श्रीवर्द्धमानजिनपूजा।

मत्तगयंद।

श्रीमतवीर हरैं भवपीर, भरैं सुखसीर अनाकुलताई।
केहरिअंक अरीकरदंक, नये हरिपंकतिमौलि सुआई॥
मैं तुमको इत थापतु हौं प्रभु, भक्ति समेत हिये हरखाई।
हे करुणाधनधारक देव, इहां अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई॥

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेंद्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्॥ १॥
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेंद्र। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः॥ २॥
ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेंद्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्॥ ३॥

अष्टक।

छंद अष्टपदी।

(द्यानतरायकृत नंदीश्वराष्टकादिक अनेक रागोंमें भी बनतो है)

क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचनभृंग भरों।
प्रभु वेग हरो भवपीर, यातैं धार करों॥
श्रीवीरमहा अतिवीर सन्मतिनायक हो।
जय वर्द्धमान गुणधीर सन्मतिदायक हो॥ १॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

मलयागिरचंदनसार, केसरसंग घसों।

प्रभु भव आताप निवार, पूजत हिय हुलसों ॥ श्रीवीर० ॥
ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय भवातापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

तंदुलसित शशिसम शुद्ध, लीनों थार भरी।
तसु पुंज धरों अविरुद्ध, पावों शिवनगरी ॥ श्री वीर० ॥
ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामि स्वाहा ॥ ३ ॥

सुरतरुके सुमन समेत, सुमन सुमनप्यारे।
सो मनमथभंजनहेत, पूजों पद थारे ॥ श्रीवी० ॥ ४ ॥
ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ४ ॥

रसरज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी।
पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी ॥ श्रीवीर० ५ ॥
ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

तमखंडित मंडितनेह, दीपक जोवत हों।
तुम पदतर हे सुखगेह, भ्रमतम खोवत हों। श्रीवीर० ॥ ६ ॥
ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

हरिचंदन अगर कपूर, चूर सुगन्ध करा।
तुम पदतर खेवत भूरि, आठों कर्म जरा ॥ श्रीवीर० ७ ॥
ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ७ ॥

रितुफल कलवर्जित लाय, कंचनथार भरों।
शिव फलहित हे जिनराय, तुमढिंग भेट धरों। श्रीवीर०।८।
ओं ह्रीं श्रीमहावीरजिनेंद्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा। ८।

जलफल वसु सजि हिमथार, तनमनमोद धरों।
गुण गाऊं भवदधितार, पूजत पाप हरों। श्रीवीर० ॥ ९ ॥
ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेंद्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ९ ।

पंचकल्याणक।

राग टप्पाचाल।

मोहि राखो हो सरना, श्रीवर्द्धमान जिनरायजी, मोहि राखो०।

गरभ साढ सहित छट्ठ लियो तिथि, त्रिशला उर अघ हरन
सुर सुरपति तितसेव करयो नित, मैं पूजों भवतरना। मो
ओं ह्रीं आषाढ़शुक्लषष्ठ्यां गर्भमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय अर्घ्यं नि॰
जनम चैतसित तेरसके दिन, कुंडलपुर कनवरना। सुरि
सुरगुरु पूज रचायो, मैं पूजों भवहरना ॥ मोहिरा॰ ॥ २
ओं ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां जन्ममंगलप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय अर्घं निर्व॰
मँगसिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना।
नृप कुमारघर पारन कीनों, मैं पूजों तुम चरना। मोहिरा
ओं ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमंगलमण्डिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय अर्घं नि
शुकलदशैं वैशाखदिवस अरि, घात चतुक छयकरना ॥
केवललहि भवि भवसर तारे, जजों चरन सुख भरना। मो॰
ओं ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानकल्याणप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय अर्घं नि॰
कातिक श्याम अमावस शिवतिय, पावापुरतें परना।
गनफनिवृंद जजे तित बहुविधि, मैं पूजों भयहरना। मो॰
ओं ह्री कार्तिककृष्णामावस्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेंद्राय अर्घं नि॰

जयमाला।

छंद हरिगीता २८ मात्रा।

गनधर अशनिधर, चक्रधर, हरधर, गदाधर वरवदा।
अरु चापधर, विद्यासुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा ॥
दुखहरन आँनदभरन तारन, तरन चरन रसाल हैं।
सुकुमाल गुनमनिमाल उन्नत, भालकी जयमाल हैं ॥ १ ॥

छंद घत्तानन्द।

जय त्रिशलानंदन, हरिकृतवंदन, जगदानंदन, चंदवरं।
भवतापनिकंदन, तनकनमंदन, रहित सपंदन नयन धरं ॥२

छंद तोटक ।

जय केवलभानुकलासदनं । भविकोकविकाशनकंदवनं ॥ जगजीत महारिपु मोहहरं । रजज्ञानदृगावर चूरकरं ॥ १ ॥ गर्भादिकमंगलमंडित हो । दुखदारिदको नित खंडित हो ॥ जगमाहिं तुमी सत पंडित हो । तुम ही भवभावविहंडित हो । हरिवंशसरोजनकों रवि हो । बलवंत महंत तुमी कवि हो ॥ लहि केवल धर्मप्रकाश कियो । अबलों सोई मारगराजति यो पुनि आपतने गुनमाहिं सही । सुर मग्न रहैं जितने सबही ॥ तिनकी वनिता गुनगावत हैं । लयमाननिसों मनभावत हैं ॥ ॥ ४ ॥ पुनि नाचत रंग उमंग भरी । तुअ भक्तिविषै पग एम धरी ॥ झननं झननं झननं झननं । सुरलेत तहाँ तननं तननं ॥५॥ घननं घननं घनघंट बजै । दमदं दमदं मिरदंग सजै ॥ गगनांगनगर्भगता सुगता । ततता ततता अतता वितता ॥ ६ ॥ धृगतां धृगतां गति बाजत हैं । सुरताल रसाल जु छाजत हैं ॥ सननं सननं सननं नभमें । इकरूप अनेक जु धारि भमें ॥ ७ ॥ कई नारि सु बीन बजावति हैं । तुमरो जस उज्वल गावति हैं ॥ करतालविषै करताल धरैं । सुरताल विशाल जु नाद करैं ॥ ८ ॥ इन आदि अनेक उछाहभरी । सुरभक्ति करैं प्रभुजी तुमरी ॥ तुमही जगजीवनके पितु हो । तुमही बिनकारनतें हितु हो ।९। तुमही सब विघ्न विनाशन हो । तुमही निज आनँद भासन हो ॥ तुमही चितचिंतितदायक हो, जगमाहिं तुमी सब लायक हो ॥१०। तुमरे पनमंगलमाहिं सही । जिय उत्तम पुन्यलियो सब ही ॥ हमको तुमरी सरना-

गत है। तुमरे गुनमें मन पागत है ॥ ११ ॥ प्रभु मोहिय आप सदा वसिये। तवलों वसुकर्म नहीं नसिये॥ तवलों तुम ध्यान हिये वरतो। तवलों श्रुतचिंतन चित्त रतो ॥ १२॥ तवलों व्रत चारित चाहतु हों। तवलों शुभभाव सुगाहतु हों तवलों सतसंगति नित्त रहौं। तवलों मम. संजम चित्त गहौं ॥ १३ ॥ जवलों नहिं नाश करों अरिको। शिवनारि वरों समता धरिको ॥ यह द्यो तवलों हमको जिनजी। हम जाचतु हैं इतनी सुनजी। ॥ १४ ॥

घत्तानंद।

श्रीवीरजिनेशा नमितसुरेशा, नागनरेशा भगति भरा।
'वृंदावन' ध्यावै विघन नशावै वांछित पावै शर्म वरा ॥१५॥

ओं ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय महार्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

दोहा—श्रीसनमतिके जुगल पद, जो पूजै धरि प्रीत।
वृंदावन सो चतुर नर, लहै मुक्तिनवनीत ॥ १६ ॥

इत्याशीर्वादः। परिपुष्पांजलिं क्षिपेत्।

१००। निर्वाणकांड (गाथा)।

अट्ठावयम्मि उसहो चंपाए वासुपुज्जजिणणाहो। उज्जंते णेमिजिणो पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥ १ ॥ वीसं तु जिणवरिंदा अमरासुरवंदिदा धुदकिलेसा। सम्मेदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ २ ॥ वरदत्तो य वरंगो सायरदत्तो य तारवरणयरे। आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥३॥ णेमिसामि पज्जण्णो संवुकुमारो तहेव अणिरुद्धो। वाहत्तरिकोड़ीओ उज्जंते सत्तसया सिद्धा ॥ ४ ॥ रामसुवा

वेण्णि जणा लाडणरिंदाण पंचकोड़ीओ। पावागिरिवरसि
णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ ५ ॥ पंडुसुआ तिण्णिजणा द
डणरिंदाण अट्ठकोडीओ। सेत्तुंजयगिरिसिहरे णिव्वाणग
णमो तेसिं ॥ ६ ॥ संते जे वलभद्दा जदुव णरिंदाण अट्ठको
डीओ। गजपंथे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥७॥
रामहणू सुग्गीओ गवयगवाक्खो य णीलमहणीलो। णवण-
वदीकोडीओ तुंगीगिरिणिव्वुदे वंदे ॥ ८ ॥ णंगाणंगकुमारा
कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया। सुवणागिरिवरसिहरे णिव्वाण-
गया णमो तेसिं ॥ ९ ॥ दहमुहरायस्स सुवा कोडीपंचद्धमुणि-
वरा सहिया। रेवाउहयतडग्गे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१०॥
रेवाणइए तीरे पच्छिमभायम्मि सिद्धवरकूडे। दो चक्की दह
कप्पे आहुट्ठयकोडिणिव्वुदे वंदे ॥ ११ ॥ वडवाणीवरणयरे
दक्खिणभायम्मि चूलगिरिसिहरे। इंदजीदकुंभयणो णिव्वाण-
गया णमो तेसिं ॥ १२ ॥ पावागिरिवरसिहरे सुवण्णभद्दाइ-
मुणिवरा चउरो। चलणाणईतडग्गे णिव्वाणगया णमो तेसिं
॥ १३ ॥ फलहोडीवरगामे पच्छिमभायम्मि दोणगिरिसिहरे।
गुरुदत्ताइमुणिंदा णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ १४ ॥ णाय-
कुमारमुणिंदो वालि महावालि चेव अज्झेया। अट्ठावयगिरि-
सिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ १५ ॥ अचलपुरवरणयरे
ईसाणे भायमेढगिरिसिहरे। आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाणगया
मो तेसिं ॥ १६ ॥ वंसत्थलवणणियरे पच्छिमभायम्मि कुंथु-
रिसिहरे। कुलदेसभूसणमुणी णिव्वाणगया णमो तेसिं
१७ ॥ जसरहरायस्स सुआ पंचसयाइं कलिंगदेसम्मि।

कोडिसिलाकोडिमुणि णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ १८। पासस्स समवसरणे सहिया वरदत्तमुणिवरा पंच । रिस्सिंदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥ १९ ॥

अथ अइसयखेत्तकंडं—अतिशयक्षेत्रकांडं ।

पासं तह अहिणंदण णायद्दहि मंगलाउरे वंदे । अस्सारम्मे पट्टणि मुणिसुव्वओ तहेव वंदामि ॥१॥ वाहूवलि तह वंदमि पोयणपुरहत्थिणापुरं वंदे । संति कुंथव अरिहो वाणारसिए सुपासपासं च ।२। महुराए अहिछित्ते वीरं पासं तहेव वंदामि। जंवुमुणिंदो वंदे णिव्वुइपत्तोवि जंवुवणगहणे ॥ ३ ॥ पंचक्लाणठाणइं जाणवि संजादमज्झलोयम्मि । मणवयणकायसुद्धी सव्वं सिरसा णमस्सामि ॥ ४ ॥ अग्गलदेवं वंदमि वरणयरे णिवडकुंडली वंदे । पासं सिवपुरि वंदमि होलागिरिसंखदेवम्मि ॥ ५ ॥ गोमटदेवं वंदमि पंचसयं धणुहदेहउच्चतं । देवा कुणंति वुट्ठी केसरिकुसुमाण तस्स उवरिम्मि ॥ ६ ॥ णिव्वाणठाण जाणिवि अइसयठाणाणि अइसए सहिया । संजादमिच्चलोए सव्वे सिरसा णमस्सामि ॥ ७ ॥ जो जण पढइ तियालं णिव्वुइकंडंपि भावसुद्धीए । भुंजदि णरसुरसुक्खं पच्छा सो लहइ णिव्वाणं ॥ ८ ॥ इति अइसइखित्तकंडं ।

१०१ । अथ निर्वाणकांड भाषा ।

दोहा—वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय ।
कहुं कांड निर्वाणकी, भाषा सुगम बनाय ॥ १ ॥

चौपाई १५ मात्रा ।

अष्टापद आदीसुरस्वामि । वासुपूज्य चंपापुरि नामि ॥

नेमिनाथस्वामी गिरनार। वंदों भाव भगति उरधार ॥ २ ॥ चरम तीर्थंकर चरम शरीर । पावापुरि स्वामी महावीर ॥ शिखरसमेद जिनेसुर वीस । भावसहित वंदों निशदीस ॥ ३ ॥ वरदतराय रु इंद मुनिंद । सायरदत्त आदि गुणवृंद ॥ नगरतारवर मुनि उंठकोड़ि । वंदों भावसहित कर जोड़ि ॥ ४ ॥ श्रीगिरनारशिखर विख्यात। कोडि वहत्तर अरु सौ सात ॥ संबु प्रदुम्न कुमर द्वै भाय। अनिरुध आदि नमूं तसु पाय ॥ ५ ॥ रामचंद्रके सुत द्वै वीर। लाडनरिंद आदि गुण-धीर ॥ पांचकोडि मुनि मुक्तिमझार । पावागिरि वंदों निरधार ॥ ६ ॥ पांडव तीन द्रविडराजान । आठकोडि मुनि मुकति पयान ॥ श्रीशत्रुंजयगिरिके सीस । भावसहित वंदों निशदीस ॥ ७ ॥ जे बलभद्र मुकतिमें गये। आठकोडि मुनि औरहिं भये ॥ श्रीगजपंथशिखर सुविशाल। तिनके चरण नमूं तिहुंकाल ॥८॥ राम हनू सुग्रीव सुडील। गवगवाख्य नील महानील ॥ कोडि निन्याणवै मुक्तिपयान । तुंगीगिरि वंदों धरि ध्यान ॥ ९ ॥ नंग अनंगकुमार सुजान । पांचकोडि अरु अर्ध प्रमान ॥ मुक्ति गये सोनागिरिशीश । ते वंदों त्रिभुवनपति ईश ॥ १० ॥ रावणके सुत आदिकुमार। मुक्ति गये रेवातट सार ॥ कोडि पंच अरु लाख पचास । ते वंदों धरि परम हुलास ॥ ११ ॥ रेवानदी सिद्धवरकूट । पश्चिम-दिशा देह जहँ छूट ॥ द्वै चक्री दश कामकुमार । ऊठकोडि वंदों भवपार ॥ १२ ॥ बड़वानी बडनयर सुचंग । दक्षिण

१—साढ़े तीन किरोड़ ।

दिश गिरिचूल उत्तंग ॥ इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण । ते ..
भवसायर तर्ण ॥ १३ ॥ सुवरणभद्र आदि मुनि चार । पाव
गिरिवर शिखरमझार ॥ चलना नदी तीरके पास । मुक्ति गये
वंदों नित तास ॥ १४ ॥ फलहोडी वडगाम अनूप । पश्चिम
दिशा द्रोणगिरि रूप ॥ गुरुदत्तादि मुनीसुर जहां । मुक्ति गये
वंदों नित तहां ॥ १५ ॥ बाल महाबाल मुनि दोय । नाग
कुमार मिले त्रय होय ॥ श्रीअष्टापद मुक्तिमझार । ते वंदों
नित सुरत संभार ॥ १६ ॥ अचलापुरकी दिश ईशान । तहां
मेढ्रगिरि नाम प्रधान ॥ साढे तीन कोडि मुनिराय । तिनके
चरण नमूं चित लाय ॥ १७ ॥ वंसस्थल वनके ढिंग होय ।
पश्चिमदिशा कुंथुगिरि सोय ॥ कुलभूषण दिशभूषण नाम ।
तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥ १८ ॥ जसरथराजाके सुत
कहे । देश कलिंग पांचसौ लहे ॥ कोटि शिला मुनि कोटि
प्रमान । वंदन करूं जोर जुगपान ॥ १९ ॥ समवसरण
श्रीपार्श्वजिनंद । रेसंदीगिरि नयनानंद ॥ वरदत्तादि पंच ऋषि
राज । ते वंदों नित धरमजिहाज ॥२०॥ तीन लोकके तीरथ
जहां । नितप्रति वंदन कीजे तहां ॥ मन वच कायसहित सिर
नाय । वंदन करहिं भविक गुणगाय ॥ २१ ॥ संवत सतरहसौ
इकताल । अश्विनसुदि दशमी सुविशाल । 'भैया' वंदन
करहिं त्रिकाल । जय निर्वाणकांड गुणमाल ॥ २२ ॥ इति ॥

१०२ महावीराष्टक भाषा।

१ जिन्होंकी प्रज्ञामें, मुकुरसम चैतन्य जड़ भी, स्थिती
ध्रौव्योत्पत्ती, युत झलकते साथ सब ही। जगद्ज्ञाता मार्ग,

प्रकटकरता सूर्यसम जो, महावीरस्वामी, दरश हमको दें
प्रकट वे ॥ १ ॥ जिन्होंके दो चक्षू, पलक अरु लाली रहित
हो, जनोंको दर्शाते, हृदयगत क्रोधातिलयको। जिन्होंकी
शांतात्मा अतिविमलमूर्ती स्फुटमहा, महावीरस्वामी, दरश
हमको दें प्रकट वे ॥ २ ॥ नमंते इंद्रोंके, मुकुटमणिकी कांति.
धरता, जिन्होंके पादोंका, युग, ललित, संतप्त जनको।
भवामीका हर्ता, स्मरण करते ही सुजल है, महावीरस्वामी,
दरश हमको दें प्रकट वे ॥ ३ ॥ जिन्होंकी पूजासे, मुदितमन
मेंढक जवै, हुआ स्वर्गी ताही, समय गुणधारी अतिसुखी।
है जो मुक्तिके सुख भगत तो विस्मय कहा, महावीरस्वामी,
श हमको दें प्रगट वे ॥ ४ ॥ तपे सोने ज्योंभी, रहित
से, ज्ञानगृह हैं, अकेले नाना भी, नृपतिवर सिद्धार्थ सुत
न जन्मे भी श्रीमान्, भवरत नहीं अद्भुतगती, महावीर
ी, दरश हमको दें प्रकट वे ॥ ५ ॥ जिन्होंकी वाग्गंगा,
नयकल्लोल धरती, न्हवाती लोगोंको, सुविमल महा
लसे। अभी भी सेते हैं, बुधजन महाहंस जिसको,
रस्वामी. दरश हमको दें प्रगट वे ॥ ६ ॥ त्रिलोकीका
दनभट जो दुर्जय महा युवावस्थामें भी. वह दलित
वबलमे। प्रकाशी मुक्तीके. अतिसुखदाता जिन-
हावीरस्वामी. दरश हमको दें प्रगट वे ॥ ७ ॥ महा-
ा हरणकरना वैद्य सहज विना इच्छा बंधू, प्रथित-
ण करना। महाग भव्योंको सकल जगमें उत्तम
वीरस्वामी दरश हमको दें प्रकट वे ॥ ८ ॥

सँस्कृत वीराष्टक रच्यो, भागचंद रुचिवान।
तस भाषा अनुवाद यह, पढि पावै निर्वान ॥ १ ॥

१०३ । श्रीसम्मेदाचल पूजा ।

दोहा—सिद्धक्षेत्र तीरथ परम, है उतकृष्ट सुथान।
शिखरसमेद सदा नमों, होय पापकी हान ॥ १ ॥
अगणित मुनि जहतें गए, लोकशिखरके तीर।
तिनके पदपंकज नमो, नाशैं भवकी पीर ॥ २ ॥

अडिल।

है उज्वल वह क्षेत्र सुअति निरमल सही।
परम पुनीत सुठौर महा गुणकी मही ॥
सकल सिद्धिदातार महा रमणीक है।
वंदों निज सुखहेत अचल पद देत है ॥ ३ ॥

सोरठा।

शिखरसमेद महान, जगमें तीर्थ प्रधान है।
महिमा अद्भुत जान, अल्पमती मैं किमि कहों ॥ ४ ॥

सुन्दरी छंद।

सरस उन्नत क्षेत्र प्रधान है। अति सु उज्वल तीर्थ महान है ॥
करहिं भक्ति सु जे गुण गायकें। वरहिं सुर शिवके सुख जायकें॥

अडिल।

सुर हरि नर इन आदि और वंदन करें।
भवसागरतें तिरें, नहीं भवमें परें।
सफल होय तिन जन्म शिखर दरशन करें,
जनमजनमके पाप सकल छिनमें टरें ॥ ६ ॥

पद्धरी छंद।

श्रीतीर्थंकर जिनवर जु बीश, अरु मुनि असंख्य सब गुणन ईश

पहुंचे जहँतैं कैवल्य धाम, तिनको अब मेरी है प्रणाम ॥ ७॥

गीतिका छंद।

सम्मेदगढ है तीर्थ भारी सबहिकों उज्वल करे।
चिरकालके जे कर्म लागे दर्शतें छिनमें टरे॥
है परमपावन पुण्यदायक अतुलमहिमा जानिये।
अरु है अनूप सुरूप गिरिवर तासु पूजन ठानिये॥८॥

दोहा—श्रीसम्मेदशिखर सदा पूजों मनवचकाय।
हरत चतुर्गतिदुःखकों, मनवांछित फल दाय॥ ९॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।

ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।

इस प्रकार तीन बार ठोनेमें पुष्पोंसे आह्वननादि करें।

अथ अष्टक।

अडिल्ल।

क्षीरोदधि सम नीर सुनिरमल लीजिये।
कनक कलशमें भरके धारा दीजिये॥
पूजों शिखरसमेद सुमनवचकाय जी।
नरकादिकदुख्ख टरें अचलपद पाय जी॥ १॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो विंशतितीर्थंकराद्यसंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

पयमों घसि मलयागिरिचंदन लाइये। केसरि आदि कपूर सुगंध मिलाइये॥ पूजों शिखरसमेद०॥ नरका०॥ चदनं॥२॥
तन्दुल धवल सुवासित उज्वल धोयकें। हेमरतनके थार भरो शुचि होयकें॥ पूजों शिखरसमेद०॥ अक्षतान्॥ ३॥
सुरतरुके सम पुष्प अनूपम लीजिये। कामदाहदुखहरण

चरण प्रभु दीजिये ॥ पूजों शिखरसमेद० ॥ पुष्पं ॥ ४ ॥
कनकथार नैवेद्य सु पटरसतें भरे। देखत क्षुधा पलाय सुजिन आगें धरे ॥ पूजों शिखरसमेद० ॥ नरकादि० ॥ नैवेद्यं ॥५॥
लेकर मणिमय दीप सुज्योति प्रकाश है। पूजत होत सुज्ञान मोहतम नाश है ॥ पूजों शिखरसमेद० ॥ नरका०॥ दीपं ॥६॥
दशविधि धूप अनूप अगनिमें खेवहूं। अष्टकर्मको नाश होत सुख लेवहूं ॥ पूजों सिखरसमेद० ॥ नरका० ॥ धूपं ॥७॥
एला लोंग सुपारी श्रीफल लाइये। फल चढाय मनवांछित शिवफल पाइये ॥ पूजों शिखरसमेद० ॥ नरका०॥ फलं ॥८॥
जल गंधाक्षत पुष्प सुनेवज लीजिये। दीप धूप फल लेकर अर्घ सु दीजिये ॥ पूजों शिखरसम्मेद ॥ नरका०॥ अर्घ्यं ॥९॥

पद्धडि छंद।

श्रीविंशति तीर्थंकर जिनेंद्र। अरु असंख्यात जहतें मुनेंद्र ॥ तिनको करजोरि करों प्रणाम। जिनको पूजों तजि सकल काम ॥ महार्घं ॥

अडिल्ल।

जे नर परम सुभावनतें पूजा करें।
हरि हलि चक्री होंय राज छह खँड करें ॥
फेरि होंय धरणेंद्र इंद्रपदवी धरें।
नानाविध सुख भोगि बहुरि शिवतिय वरें ॥ ११ ॥

इत्याशीर्वाद: (पुष्पांजलिं क्षिपेत)

छंद जोगीरासा।

श्रीसम्मेदशिखरगिरि उन्नत, शोभा अधिक प्रमानों।
विंशति तिहँपर कूट मनोहर अदभुत रचना जानो ॥

श्रीतीर्थंकर वीस तहांतैं, शिपुर पहुंचे जाई।
तिनके पदपंकज जुग पूजों, अर्घ प्रत्येक चढाई॥ १ ॥
पुष्पांजलि क्षिपेत्।

नं० २४ अजितनाथ सिद्धवर कूट।

प्रथम सिद्धवर कूट सुजानों, आनंद मंगलदाई।
अजितनाथ जहंतें शिव पहुंचे पूजों मनवचकाई॥
कोडि जु अस्सी एक अरब मुनि, चौवन लाख जु गाई।
कर्म काटि निर्वाण पधारे, तिनकों अर्घ चढाई॥ २ ॥
ॐ ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसिद्धवरकूटतैं अजितनाथजिनेंद्रादिमुनि असीकोटि एक अरब चौवनलाख सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २ ॥

नं० १४ सम्भवनाथ धवलकूट।

धवलदत्त है कूट दूसरो, सब जियको सुखकारी।
श्रीसम्भव प्रभु मुक्ति पधारे पापतिमिरिकों टारी॥
धवलदत्त दे आदि मुनी, नव कोडाकोडी जानो।
लाख बहत्तरि सहस वियालिस, पंचशतक ऋषि मानो॥
कर्मनाश करि शिवपुर पहुंचे, वंदों शीश नवाई।
तिनके पदजुग जजहुं भावसों, हरपि २ चितलाई॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रधवलदत्तकूटतैं सम्भवनाथजिनेंद्रादि मुनि नौकोडाकोडी बहत्तरलाख ब्यालीसहजार पांचसौ सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्व० स्वाहा ॥ ३ ॥

नं० १६ अभिनंदननाथ आनंदकूट।

दोहा।

आनंदकूट महासुखदाय। अभिनंदन प्रभु शिवपुर जाय॥
कोडाकोडि बहत्तर जान। सत्तरकोडि लक्षछत्तिस मान॥
सहस बियालिस सातक जु मान। कहे जिनागममें इह भांत
ए ऋषि कर्म काटि शिव गए। तिनके पदजुग पूजन भये॥४॥

ओं ह्रीं सम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र आनंदकूटतें श्रीअभिनंदनजिनेंद्रादिमुनिबहत्तरकोडाकं सत्तरकोडिछत्तीसलाखब्यालिसहजारसातसौसिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥

नं० १९ सुमतिनाथ अविचल कूट।

अडिल्ल।

अविचल चौथो कूट महासुख धाम जी। जहँते सुमतिजिनेंद्र गये निर्वाण जी॥ कोडाकोडी एक मुनीश्वर जानिये। कोटि चौरासी लाख बहत्तरि मानिये। सहस इक्यासी और सातसैं गाइये। कर्म काटि शिव गये तिन्हें शिर नाइये॥ सो थानक मैं पूजूं मनवचकाय जी। पाप दूर होजांय अचलपद पाय जी॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रअविचलकूटतें सुमतिनाथजिनेंद्रादि मुनि एककोड़ाकोड़ी चौरासीकोड़ि बहत्तरलाख इक्यासीहजार सातसौ सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ ५ ॥

नं० ८ पद्मप्रभ मोहन कूट।

मोहन कूट महान परम सुंदर कह्यो। पद्मप्रभ जिनराज जहां शिवपुर लह्यो॥ कोटि निन्यानव लाख सतासी जानिये। सहस तियालिस और मुनीश्वर मानिये॥ सप्त सैंकरा सत्तर ऊपर वीस जू। मोक्ष गए मुनि तिन्हें नमूं नित शीसजू॥ कहै जवाहरलाल दोयकर जोरिकै। अविनाशी पद दे प्रभु कर्मन तोरिकै॥ ६॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रम, हनकूटते पद्मप्रभजिनेंद्रमुनि निन्यानवेकोडि सतासीलाख तियालीसहजार सातसौ नब्बे सिद्धपदप्राप्तेभ्य सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं नि०॥६॥

नं० २२ सुपार्श्वनाथप्रभासकूट।

सोरठा।

कूट प्रभास महान, सुंदर जनमन मोहनों।
श्रीसुपार्श्व भगवान, मुक्तिगए अघनाशके॥

कोडाकोडि उनचास, कोडि चुरासी जानिये।
लाख वहत्तर मान, सात सहस हैं सात सौ॥
और कहे ब्यालीस जहँतें मुनि मुक्ती गए।
तिनहीं नमै नित शीश, दास जवाहर जोरकर॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रप्रभासकूटतें श्रीसुपार्श्वनाथजिनेंद्रादिमुनि उनचासकोड़ाकोडी चौरासीकोडि बहत्तरलाख सातहजार सातसौ बियालीस सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ७॥

नं० १० चंद्रप्रभु ललितकूट।

दोहा—पावन परम उतंग है, ललितकूट है नाम।
चंद्रप्रभ शिवकों गये वंदों आठों जाम॥
कोडाकोडी जानिये, चौरासी ऋषिमान।
कोडि वहत्तर इम कहे, अस्सीलाख प्रमान॥
सहस चुरासी पंचशत, पचपन कहे मुनिंद।
वसुकरमनको नाशकर, पायो सुखको कंद।
ललितकूटतें शिवगए, वंदों शीश नमाय॥
जिनपद पूजों भावसों, निजहित अर्घ चढ़ाय॥ ८॥

ॐ ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रललितकूटतें चंद्रप्रभजिनेंद्रादि मुनिचौरासीकोड़ाकोड़ीबहत्तरकोटिअस्सीलाख चौरासीहजार पांचसौ पचपन सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥ ८॥

नं० ७ पुष्पदंत सुप्रभकूट।

पद्धड़ी छन्द।

श्रीसुप्रभकूट सु नाम जान। जहँ पुष्पदंतको मुकति थान॥
मुनि कोड़ाकोड़ि कहे जु भाख। नव ऊपर नवघर कहे लाख॥
शतचारि कहे अरु सहसमान। ऋषि अस्सी और कहे विख्यात
मुनि मोक्षगए हनिकर्मजाल। वंदों करजोरि नमाय भाल॥१॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदसिखरसिद्धक्षेत्रसुप्रभकूटतैं पुष्पदन्तजिनेंद्रादिमुनि एककोडाकोडी-निन्यानवेलाख सातहजार चारसौ असी सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं ॥ ९ ॥

नं० १२ शीतलनाथ विद्युतकूट ।

सुन्दरी छंद ।

सुभग विद्युत कूट सु जानिये । परम अदभुत तापर मानिये ॥
गए शिवपुर शीतलनाथजी । नमहुं तिन इह करधर माथजी ॥
मुनि जु कोडाकोडि अठारहू । मुनि जु कोडिवियालीस जानहू ॥
कहे और जु लाखबत्तीस जू । सहसब्यालिस कहे यतीश जू ॥
अवर नौसौ पांच जु जानिये । गए मुनि शिवपुरको मानिये ॥
करहिं जे पूजा मन लायकें । धरहिं जन्म न भवमें आयकें ॥१०॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रविद्युतकूटतैं शीतलनाथजिनेंद्रादिमुनि अठारहकोडा-कोडीब्यालीसकोडिबत्तीसलाखब्यालीसहजारनौसेपांच सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १० ॥

नं० ६ श्रेयांसनाथ संकुलकूट ।

जोगीरासा ।

कूट जु संकुल परम मनोहर, श्रीश्रेयान् जिनराई ।
कर्मनाश कर शिवपुर पहुंचे, वंदों मनवचकाई ॥
छ्यानव कोडाकोडी जानो, छ्यानवकोडि प्रमानो ।
लाख छ्यानवे सहस सुनीश्वर, साढे नव अत्र जानो ॥
ता ऊपर ब्यालीस कहे हैं श्रीमुनिके गुण गावें ॥
त्रिविधयोग करि जो कोई पूजे, सहजानँदपद पावे ॥
सिद्ध नमों सुखदायक जगमें, आनँद मंगलदाई ।
जजों भावसों चरण जिनेश्वर, हाथजोड़ि शिरनाई ।
परम मनोहर थान सु पावन, देखत विघन पलाई ॥
तीन काल नित नमत जवाहर मेटो भवभटकाई ।

जहँतें जे मुनि सिद्ध भए हैं, तिनको शरण गहाई।
जा पदको तुम प्राप्त भए हो, सो पद देहु मिलाई ॥११॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसंकुलकूटतें श्रीश्रेयांसनाथजिनेंद्रादिमुनि छयानवे-कोड़ाकोड़ी छयानवेकोड़ि छयानवेलाख नवहजार पांचसौ बियालीस सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

नं० २३ विमलनाथ सुवीरकुलकूट।

कुसुमलता छंद।

श्रीसुवीरकुल कूट परम सुंदर सुखदाई,
विमलनाथ भगवान जहां पंचमगति पाई।
कोडि जु सत्तर सात लाख पटसहस जु गाई,
सात सतक मुनि और बियालीस जानो भाई ॥
दोहा। अष्टकर्मको नष्टकर, मुनि अष्टमछिति पाय।
तिनप्रति अर्घ चढावहूं, जनम मरण दुख जाय ॥
विमलदेव निरमल करण, सब जीवन सुखदाय।
मोतीसुत वंदत चरण, हाथजोर शिरनाय ॥ १२ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसुवीरकुलकूटतें श्रीविमलनाथजिनेंद्रआदिमुनि सत्तरकोडि सातलाख छहहजार सातसौब्यालीस सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १२ ॥

नं० १३ अनन्तनाथ स्वयंभूकूट।

अडिल्ल।

कूट स्वयंभू नाम परम सुन्दर कह्यो।
प्रभु अनंतजिननाथ जहां शिवपद लह्यो ॥
मुनि जु कोडाकोडि छ्यानवे जानिये।
सत्तर कोडि जु सत्तरलाख प्रमानिये ॥
सत्तर सहस जु और मुनीश्वर गाइये।

सात सतक ता ऊपर तिनको ध्याइये ॥
कहैं जवाहरलाल सुनो मनलायके ।
गिरिवरकों नित पूजो अति सुखपायके ।

सोरठा

पूजत विघन पलाय, ऋद्धि सिद्धि आनँद करै ॥
सुर शिवको सुखदाय, जो मनवच पूजा करैं ॥ १३ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रस्वयंभूकूटतें अनंतनाथजिनेंद्रादि मुनि छ्यानवेंकोडाकोडी सत्तरिकोडि सत्तरलाख सत्तरहजार सातसौ सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १३ ॥

नं० १८ धर्मनाथसुदत्तकूट ।

चौपाई ।

कूट सुदत्त महासुभ जान । श्रीजन धर्मनाथको थान ॥
मुनि कोडाकोडी उनईस । औरकहे ऋपि कोडि उनीश ॥
लाखजु नव नौसहस सुजान । सात शतक पंचावन मान ॥
मोक्ष गये वे कर्मनचूर । दिवसरु रयनि नमों भरपूर ॥
महिमा जाकी अतुल अनूप । ध्यावत वर इंद्रादिक भूप ॥
शोभत महा अचलपद पाय । पूजों आनँद मंगल गाय ॥
दोहा—परम पुनीत पवित्र अति, पूजत शत सुरराय ।
तिह थानककों देख कर, मोतीसुत गुणगाय ॥
पावन परम सुहावनो, सब जीवन सुखदाय ।
सेवत सुर हरि नर सकल, मनवांछितपदपाय ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसुदत्तकूटतें धर्मनाथजिनेन्द्रादिमुनि उन्नीस कोडाकोडी उन्नीसकोडि नौलाख नौहजार सातसौ पंचानवै सिद्धपदप्राप्तेभ्यो अर्घं० ॥१४॥

नं० २० शान्तिनाथ शांतिप्रभकूट ।

सुगीतिका छंद ।

श्रीशांति प्रभ है कूट सुन्दर, अतिपवित्र सु जानिये ।

श्रीशांतिनाथ जिनेंद्र जहंतें, परमधाम प्रमानिये।
नवज़ु कोडाकोडि मुनिवर, लाख नव अब जानिये।
नौ सहस नवसै मुनि निन्यानव, हृदयमें धर मानिये॥
दोहा—कर्मनाश शिवको गए, तिन प्रति अर्घ चढाय।
त्रिविधयोग करि पूज है, मनवांछित फलपाय॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रशांतिप्रभकूटतें शांतिनाथजिनेन्द्रादिमुनि नौकोडाकोडि नोलाख नोहजार नोसै निन्नानवै सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं नि०।

नं० २ कुन्थुनाथ ज्ञानधरकूट।

गीतिका छंद।

ज्ञानधर शुभकूट सुंदर, परम मन मोहन सही।
जहतें श्रीप्रभु कुन्थुस्वामी, गये शिवपुरकी मही॥
कोडा सु कोडि छ्यानवे, मुनि कोडिछ्यावन जानिये।
अर लाख वत्तिस सहसछ्यावन, शतकसात प्रमानिये
दोहा—और कहे ब्यालीस मुनि, सुमिरों हिये मझार।
तिनपद पूजों भावसों, करै ज़ु भवदधि पार॥ १६॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदसिखरसिद्धक्षेत्रज्ञानधरकूटतें श्रीकुन्थनाथजिनेंद्रादिमुनि छ्यानवेकोड़ाकोड़ी छ्यानवे कोडि बत्तीसलाख छयानवे हजार सातसौ ब्यालीस सिद्धपद प्राप्तभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥१६॥

नं० ४ अरनाथ नाटककूट।

दोहा—कूट ज़ु नाटक परमशुभ, शोभा अपरम्पार।
जहंतें अरजिनराज जी, पहुंचे मुक्तिमझार॥
कोडिनिन्यानव जानि मुनि, लाखनिन्यानव और।
कहे सहस निन्यानवे वंदों कर जुग जोर॥
अष्टकर्मको नष्ट करि, मुनि अष्टमक्षिति पाय।
ते गुरु मो हिरदे वसो, भवदधि पार लगाय॥

सोरठा ।

तारण तरण जिहाज, भवसमुद्रके बीचमें ।
पकरो मेरी बांह, डूबतमे राखो मुझे ॥
अष्टकरम दुख दाय, ते तुमने चूर सबे ।
केवलज्ञान उपाय, अविनाशी पद पाइयो ॥
मोती सुत गुणगाय, चरणन शीश नवायके ।
मेटो भवभटकाय, मांगत अब वरदान यों ॥ १७ ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रनाटककूटतें अरनाथजिनेन्द्रादि मुनि निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति ।

नं० ५ मल्लिनाथ सम्बलकूट ।

सुन्दरी छंद ।

कूट सम्बल परमपवित्र जू । गये शिवपुर मल्लिजिनेश जू ॥
मुनि जु छयानवकोडि प्रमानिये । पदजजते हृदय सुख ...

मोतीदाम छंद ।

भजो प्रभुनाम सदा सुखरूप, जजो मनमें धरभाव अनूप ।
टरें अघपातिक जाहिं सु दूर, सदा जनको सुख आनँदपूर ॥
डरें ज्यों नाग गरुडको देखि, भजे गजजुत्थ जु सिंहहिं पेख
तुमनाम प्रभू दुखहरण सदा, सुखपूर अनूपम होय मुदा ॥
तुमदेव सदा अशरणशरणं, भट मोहबली प्रभुजी हरणं ।
तुम शरणगही हम आय अबै, मुझ कर्मबली दिढ चूर सबै ।

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसम्बलकूटतें श्रीमल्लिनाथजिनेंद्रादि मुनि छयानवे कोडी मुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १८ ॥

नं० ९ मुनिसुव्रत निर्जरकूट ।

मदअवलिप्तकपोल छंद ।

मुनिसुव्रत जिननाथ सदा आनंदके दाई ।
सुंदर निर्जरकूट जहांतें शिवपुर जाई ॥

निन्यानवकोडाकोडि कहे मुनि कोडि सत्ताना।
नव लक्ख जोडि मुनिन्द कहे नौसै निन्न्याना॥

सोरठा।

कर्मनाशि ऋषिराज पंचमगतिके सुख लहे।
तारणतरणजिहाज, मो दुख दूर करो सकल॥

भुजंगप्रयात।

वली मोहकी फौज प्रभुजी भगाई, जग्यो ज्ञानपंचम महासुक्खदाई। समोशरण धरणेंद्रने तब बनायो, तबै देव सुरपति सबै शीसनायो ॥ जयो जय जिनेंद्र सुशब्दं उचारी, भए आज दरशन सबै सुक्खकारी । गए सर्व पातिक प्रभू दूरहीतैं, जबै दर्श कीने प्रभू दूरहीतैं ॥ सुनी नाथ श्रवनो जु तेरी वड़ाई, गही शरण हमने तुम्हारो सुहाई। वली कर्म नाशे जबै मुक्ति पाई, तिन्हें हाथ जोरैं सदा शीश नाई ॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रनिर्जरकूटतैंमुनिसुव्रतनाथजिनेंद्रादिमुनि निन्यानवेकोडाकोडी सत्तानवे कोडि नौलाखनौसैनिन्यानवे सिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १९ ॥

नं० ३ नमिनाथ मित्रधरकूट।

जोगीरासा।

कूट मित्रधर परममनोहर, सुंदर अति छविदाई।
श्रीनमिनाथ जिनेश्वर जहँतें, अविनाशी पदपाई॥
नौसै कोडाकोडी मुनिवर, एक अरब ऋषि जानौं।
लाख पैंतालिस सातसहस अरु, नौसै ब्यालिस मानौं॥

दोहा–वसु करमनको नाश कर, अविनाशी पदपाव।
पूजों चरणसरोजकों, मनवांछितफलदाव॥ २०॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रमित्रधरकूटतैं नमिनाथजिनेंद्रादिमुनि नौसै

कोड़ाकोड़ि एकअरब पैंतालीसलाख सातहजार नौसौ ब्यालीस सिद्धपदप्राप्तेभ्यो सिद्धक्षेत्रेभ्योऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥ २० ॥

नं० २१ पार्श्वनाथसुवर्णभद्रकूट।

दोहा—सुवरणभद्र जु कूटपै, श्रीप्रभुपारसनाथ।
जहँतैं शिवपुरको गए, नमों जोरिजुगहाथ॥

त्रिभंगी छंद।

मुनि कोडिवियासी लाख चुरासी शिवपुरवासी सुखदाई।
सहसहि पैंतालिस सातसौ ब्यालिस तजिके आलस गुणगाई॥
भवदधितैं तारण पतित उधारण सबदुखहारण सुखकीजे।
यह अरज हमारी सुनि त्रिपुरारी शिवपदधारी मोदीजे॥

छंद।

यह दर्शनकूट अनंत लह्यो। फल पोडशकोटि उपास कह्यो।
जगमें यह तीर्थ कह्यो भारी। दर्शन करि पाप कटैं सारी॥

मोतीदाम छंद।

टरैं गति वंदत नर्क तिर्यंच। कबहुं दुखको नहिं पावै रंच॥
यही शिवको जगमें है द्वार। अरे नर वंदो कहत 'जवार'॥

दोहा—पारशप्रभुके नामतैं, विघन दूरि टरि जाय।
ऋद्धि सिद्धि निधि तासुको, मिलि हैं निसिदिन आय॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रसुवर्णकूटतैं श्रीपार्श्वनाथादिमुनि वियासीकरोड़ चुरासीलाखपैंतालिसहजारसातसौवियालीससिद्धपदप्राप्तेभ्यः सिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥२१॥

अडिल्ल।

जे नर परमसुभावनतैं पूजा करैं। हरिहलि चक्री होय राज्य षटखँड करैं॥ फेरि होय धरणेंद्र इंद्रपदवी धरैं, नानाविधि सुख भोगि बहुरि शिवतिय वरैं॥

आशीर्वादः (पुष्पांजलि क्षिपेत्)

नोट—जिनको प्रत्येक अर्घवाली बड़ी पूजा करनेकी पिरमा न हो उनको नीचे लिखी पूजा करलेना चाहिये।

१०४। अथ समुच्चयलघुपूजा।

दोहा।

श्रीजिन वीस जिनेशके, वीसों शिखर महान।
और असंख्य मुनीश जहं, पहुंचे शिवपदथान॥

ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र! अत्रावतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्र! अत्र मम संनिहितो भव भव। वषट्।

अथ अष्टक।

गीतिका छंद।

पदमद्रहको नीर निर्मल हेमझारीमें भरों।
तृषारोग निवारनेको, चरणतर धारा करों॥
सम्मेदगढतैं मुनि असंख्ये, करमहर शिवपुर गये।
सो थान परमपवित्र पूजों, तासु फल पुनि संचये॥१॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यो श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरा-मृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥१॥

चंदन कपूर मिलाय केसर, नीरसों घसि लाइये।
जिनराज पापविनाश हमरे, भवाताप मिटाइये॥ सम्मेद०॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः चंदनं॥२॥

चंद्रके सम ल्याय तंदुल, कनकथारनमें भरों।
अक्षय सु पदके कारणे, जिनराजपद पूजा करों॥ सम्मेद०॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यो श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः अक्षतान्॥३॥

कुंद कमलादिक चमेली गंधकर मधुकर फिरें।
मदनबाण विनाशवेकों, प्रभुचरण आगें धरें॥ सम्मेदगढ०॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरक्षेत्रेभ्यः पुष्पं॥४॥

नेवज मनोहर थालमें भर, हरपकर ले आवने।
करहु पूजा भावसों, नर क्षुधा रोग मिटावने॥ सम्मेदगढ०॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः नैवेद्यं ॥५॥

दीप ज्योति प्रकाश करके, प्रभुके गुण गावने ।
मोहतिमिर विनाश करके, ज्ञान भानु प्रकाशने ॥सम्मेदगढ०॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो दीपं ॥६॥

वर धूप सुंदर ले दशांगी, ज्वलनमांहि सु खेइये ।
वसु कर्मनाशनके सु कारण, पूज प्रभुपद वेइये ॥ सम्मेद०॥

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः धूपं ॥७॥

उतकृष्ट फल जगमांहिं जेते, ढूंढ करकें लाइये ।
जो नेत्र रसना लगै सुंदर, फल अनूप चढाइये ॥ सम्मेदगढ

ओं ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदशिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो फलं ॥ ८।

वसुद्रव्ययुत शुभ अर्घ लेकर, मन प्रफुल्लित कीजिये ।
तुमदास यह वरदान मांगैं, मोछलछमी दीजिये ॥
सम्मेदगढतैं मुनि असंख्ये, कर्महर शिवपुर गये ।
सो थान परमपवित्र पूजों, तासु फल मुनि संचये ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदसिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ॥ ९।

नितकरैं जे नरनारि पूजा, भाव भक्ति सु लायके ।
तिनको सुजस कहता, 'जवाहर' हरपमनमें धारके ॥
ते हैं सुरेश नरेश खगपति, समक्ष पुजाफल यही ।
सम्मेदगिरिकी करहु पूजा, पायहो शिवपुरमही ॥ १० ॥

ॐ ह्रीं असंख्यातमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीसम्मेदसिखरसिद्धक्षेत्रेभ्यः पूर्णार्घं ॥ १०।

अथ आशीर्वाद ।

रोलाछंद ।

परम शिखरसम्मेद सबहीको है सुख करता ।
वंदें जे नरनारि तिन्हेंके अघ सब हरता ॥
नरकपशु गति टरें सुक्ख जगके बहु पावें ।

नरपति सुरपति होंय फेरि शिवपुरको जावें ॥

इत्याशीर्वादः ।

उपदेश ।

दोहा—जे तीरथ वंदें नहीं, सुनें धर्म नहिं सार ।
ते भववनमें भ्रमहिंगे, कबहुं न पावें पार ॥
नरभव उत्तम पायके, श्रावककुल अवतार ।
पूजा जिनवरकी करें, ते उतरें भवपार ॥
सवविधिजोग जु पायके, शिखर न वंदें सार ।
रतन पदारथ पाय ते, दे समुद्रमें डार ॥

नोट—हुंडावसर्पिणीकालदोषतें अबकीवार चार तीर्थंकर अन्य अन्य जगहसे मुक्तिधाम पधारे हैं। श्वेताम्बरोंने सम्मेदशिखरजी पर चार कूट उनके भी स्थापन कर दिये हैं उनको अर्घ चढ़ानेके लिये श्लोक व मंत्र ।

नं० ११ आदिनाथ सर्वसिद्धवरकूट ।

ढाल कार्तिक ।

प्राणी हो आदीश्वर महाराजजी, अष्टापद शिवथान हो ।
पूजत सुर हर नर सकल, सो पावे निर्वाण हो ॥
प्राणी हम पूजत इनहीं सदा, ये नाशें भवभव भीति हो ।
प्राणी पूजौ मन वच काय कर, ॥ १ ॥

ॐ ह्रीं श्रीऋषभनाथजिनेंद्रादिमुनिसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीकैलाशगिरिसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं ।

नं० १५ वासुपूज्य मंदारगिरि ।

सोरठा ।

वासुपूज्य जिनराय, चम्पापुरतें शिव गये ।
मनवचजोग लगाय, पूजों पदयुग अर्घ ले ॥ २ ॥

ॐ ह्रीं वासुपूज्यसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति ॥ २ ।

नं० २५ नेमिनाथ ऊर्जयंतकूट ।

दोहा—नेमीश्वर तजि राजमति, लीनी दीक्षा जाय ।
सिद्ध भये गिरनारतैं, पूजों अर्घ बनाय ॥ ३ ॥

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीगिरनारिसिद्धक्षेत्रेभ्यः अर्घं ॥ ३ ॥

नं० २१ महावीर ।

सुन्दरी छंद ।

वर्द्धमान जिनेस्वर पूजिये, सकलपातक दूर सु कीजिये ।
गयहु पावांपुरतैं मोक्षको, तिनहिं पूजत अर्घसंजोयके ॥ ४ ॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरसिद्धपदप्राप्तेभ्यः श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति ॥ ४ ॥

नं० १ चौवीसगणधर प्रथमटोंक ।

दोहा—तीर्थंकर चौवीसके, गणनायक हैं जेह ।
तिनको पूजों अर्घ ले, मनवच धारि सनेह ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशतिजिनगणधरचरणकमलेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

सिद्धक्षेत्र जे और हैं, भरतक्षेत्रके ठांहि ।
और जे अतिशयक्षेत्र हैं, कहे जिनागम मांहि ॥
तिनके नाम सु लेतहीं, पाप दूर होजाय ।
ते सब पूजों अर्घ ले, भवभवमें सुखदाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीभरतक्षेत्रसम्बन्धी सिद्धक्षेत्राऽतिशयसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं नि० ॥ ६ ॥

सोरठा ।

द्वीप अढाईमांहि सिद्धक्षेत्र जे और हैं ।
पूजों अर्घ चढाय, भवभवके अघनाश हैं ॥ ७ ॥

ओं ह्रीं ढाई द्वीपके विषे विद्यमान समस्त क्षेत्रेभ्योऽर्घं नि० ॥ ७ ॥

अडिल्ल ।

पूजों तीस चौवीसि परम सुखदाय जू
भूत भविष्यत वर्तमान गुणगाय जू ।

अरु विदेहके वीस नमों शिरनाय जू
अर्चों अर्घ बनाय सुं विघन पलाय जू

ओं ह्रीं श्रीभूतभविष्यद्वर्त्तमानसंबंधित्रिशच्चतुर्विंशतिजिनेंद्रेभ्यो विदेहक्षेत्रे शाश्वतविद्यमान विंशतितीर्थंकरेभ्यश्च अर्घं नि० ॥ ८ ॥

दोहा—कृत्याकृत्रिम जे कहे, तीन लोकके माय।
ते सब पूजों अर्घ ले, हाथ जोर शिरनाय ॥

ॐ ह्रीं श्रीतीनलोकसंबंधी कृत्याकृत्रिमजिनालयस्थ जिनबिंबेभ्यो अर्घं नि० ॥

अथ जयमाला।

लोलतरंग छंद।

मनमोहन तीरथ शुभ जानो, पावन परम सुक्षेत्र प्रमानो।
उन्नत शिखर अनूपम सोहै, देखत ताहि सुरासुर मोहै ॥

दोहा—तीरथ परम सुहावनो, शिखर समेद विशाल।
कहत अल्पबुधि उक्ति सों, सुखदायक जयमाल ॥

चौपाई १५ मात्रा।

सिद्धक्षेत्र तीरथ सुखदाइ, वंदत पाप दूर हुइ जाइ।
शिखरशीशपर कूट मनोग्य, कहे वीस अति शोभायोग्य ॥१॥
प्रथम सिद्धवरकूट सुजान, अजितनाथको मुक्ति सुथान।
कूटतनो दरशन फल एह, कोटि बतीस उपास गिनेह ॥२॥
दूजो धवलकूट है नाम, संभवप्रभु जहँतें शिवधाम।
दरश कोटि प्रोपधफल जान, लाख वियालिस कह्यो बखान ॥
आनँदकूट महासुखदाय, जहँतें अभिनंदन शिवजाय।
कूटतनो दरशन इमि जान, लाख उपासतणो फलमान ॥४॥
अविचल कूट महासुखवेश, मुक्ति गये जहं सुमति जिनेश।
कूट भावधरि पूजे कोय, एक कोटि प्रोषधफल होय ॥ ५ ॥

मोहनकूट मनोहर जान, पद्मप्रभ जहंतें निर्वान ।
कूटपूज फल लेहु सुजान, कोटि उपास कह्यो भगवान ॥६॥
मनमोहन है कूट प्रभास, मुक्ति गए जहँ नाथ सुपास ।
पूजे कूट महाफल होय, कोटि बतीस उपास जु सोय ॥
चंद्रप्रभका मुक्ति सु धाम, परमविशाल ललितघट नाम ।
कूटतनो दरशन फलजान, प्रोषध सोलह लाख बखान ॥८॥
सुप्रभ कूट महासुख दाय, जहँतें पुष्पदंत शिवपाय ।
पूजो कूट महाफल लेव, कोडि उपास कह्यो जिनदेव ॥९॥
श्री विद्युतवर कूट महान, मोक्षगये शीतल धरि ध्यान ।
पूजे त्रिविधजोग करकोय, कोडि उपासतनो फल होय ॥१०॥
संकुलकूट महा शुभ जान, श्रीश्रेयांश गये शिव थान ।
कूटतनों दरसनफल सुन्यो, कोडि उपास जिनेश्वरभन्यो ॥११॥
कूट सुवीर परम सुखदाय, विमल जिनेश जहां शिवपाय ।
मन वच दरश करे जो कोय, कोटि उपासतनो फल होय ॥१२॥
कूट स्वयंभू सुभग सु नाम, गये अनंत अमरपुर धाम ।
यही कूटको दरशन करे, कोडि उपासतनो फल धरे ॥ १३ ॥
है सुदत्तवर कूट महान, जहंतें धर्मनाथ निरवान ।
परम विशाल कूट है सोय, कोटि उपास दरश फल होय ॥१४॥
कूट प्रभास परमशुभ कह्यो, शांतिनाथ जहंतें शिव लह्यो ।
कूट तनो दरशन है सोय, एक कोडि प्रोषधफल होय ॥१५॥
परम ज्ञानधर है शुभकूट, शिवपुर कुन्थु गये अघछूट ।
ताकों पूजै जो कर जोटि, फल उपवास कह्यो इक कोटि ॥१६॥
नाटककूट महाशुभ जान जहंतें शिवपुर अर भगवान ।

दरशन करै कूटको जोय, छ्यानव कोडि वास फलहोय ॥१७॥
संवलकूट मल्लिजिनराज, जहँतें मोक्ष भये शुभकाज।
कोडिदरशफल कह्यो जिनेश, एककोड़ि प्रोषध शुभ वेश।१८।
निर्जर कूट कह्यो सुखदाय, मुनिसुव्रत जहँतें शिव जाय।
कूटतनो अव दरशन सोय, एक कोडि प्रोषध फल होय॥१९॥
कूट मित्रधरतें नमि मुक्त, पूजत पाय सुरासुर युक्त।
कूटतनो फल है सुखकंद, कोटि उपास कह्यो जिनचंद॥२०॥
श्रीप्रभु पार्श्वनाथ जिनराज, चहुंगतितें छूटे महाराज।
सुवरणभद्र कूटको नाम तासों मोक्ष गये सुखधाम ॥ २१ ॥
तीन लोक हितकरण अनूप, वंदत ताहि सुरासुर भूप।
चिंतामणि सुरवृक्ष समान, ऋद्धि सिद्धि मंगलसुखदान॥२२॥
नवविधि चित्रावेलि समान, जातें सुक्ख अनूपम जान।
पारस और कामसुरधेन, नानाविध आनँदको देन ॥ २३ ॥
व्याधिविकार जाहिं सवभाज, मनचीते पूरे है काज।
भवदधिरोगविनाशक सोय, औषधिजगमें अवर न कोय॥२४॥
निरमल परम थान उत्कृष्ट, वंदत पाप भजें अरु दुष्ट।
जो नर ध्यावतपुण्य कमाय, जशगावत सवकर्म नशाय॥२५॥
कटें अनादिकालके पाप, भजें सकल छिनमें संताप।
नरपति इंद्र फणेंद्र जु सवै, और खगेंद्र मृगेंद्र जु नवैं॥ २६॥
नित सुर सुरी करें उच्चार, नाचत गावत विविधप्रकार।
वहुविध भक्ति करें मनलाय, विविधप्रकार वादित्र वजाय।२७।
द्रम द्रम द्रमता वजे मृदंग, घन घन घंट वजे मुहचंग।
झुनझुन झुनझुन झुनिया झुनें, सर सर सर सारंगी धुनें॥२८॥

सुरली बीन बजे धुनि मिष्ट, पटहा तूर सुरान्वित पुष्ट ।
सब सुरगण श्रुति गावत सार, सुरगण नाचत बहुत प्रकार ॥
झन नन नन ना नूपुर वान, तन नन नन ना तोरत तान ।
ताथेइ थेइ थेइ थेइ कर चाल, सुर नाचत नावत निज भाल ॥
नाचत गावत नाना रंग, लेत जहां सुर आनँद संग ।
नितप्रति सुरजहँ वंदत जाय, नानाविधिके मंगल गाय ॥३१
अनहदधुनिकी मोद जु होय, प्रापति नृपकी अतिही होय ।
तातें हमको सुख दे सोय, गिरिवर वंदों करधरि दोय ॥३२।
मारुत मंद सुगंध चलेय, गंधोदक जहँ नित वर्षेय ।
जियकी जातिविरोध न होय, गिरिवर वंदौं करधरि दोय ॥
ज्ञान चरन तप साधत सोय निजअनुभवको ध्यान जु होय ।
शिवमंदिरको द्वारा सोय, गिरिवर वंदौं करधरि दोय ॥३४॥
जो भवि वंदे एकहि वार, नरक निगोद पशू गति टार ।
सुर शिवपदको पावे सोय, गिरिवर वंदौं करधरि दोय ॥३५॥
जाकी महिमा अगम अपार, गणधर कहत न पावें पार ।
तुच्छबुद्धि मैं मति कर हीन, कही भक्तिवश केवल लीन ॥३६॥

घत्ता छंद ।

श्रीगिरिवरनं अति सुखदैनं, भविजनहि भवदधि पार करं ।
अघिकर्म विनाशन शिवसुखभासन, जय गिरिवर जगतारकरं
ॐ ह्रीं [illegible] पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

दोहा—गिरिवर सु पूजैं जो सदा मन वचतन हरषाय ।
[illegible] सो कही सो शिवपुरको जाय ॥

[illegible] ।

[illegible]

१०५। कवि परिचयादि।

अडिल्ल।

पिता सु मोतीलाल "जवाहर" के कहे। काका हीरालाल गुणन पूरे लहे।
भाट सूरो गोत सु मारिल जानिये, शरण जिनेश्वर धर्म यही उर आनिये ॥१॥

दोहा। घरके लहने ना कही, कही धर्मके काज।
श्रीजिनवर की भक्तिसे, मिलिहै सुपत समाज ॥ २ ॥

अडिल्ल।

रहे छतरपुर शहर जवाहरलालजी। मुक्तागिरिको चले हरष उर धार जी।
वन्दन करि फिर आये पुर अमरावती। मानकके घर रहे भई अति सुभमती ॥ ३ ॥
देख्यो शिखरविलास सुमति हिरदय धरी, ताके मत अनुसार शिखर पूजा करी।
सुनिये बुधिजन विनती याचक मैं सही, शुद्ध अशुद्ध जु होय समझ लीजै यही ॥४॥
लीज्यो चतुर सुधार सुबुधि जन मध्य जू, मोहि दोष मत दीज्यो कीज्यो शुद्ध जू।
मोमें नहीं विवेक सुमति करि हीन हौं, पंडित चतुर सुजान तुमहि परवीन हो ॥५॥

दोहा।

अमरावति नगरीविषै, पूजा पूर्ण सुपीन, क्षमा सु सब जन तुम करो, मोहि दोष मति दीन
करि जिनपूजा अष्टविध, भावभगति मनलाय, मोतीसुत यह थुति करै, हाथजोरि शिरनाय

लावनी।

प्रभु नहिं समरथ है कोई, जगतगुरुपद धारा स्वामी, कवों वरणन होई।
इंद्र मुनि मनधरसे हारो, हमसे मन्द कहा कह सकते, बुधिकरि अज्ञानी ॥ १ ॥
यही उर आनत है दीना, भगवनप्रतार कही निज महिमा, वरणेको कीना ॥
प्रभु तुम त्रिभुवनके नाथा, जगचंद्रोपम अज्ञानतिमिरहन परमधरमदाता ॥ २ ॥
करम तुम चूरन कर डारे, जय शिवकामिनिरमन जिनेश्वर, सबहीके प्यारे ॥
प्रभु तुम अगणित बलधारी, अतुलअनंतचतुष्टयधारक सबको सुखकारी ॥ ३ ॥
प्रभु तुम तरनतरन धरता, धर्मधुरंधर धीर जिनेश्वर, स्वर्गमुक्ति करता।
प्रभु तुम रत्नत्रयधारी, तारनतरन जिनेश्वर स्वामी, सबके हितकारी ॥ ४ ॥
प्रभु तुम संकटनदहारी, निर्विकार निर्दोष जिनेश्वर, शुभलक्षणधारी।
प्रभु तुम कामसुभटविजई, घर संकट मन्मथ जिनेश्वर धारितरत्नत्रई ॥ ५ ॥
प्रभु तुम मोहमहा मारचो, लोभानलमायाको त्याग्यो शिवपदको धारचो।
प्रभु गुणसागर हो भारी, ज्ञानविशाल देखें गणधर पहुंचे नहिं पारी ॥ ६ ॥
प्रभु गुणकीरति दीनदयाल, पतन दिशा अपनंदकज्जर, स्तुतिके सु करौ।

कुदेव परा भव जो नित चाहैं, पै अपने घरहीके भीतर, पराको नहिं लाहैं ॥ ७ ॥
प्रभू तुम सबको सुखदाई, जनमजनमके पाप कटत हैं तुमरे गुणगाई ।
जगतमें बहु पदार्थ जानों, सुरतरु चिन्तामणि; पारस हैं, नवनिधिको मानो ॥८॥
भरे इक भव जानों भाई, जो नियोग इह जियको होई, किंचित सुखदाई ।
कहूं मैं प्रभु चरणन सेवा, जनम जनम सुखदायक प्रभुजी तुमही हो देवा ॥ ९ ॥
तुमही हो कृपानाथ स्वामी, तुम बांधव जगनाथ दयानिधि अन्तरके जामी ।
प्रभू तुम सब सुखके दाता, जगजीवनको पार लगावत देते सुखसाता ॥ १० ॥
प्रभू तुम गुणरत्ननखाना, तुम पुनीत समदर्शी प्रभुजी तुमही; सब जाना ॥
प्रभु बिन तीन कालमाहीं, नहिं नहिं शरण जीवको कोई या जगके माहीं ॥ ११ ॥
प्रभू तुम करुणानिधि नाथा, तुमसनमुख हम ठाड़े निशिदिन जोरे जुग हाथा ॥
होय नहिं अबलों निरवाना, जगनिवास छूटे भव माहीं दुखको जो दाना ॥ १२ ॥
प्रभू तुम चरणांबुजवासा, भवभव मिले करत या अरजी है 'जवाहर' दासा ।
और नहिं मांगत प्रभु तुमसों, हे दयाल दीजे वरदाना सुखी होय हमनों ॥ १३ ॥

दोहा—त्रिभुवनपति अरजी सुनो, कृपानाथ गुणधाम ।
भवसागरतें काढ़िये, शिवपद दे अभिराम ॥ १ ॥

अडिल्ल ।

अथ बैशाख वदी नवमी शुभ जानिये । शुक्रवारके दिना समापत मानिये ॥
१ ८ ९ १
इक वसु नव अरु अंक एक भव तिर लिखो । संवत यही प्रमान सरस मनमें लखो ॥

दोहा—जे नर नारी भावसों, पूजैं श्रीजिनदेव ।
नानाविध सुख भोगके, पावैं शिव स्वयमेव ॥ ३ ॥
जिहं को इक दृष्टांत है, सुनो भव्य जन लोय ।
श्रद्धाते पूजा करे, रत्नसमान सु होय ॥ ४ ॥
बिन श्रद्धा पूजा करे, कांच समान सु जान ।
रतन बड़ो है मोलको, पुरमोलो काच समान ॥ ५ ॥
बहुत करी तो क्या भई, भाव न मनमें लाय ।
श्रद्धासे थोरी करे, पावै पद सुख दाय ॥ ६ ॥
श्रद्धासे थोरी करो, हेतु बहुत कर मान ॥
भक्ति होवे पुन्यकी, पावै पद निरवान ॥ ७ ॥
तुच्छ बुद्धि मेरी सही, पंडित करो विचार ।
भूल चूक जब होय जो, लीज्यो चतुर सुधार ॥ ८ ॥

समाप्त ।

१०६ । श्रीगिरनारक्षेत्र पूजा ।

दोहा—वंदों नेमि जिनेश पद, नेम धर्म दातार ।
नेम धुरंधर परम गुरु, भविजन सुख कर्तार ॥ १ ॥
जिनवाणीको प्रणमिकर, गुरु गणधर उरधार ।
सिद्धक्षेत्र पूजा रचों, सब जीवन हितकार ॥ २ ॥
उर्जयंत गिरिनाम तस, कह्यो जगति विख्यात ।
गिरिनारी तासों कहत, देखत मन हर्षात ॥ ३ ॥

द्रुतविलंबित तथा सुंदरी छंद ।

गिरिसुउन्नत सुभगाकार है । पंचकूट उत्तंग सुधार है ॥
वन मनोहर शिला सुहावनी । लखत सुंदर मनको भावनी ॥
अवर कूट अनेक बने तहां । सिद्ध थान सुअति सुन्दर जहां ॥
देखि भविजन मन हर्षावते । सकल जन वंदनको आवते ॥५

त्रिभंगी छंद ।

तहँ नेमकुमारा व्रत तप धारा कर्मविदारा शिव पाई ।
मुनि कोडि बहत्तर सात शतक धर तागिरि ऊपर सुखदाई ॥
भये शिवपुर वासी गुणके राशी विधिथिति नाशी ऋद्धि धरा
तिनके गुणगाऊं पूज रचाऊं मन हर्षाऊं सिद्धिकरा ।

दोहा—ऐसे क्षेत्र महान तिहिं, पूजों मन वच काय ।
थापना त्रयवार कर, तिष्ठ तिष्ठ इत आय ॥

ओं ह्रीं श्रीगिनारिसिद्धक्षेत्र अत्र अवतर अवतर । संवौषट् ।
ओं ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ । ठः ठः ।
ॐ ह्रीं श्रीगिरनारसिद्धक्षेत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव । वषट् ।

अष्टक ।

लेकर नीर सुक्षीरसमान महा सुखदान सुप्रासुक भाई ।
दे त्रय धार जजों चरणा हरना मम जन्मजरा दुखदाई ॥

नेमपती तज राजमती भये वालयती तहँतैं शिवपाई ॥
कोडि वहत्तरि सातसौ सिद्ध मुनीश भये सु जजों हरषाई ॥१॥

ओं ह्रीं श्रीगिरनारिसिद्धक्षेत्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥ १ ॥

चंदनगारि मिलाय सुगंध सु ल्याय कटोरीमें धरना। मोह महातममेटनकाज सु चर्चतु हों तुम्हरे चरना॥ नेम०। चंदनं।
अक्षत उज्वल ल्याय धरों, तहं पुंज करो मनको हर्षाई। देहु अखयपद प्रभु करुणाकर, फेर न या भव वास कराई। ने०अक्षत
फूल गुलाव चमेली वेल कदंव सुचंपक तीर सुल्याई। प्राशुक पुष्प लवंग चढाय सुगाय प्रभू गुणकाम नशाई ॥ने०॥पुष्पं॥
नेवज नव्य करों भरथाल सुकंचनभाजनमें धर भाई। मिष्ट मनोहर क्षेपत हों यह रोग क्षुधा हरियो जिनराई॥ नेम०॥ नैवे
धूप दशांग सुगंधमई कर खेवहुं अग्निमझार सुहाई। शीघ्रहि अर्ज सुनो जिनजी मम कर्म महावन देउ जराई॥ ने०॥ धूपं।
ले फल सार सुगंधमई रसनाहृद नेत्रनको सुखदाई। क्षेपत हों तुम्हरे चरणा प्रभु देहु हमें शिवकी ठकुराई ॥ नेम०॥ फलं।
ले वसु द्रव्यसु अर्घ करों धर थाल सु मध्य महा हरषाई। पूजत हों तुमरे चरणा हरिये वसुकर्मवली दुखदाई। ने०। अ

दोहा—पूजत हों वसु द्रव्य ले, सिद्धक्षेत्र सुखदाय।
निज हित हेतु सुहावनो, पूरण अर्घ चढाय ॥ पूणार्घ ॥ १०॥

पंचकल्याणक अर्घ।

छंद पाइता।

कार्तिक सुदिकी छठि जानो। गर्भागम तादिन मानो॥
उत इंद्र जजे उस थानी। इत पूजत हम हरषानी।॥ १॥

ओं ह्रीं [illegible] नेमिनाथजिनेंद्राय अर्घं ॥

पर्वत उत्तरदक्षिण सु दोय । मधि बहत नदी उज्वल सुतोय ॥
ता नदीमध्य कइ कुंड जान । दोनों तट मंदिर बने मान ॥
तहँ वैरागी वैष्णव रहाय । भिक्षाकारण तीरथ कराय ॥
इक कोस तहां यह मच्यो ख्याल । आगें इक वरनदि बहत नाल
तहँ श्रावकजन करते मनान । धो द्रव्य चलत आगें सुजान ॥
फिर मृगीकुंड इक नाम जान । तहँ वैरागिनके बने थान ॥६॥
वैष्णव तीरथ जहँ रच्यो सोइ । वैष्णव पूजत आनंद होइ ॥
आगें चल डेढ सु कोस जाव । फिर छोटे पर्वतको चढाव ॥७॥
तहँ तीन कुंड सोहैं महान । श्रीजिनके युग मंदिर बखान ॥
मंदिर दिगंबरि दोय जान । श्वेतांबरके बहुते प्रमान ॥ ८ ।
जहँ बनी धर्मशाला सु जोय । जलकुंड तहां निर्मल सुतोय ॥
तहँ श्वेताम्बरगण दिशाजाय । ताकुंडमाहिं नितही नहाय ॥९॥
फिर आगें पर्वत पर चढाउ । चढ प्रथम कूटको चले जाउ ॥
तहँ दर्शन कर आगें सुजाय । तहँ द्वितिय टोंकका दर्श पाय ॥
तहँ नेमनाथके चरण जान । फिर है उतार भारी महान ॥
तहँ चढकर पंचम टोंक जाय । अतिकठिन चढाव तहां लखाय
श्रीनेमनाथका मुक्ति थान । देखत नयनों अति हर्ष मान ॥
इक बिंब चरनयुग तहां जान । भवि करत वंदना हर्ष ठान ॥
कोउ करतें जय जय भक्ति लाइ । कोऊ थुति पढते तहँ बनाय
तुम त्रिभुवनपति त्रैलोक्यपाल । मम दुःख दूर कीजे दयाल ॥
तुम राजऋद्धि भुगती न कोइ । यह अथिररूप संसार जोइ
तज मातपिता घर कुटुम द्वार । तज राजमतीसी सती नार ।
द्वादशभावन भाई निदान । पशुबंदि छोड़ दे अभयदान ॥

शेसावनमें दीक्षा सुधार । तप करके कर्म किये सुछार ॥१५॥
ताही वन केवल ऋद्धि पाय । इंद्रादिक पूजे चरण आय ॥
तह समवसरण रचियो विशाल । मणिपंच वर्णकर अति रसाल
तहं वेदी कोट सभा अनूप । दरवाजे भूमि वनी सुरूप ॥
वसु प्रातिहार्य छत्रादि सार । वर द्वादश सभा वनी अपार ॥
करके विहार देशों मझार । भवि जीव करे भवसिंधु पार ॥
पुन टोंक पंचमीको सुजाय । शिवथान लह्यो आनंद पाय ॥
सो पूजनीक वह थान जान । वंदत जन तिनके पाप हान ॥
तहँतें सुवहत्तर कोडि और । मुनि सातशतक सव कहे जोर ॥
उस पर्वतसों सव मोक्ष पाय । सव भूमि पूजने योग्य थाय ॥
तहँ देश देशके भव्य आय । वंदन कर वहु आनंद पाय ॥२०॥
पूजन कर कीने पाप नाश । वहु पुण्यवंध कीनो प्रकाश ॥
यह ऐसो क्षेत्र महान जान । हम करी वंदना हर्ष ठान ॥२१॥
उनईस शतक उनतीस जान । संवत अष्टमि सित फाग मान ॥
सव संग सहित वंदन कराय । पूजा कीनी आनंद पाय ॥२२॥
अव दुःख दूर कीजे दयाल । कहें 'चंद्र' कृपा कीजे कृपाल ॥
मैं अल्पवुद्धि जयमाल गाय । भवि जीव शुद्ध लीज्यो वनाय ॥

घत्ता—

तुम दयाविशाला सव क्षितिपाला तुम गुणमाला कंठधरी
ते भव्य विशाला तज जगजाला नावत भाला मुक्तिवरी ॥२४॥

ॐ ह्रीं श्री गिरनारतीर्थक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥

इति श्री गिरनार क्षेत्र पूजा ।



पर्वत उत्तरदक्षिण सु दोय । मधि वहत नदी उज्वल सुतोय ॥
ता नदीमध्य कइ कुंड जान । दोनों तट मंदिर वने मान ॥
तहँ वैरागी वैष्णव रहाय । भिक्षाकारण तीरथ कराय ॥
इक कोस तहां यह मच्यो ख्याल । आगें इक वरनदि वहत नाल
तहँ श्रावकजन करते सनान । धो द्रव्य चलत आगें सुजान ॥
फिर मृगीकुंड इक नाम जान । तहँ वैरागिनके वने थान ॥६॥
वैष्णव तीरथ जहँ रच्यो सोइ । वैष्णव पूजत आनंद होइ ॥
आगें चल डेढ सु कोस जाव । फिर छोटे पर्वतको चढाव ॥७॥
तहँ तीन कुंड सोहैं महान । श्रीजिनके युग मंदिर वखान ॥
मंदिर दिगंवरि दोय जान । श्वेतांवरके वहुते प्रमान ॥ ८ ॥
जहँ वनी धर्मशाला सु जोय । जलकुंड तहां निर्मल सुतोय ॥
तहँ श्वेतावरगण दिशाजाय । ताकुंडमाहिं नितही नहाय ॥९॥
फिर आगें पर्वत पर चढाउ । चढ प्रथम कूटको चले जाउ ॥
तहँ दर्शन कर आगें सुजाय । तहँ द्वितिय टोंकका दर्श पाय ॥
तहँ नेमनाथके चरण जान । फिर है उतार भारी महान ॥
तहँ चढकर पंचम टोंक जाय । अतिकठिन चढाव तहां लखाय
श्रीनेमनाथका मुक्ति थान । देखत नयनों अति हर्ष मान ॥
इक विंव चरनयुग तहां जान । भवि करत वंदना हर्ष ठान ॥
कोउ करतें जय जय भक्ति लाइ । कोऊ थुति पढतें तहँ भनाय
तुम त्रिभुवनपति त्रैलोक्यपाल । मम दुःख दूर कीजे दयाल ॥
तुम राजऋद्धि भुगती न कोइ । यह अथिररूप संसार जोइ
तज मातपिता घर कुटुम द्वार । तज राजमतीसी सती नार ॥
द्वादशभावन भाई निदान । पशुवंदि छोड दे अभयदान ॥

शेसावनमें दीक्षा सुधार । तप करके कर्म किये सुछार ॥१५॥
ताही वन केवल ऋद्धि पाय । इंद्रादिक पूजे चरण आय ॥
तह समवसरण रचियो विशाल । मणिपंच वर्णकर अति रसाल
तहं वेदी कोट सभा अनूप । दरवाजे भूमि बनी सुरूप ॥
वसु प्रातिहार्य छत्रादि सार । वर द्वादश सभा बनी अपार ॥
करके विहार देशों मझार । भवि जीव करे भवसिंधु पार ॥
पुन टोंक पंचमीको सुजाय । शिवथान लह्यो आनंद पाय ॥
सो पूजनीक वह थान जान । वंदत जन तिनके पाप हान ॥
तहँतें सुबहत्तर कोडि और । मुनि सातशतक सब कहे जोर ॥
उस पर्वतसों सब मोक्ष पाय । सब भूमि पूजने योग्य थाय ॥
तहँ देश देशके भव्य आय । वंदन कर बहु आनंद पाय ॥२०॥
पूजन कर कीने पाप नाश । बहु पुण्यबंध कीनो प्रकाश ॥
यह ऐसो क्षेत्र महान जान । हम करी वंदना हर्ष ठान ॥२१॥
उनईस शतक उनतीस जान । संवत अष्टमि सित फाग मान ॥
सब संग सहित वंदन कराय । पूजा कीनी आनंद पाय ॥२२॥
अब दुःख दूर कीजे दयाल । कहै 'चंद्र' कृपा कीजे कृपाल ॥
मैं अल्पबुद्धि जयमाल गाय । भवि जीव शुद्ध लीज्यो बनाय ॥

घत्ता—

तुम दयाविशाला सब क्षितिपाला तुम गुणमाला कंठधरी
ते भव्य विशाला तज जगजाला नावत भाला मुक्तिवरी ॥२४॥

ॐ ह्रीं श्री गिरनारसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ।

इति श्री गिरनार सिद्धक्षेत्र पूजा ।

१०७। श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्रपूजा।

दोहा—उतसव किय पनवार जहं, सुरगन युत हरि आय
जजों सुथल वसुपूज्य सुत, चंपापुर हर्षाय ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्री चंपापुरसिद्धक्षेत्र अत्रावतरावतर। संवौषट्। ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक। चाल नंदीश्वर पूजनकी।

सम अमिय विगतत्रस वारि, लै हिम कुंभ भरा।
लख सुखद त्रिगदहरतार, दै त्रय धार धरा॥
श्रीवासुपूज्य जिनराय, निर्वृतिथान प्रिया।
चंपापुर थल सुखदाय, पूजों हर्ष हिया॥

ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कश्मीरी केशर सार, अतिही पवित्र खरी।
शीतलचंदन सँगसार लै भव तापहरी॥ श्रीवासु०॥ सुगंधं
मणिद्युतिसम खंडविहीन, तंदुल लै नीके। सौरभयुत नवत्र
वीन, शालि महानीके॥ श्रीवासुपूज्य०॥ अक्षतान्॥ ३॥
अलि लुभन शुभन दृग घ्राण, सुमन जु सुर द्रुमके। लै वाहिम
अर्जुनवान, सुमन दमन झुमके॥ श्रीवासुपूज्य०॥ पुष्पं॥४॥
रस पुरित तुरित पकवान, पक्व यथोक्त घृती। क्षुधगदमदप्रद
मन जान, लैविध युक्तकृती॥ श्रीवासुपूज्य०॥ नैवेद्यं॥५॥
तमअज्ञप्रनाशक सूर, शिवमगपरकाशी। लै रत्नदीप द्युति
पूर, अनुपम सुखराशी॥ श्रीवासुपूज्य जिन०॥ दीपं॥ ६॥
वर परिमल द्रव्य अनूप, सोध पवित्र करी। तसुचूरण कर
धूप, लै विधिकुंज हरी॥ श्रीवासुपूज्य०॥ धूपं॥ ७॥

ऽ पक्व मधुररसवान, प्रासुक बहुविधके। लखि सुखद नदृगघ्रान, ले मद पद सिघके॥ श्रीवासु०॥ फलं॥८॥
ऊफलवसु द्रव्य मिलाय, लै भर हिमधारी॥ वसु अंग धरा-ल्याय, प्रमुदित चितधारी॥ श्रीवासुपूज्य०॥ अर्घ॥

अथ जयमाला।

हा—भये द्वादशम तीर्थपति, चंपापुर निर्वान।
तिन गुणकी जयमाल कछु, कहों श्रवणसुखदान॥१॥

पद्धड़िछंद॥

य जय श्रीचंपापुर सु धाम। जहँ राजत नृप वसुपूज नाम॥
व पौन पल्यसे धर्महीन। भवभ्रमन दुःखमयलख प्रवीन॥१॥
र करुणाधर सो तम विडार। उपजे किरणावलि घर अपार॥
गीवासुपूज्य तिनकेजुवाल। द्वादशम तीर्थकर्ता विशाल॥२॥
वभोग देहतैं विरत होय। वय वालमाहिं ही नाथ सोय॥
सेद्धन नमि महाव्रतभार लीन। तप द्वादशविध उग्रोग्र कीन॥ तहँ मोह सप्तत्रय आयु येह। दश प्रकृति पूर्व ही क्षय करेह॥ श्रेणीजु क्षपक आरूढ होय। गुण नवमभाग नव-माहिं सोय॥४॥ सोलह वसु इक इक पट इकेय। इक इक इक इम इन क्रम सहेय॥ पुन दशम थान इक लोभटार। द्वादशम थान सोलह विडार॥५॥ ह्वै अनँत चतुष्टययुक्त स्वाम। पायो सव सुखद सयोग ठाम॥ तहँ काल त्रिगोचर सर्वज्ञेय। युगपत हि समय इकमहि लखेय॥६॥ कछु काल दुविध वृष अमिय वृष्टि। कर पोषे भविभुविधान्यसृष्टि॥ इक मास आयु अवशेष जान। जिन योगनकी सम्रवृत्ति

; पक्व मधुररसवान, प्रासुक वहुविधके। लखि सुखद नदृगप्रान, ले प्रद पद सिधके॥ श्रीवासु०॥ फलं॥ ८॥
लफलनसु द्रव्य मिलाय, लै भर हिमधारी॥ वसु अंग धरा- ल्याय, प्रमुदित चितधारी॥ श्रीवासुपूज्य०॥ अर्घ॥

अथ जयमाला।

हा—भये द्वादशम तीर्थपति, चंपापुर निर्वान।
तिन गुणकी जयमाल कछु, कहों श्रवणसुखदान॥१॥

पद्धडिछंद॥

य जय श्रीचंपापुर सुधाम। जहँ राजत नृप वसुपूज नाम॥ व पौन पल्यसे धर्महीन। भवभ्रमन दुःखमयलग्न प्रवीन॥१॥ ए करुणाधर सो तम विडार। उपजे किरणावलि धर अपार॥ ीवासुपूज्य तिनकेजुवाल। द्वादशम तीर्थकर्ता विशाल॥२॥ वभोग देहतैं विरत होय। वय वालमांहिं ही नाथ सोय॥ सद्धन नमि महाव्रतभार लीन। तप द्वादशविध उग्रोग्र कीन॥ तहँ मोह सप्तत्रय आयु येह। दश प्रकृति पूर्व ही क्षय करेह॥ श्रेणीजु क्षपक आरूढ होय। गुण नवमभाग नव- माहिं सोय॥ ४॥ सोलह वसु इक इक पट इकेय। इक इक इक इम इन क्रम सहेय॥ पुन दशम थान इक लोभटार। द्वादशम थान सोलह विडार॥ ५॥ है अनंत चतुष्टययुक्त स्वाम। पायो सव सुखद सयोग ठाम॥ तहँ काल त्रिगोचर सर्वज्ञेय। युगपत हि समय इकमहि लखेय॥ ६॥ कछु काल दुविध वृष अमिय वृष्टि। कर पोपे भविभुविधान्यसृष्टि॥ इक मास आयु अवशेष जान। जिन योगनकी सुप्रवृति

१०७। श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्रपूजा।

दोहा—उतसव किय पनवार जहं, सुरगन युत हरि
जजों सुथल वसुपूज्य सुत, चंपापुर हर्षाय ॥ १॥

ओं ह्रीं श्री चंपापुरसिद्धक्षेत्र अत्रावतरावतर। संवौषट्। ओं ह्रीं अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक। चाल नंदीश्वर पूजनकी।

सम अमिय विगतत्रस वारि, लै हिम कुंभ भरा।
लख सुखद त्रिगदहरतार, दै त्रय धार धरा॥
श्रीवासुपूज्य जिनराय, निर्वृतिथान प्रिया।
चंपापुर थल सुखदाय, पूजों हर्ष हिया॥

ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कश्मीरी केशर सार, अतिही पवित्र खरी।
शीतलचंदन सँगसार लै भव तापहरी॥ श्रीवासु०॥ चं०
मणिद्युतिसम खंडविहीन, तंदुल लै नीके। सौरभयुत
वीन, शालि महानीके॥ श्रीवासुपूज्य०॥ अक्षतान्॥
अलि लुभन शुभन दृग घ्राण, सुमन जु सुर द्रुमके। ले
अर्जुनवान, सुमन दमन झुमके॥ श्रीवासुपूज्य०॥ पुष्पं॥
रस पुरित तुरित पकवान, पक्व यथोक्त घृती। क्षुधगदमद
मन जान, लैविध युक्तकृती॥ श्रीवासुपूज्य०॥ नैवेद्यं॥
तमअज्ञनाशक सूर, शिवमगपरकाशी। ले रत्नदीप
पूर, अनुपम सुखराशी॥ श्रीवासुपूज्य जिन०॥ दीपं॥
वर परिमल द्रव्य अनूप, सोध पवित्र करी। तसुचूरन
कर धूप, लै विधिकुंज हरी॥ श्रीवासुपूज्य०॥ धूपं॥

फल पक्व मधुररसवान, प्रासुक बहुविधके। लखि सुखद रसनदृगघ्रान, ले भद पद सिधके ॥ श्रीवासु० ॥ फलं ॥ ८ ॥
जलफलवसु द्रव्य मिलाय, लै भर हिमथारी ॥ वसु अंग धरा-पर ल्याय, प्रमुदित चितधारी ॥ श्रीवासुपूज्य० ॥ अर्घं ॥

अथ जयमाला ।

दोहा—भये द्वादशम तीर्थपति, चंपापुर निर्वान।
तिन गुणकी जयमाल कछु, कहों श्रवणसुखदान ॥१॥

पद्धड़िछंद ॥

जय जय श्रीचंपापुर सु धाम । जहँ राजत नृप वसुपूज नाम ॥
जव पौन पल्यसे धर्महीन । भवभ्रमन दुःखमयलख प्रवीन ॥१॥
उर करुणाधर सो तम विडार । उपजे किरणावलि धर अपार ॥
श्रीवासुपूज्य तिनकेजु वाल । द्वादशम तीर्थकर्ता विशाल ॥२॥
भवभोग देहतैं विरत होय । वय वालमाहिं ही नाय सोय ॥
सिद्धन नमि महाव्रतभार लीन । तप द्वादशविध उग्रोग्र कीन ॥ तहँ मोह सप्तत्रय आयु येह । दश प्रकृति पूर्व ही क्षय करेह ॥ श्रेणीजु क्षपक आरूढ होय । गुण नवमभाग नव-माहिं सोय ॥ ४ ॥ सोलह वसु इक इक षट इकेय । इक इक इक इम इन क्रम सहेय ॥ पुन दशम थान इक लोभटार । द्वादशम थान सोलह विडार ॥ ५ ॥ है अनँत चतुष्टययुक्त स्वाम । पायो मन सुखद सयोग ठाम ॥ तहँ काल त्रिगोचर सर्वज्ञेय । युगपत हि समय इकमहि लखेय ॥ ६ ॥ कछु काल दुविध वृष अमिय वृष्टि । कर पोषे भविभुविधान्यसृष्टि ॥ इक मास आयु अवशेष जान । जिन योगनकी सुप्रवृत्ति

१०७। श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्रपूजा।

दोहा—उतसव किय पनवार जहं, सुरगन युत हरि आय।
जजों सुथल वसुपूज्य सुत, चंपापुर हर्षाय ॥ १ ॥

ओं ह्रीं श्री चंपापुरसिद्धक्षेत्र अत्रावतरावतर। संवौषट्। ओं ह्रीं ... अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्र अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

अष्टक। चाल नंदीश्वर पूजनकी।

सम अमिय विगतत्रस वारि, लै हिम कुंभ भरा।
लख सुखद त्रिगदहरतार, दै त्रय धार धरा॥
श्रीवासुपूज्य जिनराय, निर्वृतिथान प्रिया।
चंपापुर थल सुखदाय, पूजों हर्ष हिया॥

ओं ह्रीं श्रीचंपापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कश्मीरी केशर सार, अतिही पवित्र खरी।
शीतलचंदन सँगसार लै भव तापहरी॥ श्रीवासु०॥ ...
मणिद्युतिसम खंडविहीन, तंदुल लै नीके। सौरभयुत ...
वीन, शालि महानीके॥ श्रीवासुपूज्य०॥ अक्षतान्॥ ...
अलि लुभन शुभन दृग घ्राण, सुमन जु सुर द्रुमके ...
अर्जुनवान, सुमन दमन झुमके॥ श्रीवासुपूज्य०॥ पुष्पं ...
रस पुरित तुरित पकवान, पक्व यथोक्त घृती। क्षुधगदमद ...
मन जान, लैविध युक्तकृती॥ श्रीवासुपूज्य०॥ नैवेद्यं॥ ...
तमअज्ञमनाशक सूर, शिवमगपरकाशी। लै रत्नदीप ...
पूर, अनुपम सुखराशी॥ श्रीवासुपूज्य जिन०॥ दीपं॥ ...
वर परिमल द्रव्य अनूप, मोघ पवित्र करी। तसुचूरण ...
कर धूप, लै विधिकुंज हरी॥ श्रीवासुपूज्य०॥ धूपं॥ ...

ल पक्व मधुररसवान, प्रासुक बहुविधके। लखि सुखद सनदृगघ्रान, ले प्रद पद सिधके ॥ श्रीवासु० ॥ फलं ॥ ८ ॥
जलफलवसु द्रव्य मिलाय, लै भर हिमथारी ॥ वसु अंग धरा- र ल्याय, प्रमुदित चितधारी ॥ श्रीवासुपूज्य० ॥ अर्घ ॥

अथ जयमाला ।

दोहा—भये द्वादशम तीर्थपति, चंपापुर निर्वान ।
तिन गुणकी जयमाल कछु, कहों श्रवणसुखदान ॥१॥

पद्धड़ि छंद ॥

जय जय श्रीचंपापुर सु धाम । जहँ राजत नृप वसुपूज नाम ॥
जव पौन पल्यसे धर्महीन । भवभ्रमन दुःखमयलख्व प्रवीन ॥१॥
उर करुणाधर मो नम विडार । उपजे किरणावलि घर अपार ॥
श्रीवासुपूज्य तिनकेजुवाल । द्वादशम तीर्थकर्ता विशाल ॥२॥
भवभोग देहतें विरत होय । वय बालमाहिं ही नाथ सोय ॥
सिद्धन नमि महाव्रतभार लीन । तप द्वादशविध उग्रोग्र कीन ॥ तहँ मोह सत्तत्रय आयु येह । दश प्रकृति पूर्व ही क्षय करेह ॥ श्रेणीजु क्षपक आरूढ होय । गुण नवमभाग नव- माहिं सोय ॥ ४ ॥ सोलह वसु इक इक षट इकेय । इक इक इक इम इन क्रम नसेय ॥ पुन दशम थान इक लोभटार । द्वादशम थान सोलह विडार ॥ ५ ॥ हैं अनँत चतुष्टययुक्त स्वाम । पायो सब सुन्दर सयोग ठाम ॥ तहँ काल त्रिगोचर सर्वज्ञेय । युगपत हि समय इकमहि लखेय ॥ ६ ॥ कछु काल द्विविध वृष अमिय वृष्टि । कर पोषे भविजनविशाल सृष्टि ॥ इक मास आयु अवशेष जान । जिन योगनको सुथम्भनि

हान ॥ ७ ॥ ताहीथल तृतिशितध्यान ध्याय। ...
थान निवसे जिनाय ॥ तहँ दुचरम समयमझार ईश। प्रकृति
जु वहत्तर तिनहि पीश ॥ ८ ॥ तेरहनठ चरम समयमझार।
करके श्रीजगतेश्वर प्रहार॥ अष्टमि अवनी इक समयमद्ध
निवसे पाकर निज अचल रिद्ध ॥ ९ ॥ युत गुण वसु प्रमुख
अमित गुणेश। ह्वैरहे सदाही इमहि वेश ॥ तबहीतें सो थानक
पवित्र। त्रैलोक्य पूज्य गायो विचित्र ॥ मैं तसु रज निज
मस्तक लगाय। वंदों पुन पुन भुवि शीशनाय ॥ ताही पद
वांछा उरमझार। धर अन्य चाहबुद्धी विडार ॥ ११ ॥
दोहा—श्रीचंपापुर जो पुरुष, पूजै मनवच काय।
वर्णि "दौल" सो पाय ही, सुखसंपति अधिकाय ॥१२॥
इत्याशीर्वादः।

१०८। श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्र पूजा।

दोहा—नहिं पावापुर छित अघति, हत सन्मत जगदीश।
भये सिद्ध शुभ थान सो, जजों नाय निज शीश॥
ओं ह्रीं श्रीं पावापुरसिद्धक्षेत्र! अत्र अवतर अवतर। संवौषट्।
ओं ह्रीं श्री पावापुरसिद्धक्षेत्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः।
ओं ह्रीं श्री पावापुरसिद्धक्षेत्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्।
अथ अष्टक। गीताछन्द।

शुचि सलिल शीतो कलिल रीतो श्रमन चीतो लै जिसो। भ
कनक झारी त्रिगद हारी दे त्रिधारी जित तृषो ॥ वर प
वन भर पद्मसरवर बहिर पावाग्रामही। शिवधाम सन्म
स्वामि पायो जजों, सो सुखदा मही ॥ १ ॥
ओं ह्रीं श्रीपावापुरक्षेत्र श्रीसन्मतिजिनेन्द्र ... जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपा...

भव भ्रमत भ्रमत अशर्म तपकी, तपन कर तप ताईयो। तसु
मलय कंदन मलय चंदनं, उदकसँग घिस ल्याइयो ॥ वरपद्म
॥ चंदनं ॥ तंदुल नवीन अखंड लीने, लै महीने ऊजरे।
मणि कुंद इंदु तुषारद्युतिजित कनरकावीमें धरे ॥ वरपद्म०
॥ अक्षतं ॥ मकरंदलोभन सुमन शोभन सुरभि चोभन लेय-
जी। मद समर हरवर अमर तरुके, घान हग हरवेयजी ॥
वरपद्म० ॥ पुष्पं ॥ नैवेद्य पावन छुध मिटावन सेव्य भावन
युत किया। रस मिष्ट पूरति इष्ट सूरति लेयकर प्रभु हित
हिया ॥ वरपद्म० ॥ नैवेद्यं ॥ तमअज्ञनाशक स्वपरभाशक
ज्ञेय परकाशक सही। हिम पात्रमें धर मौल्य विन वर द्योत
धर मणि दीपही ॥ वरपद्म० ॥ दीपं ॥ आमोदकारी वस्तु
सारी विघ दुचारी जारनी। तसु तूप कर कर धूप लै दश
दिश सुरभि विस्तारनी ॥ वरपद्म० ॥ धूपं ॥ फल भक्त पक्व
सुचक्ष्य सोहन सुक्ः जनमन मोहने। वर सुरस पूरित तुरत
मधुरत लेयकर अत सोहने ॥ वरपद्म० ॥ फलं ॥ जल गंध
आदि मिलाय वसुविध थार स्वर्ण भरायकें। मन प्रमुद भाव
उपाय कर ले आय अर्घ वनायके ॥ वरपद्म ॥ अर्घं ॥ १ ॥

अथ जयमाला।

दोहा—चरम तीर्थ करतार श्री, वर्द्धमान जगपाल।
कलमलदल विघ विकल हुय, गाऊं तिन जयमाल ॥१॥

पद्धडि छंद।

जय जय सुवीर जिन मुक्तियान। पावापुरवनमर शोभवान ॥
जे शित अषाड छट स्वर्ग धाम। तजे पुष्पोत्तर सु विमान

ठाम ॥ १ ॥ कुंडलपुर सिद्धारथ नृपेश । आये त्रिशला जननी उरेश ॥ शित चैत्र त्रियोदशि युत त्रिज्ञान । जन्मे तम अज्ञ निवार भान ॥ २ ॥ पूर्वान्ह धवल चउदशि दिनेश । किय नन्हन कनकगिरि शिर सुरेश । वय वर्ष तीस पद कुमर काल । सुखदिव्य भोग भुगते विशाल ॥३॥ मारगशिर अलि दशमी पवित्र । चढ चंद्रप्रभा शिवका विचित्र ॥ चलिपुरसों सिद्धन शीश नाय । धारयो संजम वर शर्मदाय ॥ ४ ॥ गत वर्ष दुदश कर तप विधान । दिन शित वैशाख दशैं महान ॥ रिजुकूला सरिता तट स्व सोध । उपजायो जिनवर चरम बोध ॥ ५ ॥ तवही हरि आज्ञा शिर चढाय । रचि समवसरणवर धनदराय ॥ चउसंघ प्रभृति गौतम गनेश । युत तीस वरष विहरे जिनेश ॥ ६ ॥ भविजीवदेशना विविध देत । आये वर पावानगर खेत ॥ कार्तिक अलि अंतिम दिवस ईश । कर योग निरोध अघातिपीस ॥ ७ ॥ ह्वे अकल अमल इक समय माहिं । पंचम गति पाई श्रीजिनाह ॥ तब सुरपति जिन रवि अस्त जान । आये तुरंत चढि निज विमान ॥ ८ ॥ कर वपु अरचा थुति विविध भांत । ले विविध द्रव्य परिमल विख्यात ॥ तब ही अगनींद्र नवाय शीश । संस्कार देह की त्रिजगदीश ॥ ९ ॥ कर भस्म वंदना स्व मदीय । निवसे प्रभु गुन चितवन स्वदीय । पुन नरमुनि गनपति आय आय । वंदी सो रज शिर नाय नाय ॥ १० ॥ तवहीसों सो दिन पूज्यमान । पूजत जिनगृह जन हर्ष मान । मैं पुन पुन तिस भुवि शीश धार । वंदो तिन गुणधर उर मझार ॥११॥ जिन

…ीका अब भी तीर्थ एह। वर्तत दायक अति शर्म गेह॥ अरु
दुखम काल अवसान ताहि। वर्तैंगो भवथिति हर सदाहि॥१२॥

कुसमलता छंद।

श्री सन्मति जिनअंघ्रिपद्म युग जजे भव्य जो मन वच काय।
ताके जन्म जन्म संचित अघ जावहिं इक छिन मांहिं पलाय॥
धनधान्यादिक शर्म इंद्रपद लहै सो शर्म अतीन्द्री पाय।
अजर अमर अविनाशी शिवथल वर्णी दौल रहे शिर नाय॥

ओं ह्रीं श्रीपावापुरसिद्धक्षेत्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥

६। छठा अध्याय।

आरती—संग्रह।

१०६। पंचपरमेष्ठी आदिकी आरती।

इहविधि मंगलआरति कीजे, पंच परमद भज सुख लीजे॥ टेक॥ प्रथम आरती श्रीजिनराजा। भव-दधिपारउतारजिहाजा॥ इहविधि०॥१॥ दूसरि आरति सिद्धनकेरी। सुमिरन करत मिटै भवफेरी॥ इहविध०॥ २॥ तीजी आरति सूर मुनिंदा। जनममरनदुख दूर करिंदा॥ इहविध०॥ ३॥ चौथी आरति श्रीउवझाया। दर्शन देखत पाप पलाया॥ इहविध०॥ ४॥ पांचमि आरति साधु तिहारी। कुमति-विनाशन शिवअधिकारी॥ इहविध०॥ ५॥ छट्ठी ग्यारह-प्रतिमा धारी। श्रावक वंदों आनँदकारी॥ इहविध०॥ ६॥ सातमि आरति श्रीजिनवानी। 'द्यानत' सुरगमुकतिसुख-दानी॥ इहविध०॥ ७॥

११०। आरती श्रीजिनराजकी।

आरति श्रीजिनराज तिहारी, करमदलन संतनहितकारी ॥ टेक ॥ सुरनरअसुर करत तुम सेवा। तुम ही सब देवनके देवा ॥ आरति श्री० ॥ १ ॥ पंचमहाव्रत दुद्धर धारे। रागरोष परिणाम विदारे ॥ आरति श्री० ॥२॥ भवभय भीत सरन जे आये। ते परमारथपंथ लगाये ॥ आरति श्री० ॥ ३ ॥ जो तुम नाम जपै मनमाहीं। जनममरनभय ताको नाहीं॥ आरति श्री० ॥४॥ समवसरनसंपूरन शोभा। जीते क्रोधमान छललोभा ॥ आरति श्री० ॥ ५ ॥ तुम गुण हम कैसें करि गावें। गणधरकहत पार नहिं पावें ॥ आरति श्री० ॥ ६॥ करुणासागर करुणा कीजे। 'द्यानत' सेवकको सुख दीजे॥ आरति श्री० ॥ ७ ॥

१११। आरती मुनिराजकी।

आरति कीजे श्रीमुनिराजकी, अधमउधारन आतमकाजकी ॥ आरति कीजे० ॥ टेक॥ जा लच्छीके सब अभिलाखी। सो साधन करदमवत नाखी ॥ आरति कीजे० ॥१॥ सब जग जीत लियो जिन नारी। सो साधन नागनिवत छारी ॥ आरति० ॥ २ ॥ विषयन सब जगजिय वश कीने। ते साधन विषवत तज दीने ॥ आरति० ॥ ३ ॥ भुविको राज चहत सब प्रानी। जीरन तृणवत त्यागत ध्यानी ॥ आरति० ॥ ४ ॥ शत्रुमित्र दुखसुख सम मानें। लाभअलाभ बराबर जानें ॥ आरति० ॥ ५ ॥ छहोंकायपीहरव्रत धारें। सबको आप समान निहारें ॥ आरति० ॥ ६ ॥ इह

आरती पढ़े जो गावै। 'द्यानत' सुरगमुकति सुख पावै ॥
आरति कीजे० ॥ ७ ॥

११२। निश्चय आरती।

इहविध आरति करौं प्रभु तेरी। अमल अबाधित निज-गुणकेरी ॥ टेक ॥ अचल अखंड अतुल अविनाशी। लोकालोक सकल परकाशी ॥ इह० ॥ १ ॥ ज्ञानदरससुखबल गुणधारी। परमातम अविकल अविकारी ॥ इह० ॥ २ ॥ क्रोधआदि रागादि न तेरे। जनम जरामृत कर्म न नेरे ॥ इह० ॥ ३ ॥ अवपु अबंध करणं-सुखनाशी। अभय अनाकुल शिवपदवासी ॥ इह० ॥ ४ ॥ रूप न रेख न भेख न कोई। चिनमूरत प्रभु तुम ही होई ॥ इह० ॥ ५ ॥ अलख अनादि अनंत अरोगी। सिद्ध विशुद्ध सुआतम भोगी ॥ इह० ॥ ६ ॥ गुन अनंत किम वचन बतावै। 'दीपचंद' भवि भावन भावै ॥ इह विध० ॥ ७ ॥

११३। आत्माकी आरती।

करौं आरती आतम देवा, गुणपरजाय अनंत अभेवा ॥ करौं० ॥ टेक ॥ जामें सब जग जो जगमाहीं। वसत जगतमें जगसम नाहीं ॥ करौं ॥ १ ॥ ब्रह्मा विष्णु महेश्वर ध्यावें। साधु-सकल जिहँको गुण गावें। करौं० ॥ २ ॥ बिन जाने जिय चिरभव डोले। जिहँ जाने ते शिवपट खोले ॥ करौं० ॥ ३ ॥ व्रती अविरती विधव्योहारा। सो तिहुंकाल करमसों न्यारा ॥

इन्द्रियसुख।

करौं० ॥ ४ ॥ गुरुशिख उभय वचनकरि कहिये। वचनातीतदशा तस लहिये ॥ करौं०॥ ५ ॥ स्वपर भेदको खेद उछेदा। आप आपमें आप निवेदा ॥ करौं० ॥ ६ ॥ सो परमातम शिवसुख दाता। होहि 'विहारीदास' विख्याता ॥ करौं० ॥ ७ ॥

११४। आरती श्रीवर्द्धमानकी।

राग गौरी।

करौं आरती वर्धमानकी। पावापुरनिरवानथानकी ॥ करौं० ॥ टेक ॥ राग-विना सब जगजन तारे। द्वेष-विना सब करम विदारे ॥ करौं० ॥ १ ॥ शील-धुरंधर शिव-तिय-भोगी। मनवचकायन कहिये जोगी ॥ करौं० ॥ २ ॥ रतनत्रयनिधि परिगह-हारी। ज्ञान-सुधा-भोजन व्रतधारी ॥ करौं० ॥ ३ लोकअलोकव्याप निजमांहीं। सुखमय इंद्रियसुखदुख नाहीं ॥ करौं० ॥ ४ ॥ पंचकल्याणकपूज्य विरागी। विमल-दिगंबर अंबर-त्यागी ॥ करौं० ॥ ५ ॥ गुनमनि-भूषन-भूपित स्वामी। जगतउदास जगंतरजामी ॥ करौं० ॥ ६ ॥ कहै कहाँ लौं तुम सब जानौं। 'द्यानत' की अभिलाष प्रमानौं ॥ करौं० ॥ ७ ॥

११५ आरती निश्चयआत्माकी।

चौपाई।

मंगलिआरति आतमराम। तनमंदिर मन उत्तम ठाम ॥ मंगल० ॥ टेक ॥ समरसजलचंदन आनंद। तंदुल तत्त्वस्वरूप अमंद ॥ मंगल० ॥ १ ॥ समयसारफूलनकी माल। अनुभवसुखनेवज भरि थाल ॥ मंगल० ॥ २ ॥ दीपकज्ञान,

ध्यानकी धूप। निरमलभाव महाफलरूप ॥ मंगल० ॥ ३ ॥ सुगुण भविकजन इकरँगलीन। निहचै नवधाभक्तिप्रवीन ॥ मंगल० ॥ ४ ॥ धुनि उतसाह सु अनहद गान। परमसमाधिनिरत परधान ॥ मंगल० ॥ ५ ॥ बाहिज आतमभाव वहाव। अंतर ह्वै परमातम ध्याव ॥ मंगल० ॥ ६ ॥ साहबसेवकभेद मिटाय। 'द्यानत' एकमेक होजाय ॥ मंगल० ॥ ७ ॥

उपर्युक्त आरतियोंमेंसे इच्छानुसार एक या दो आरती बोलकर नीचे लिखा श्लोक, दोहा और मंत्र पढ़कर आरतीको मस्तकपर चढ़ावे।

११६। दीपधूप चढानेके मंत्रादि।

ध्वस्तोद्यमांधीकृतविश्वविश्वमोहांधकारप्रतिघातदीपान्।
दीपैः कनत्कांचनभाजनस्थैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥
दोहा—स्वपरप्रकाशनज्योति अति, दीपक तमकरहीन।
जासों पूजों परम पद, देव शास्त्र गुरु तीन ॥

ओं ह्रीं मोहतिमिरविनाशनाय देवशास्त्रगुरुभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥

धूप चढ़ाते समय अथवा धूपकी आशिका लेते समय नीचे लिखा श्लोक, दोहा और मंत्र बोलना चाहिये।

दुष्टाष्टकर्मेन्धनपुष्टज्वालसंधूपने भासुरधूमकेतून्।
धूपैर्विधूतान्यसुगंधिगंधैर्जिनेंद्रसिद्धांतयतीन् यजेऽहम् ॥
दोहा—अग्निमाहिं परिमल दहन, चंदनादि गुणलीन।
जासों पूजों परम पद, देन शास्त्र गुरु तीन ॥

ओं ह्रीं अष्टकर्मविनाशनाय देवशास्त्रगुरुभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥



७ सातवां अध्याय।

विनती-संग्रह।

(११७)

दोहा—विश्वभाव व्यापी तदपि, एक विमल चिद्रूप।
ज्ञानानंदमयी सदा, जयवंतो जिनभूप ॥ १ ॥

छंद चाल (१४ मात्रा)

सफली मम लोचनद्वंद। देखत तुमको जिनचंद ॥ मम तन मन शीतल एम। अम्रतरस सींचत जेम ॥ २ ॥ तुम वोध अमोघ अपारा। दर्शन पुनि सर्व निहारा ॥ आनंद अतिंद्रिय राजे ॥ वल अतुल स्वरूप न त्याजे ॥३॥ इत्यादिक स्वगुन अनंता। अंतर्लक्ष्मी भगवंता ॥ वाहिज विभूति वहु सोहे। वरनन समर्थ कवि को है ॥ ४ ॥ तुम वृच्छ अशोक सुस्वच्छ। सव शोकहरनको दच्छ ॥ तहँ चंचरीक गुंजारें। मानों तुम स्तोत्र उचारें ॥५॥ शुभरत्नमयूख विचित्र। सिंहासनशोभ पवित्र ॥ तहँ वीतराग छवि सोहै। तुम अंतरीछ मन मोहै ॥ ६ ॥ वर कुन्दकुन्द-अवदात। चामरव्रज सव सुहात ॥ तुम ऊपर, मघवा ढारें। धरि भक्तिभाव अघ टारें ॥७॥ मुक्ताफलमाल-समेत। तुम ऊर्ध्व छत्रत्रय सेत ॥ मानो तारान्वित चंद। त्रय मूर्ति धरी दुतिवृंद ॥८॥ शुभ दिव्य पटह वहु वाजें। अतिशय जुत अधिक विराजें ॥ तुमरो जस घोकें मानों। त्रैलोक्यनाथ यह जानों ॥ ९ ॥ हरिचंदन सुमन सुहाये। दशदिशि सुगंध महकाये ॥ अलिपुंज विगुंजत जामें। शुभ वृष्टि होत तुम सामें ॥ १० ॥ भामंडलदीप्ति अखंड। छिप जात कोटि मार्तंड ॥

जग लोचनको सुखकारी। मिथ्यातमपटल निवारी ॥ ११ ॥ तुमरी दिव्यध्वनि गाजै ॥ विन इच्छा भविहित काजै ॥ जीवादिक तत्त्वप्रकाशी। भ्रमतमहर सूर्यकलासी। १२। इत्यादि विभूति अनंत। वाहिज अतिशय अरहंत ॥ देखत मम भ्रमतम भागा। हित अहित ज्ञान उरजागा ॥ १३ ॥ तुम सव-लायक उपगारी। मैं दीन दुखी संसारी ॥ तातैं सुनिये यह अरजी। तुम शरन लियौ जिनवरजी।१४। मैं जीवद्रव्य विन-अंग। लाग्यो अनादि विधिसंग ॥ ता निमित पाय दुख पाये। हम मिथ्यातादि महाये।१५। निजगुन कवहूं नहिं भाये। सव परपदार्थ अपनाये ॥ रति अरति करी सुख दुखमें। ह्वैकरि निजधर्मविमुख में ॥१६॥ परचाहदाह नित दाह्यो। नहिं शांत-सुधा अवगाह्यो ॥ पशु नारकनरसुरगत में। चिर भ्रमत भयो भ्रममतमैं ॥१७॥ कीने वहु जामन मरना। नहिं पायो सांचौ शरना॥ अव भाग उदय मो आयौ। तुम दर्शन निर्मल पायौ ॥१८॥ मन शांत भयो उर मेरो। वाढ्यो उछाह शिवकेरो ॥ परविषयरहित आनंद। निज रस चाख्यो निरद्वंद ॥१९॥ मुझ काजतने कारन हो। तुम देव तरन तारन हो ॥ तातैं ऐसी अव कीज्यो। तुम चरन भक्ति मोहि दीज्यो ॥२०॥ दृगज्ञान-चरन परिपूर। पाऊं निश्चय भवचूर ॥ दुखदायक विषय कषाय। इनमें परनति नहिं जाय ॥ २१ ॥ सुरराज समाज न चाहौं। आतम समाधि अवगाहौं ॥ अरु इच्छा मो मनमानी। पूरौ सव केवलज्ञानी ॥ २२ ॥

दोहा—गनपति पार न पावहीं, तुम गुनजलधि विशाल।

७ सातवां अध्याय।

विनती-संग्रह।

(११७)

दोहा—विश्वभाव व्यापी तदपि, एक विमल चिद्रूप।
ज्ञानानंदमयी सदा, जयवंतो जिनभूप ॥ १ ॥

छंद चाल (१४ मात्रा)

सफली मम लोचनद्वंद। देखत तुमको जिनचंद ॥ मम तन मन शीतल एम। अम्रतरस सींचत जेम ॥ २ ॥ तुम बोध अमोघ अपारा। दर्शन पुनि सर्व निहारा ॥ आनंद अतिंद्रिय राजे ॥ बल अतुल स्वरूप न साजे ॥३॥ इत्यादिक स्वगुन अनंता। अंतर्लक्ष्मी भगवंता ॥ बाहिज विभूति बहु सोहै। बरनन समर्थ कवि को है ॥ ४ ॥ तुम वृच्छ अशोक सुस्वच्छ। सब शोकहरनको दच्छ ॥ तहँ चंचरीक गुंजारें। मानों तुम स्तोत्र उचारें ॥५॥ शुभरत्नमयूख विचित्र। सिंहासनशोभ पवित्र ॥ तहँ वीतराग छवि सोहै। तुम अंतरीछ मन मोहै ॥ ६ ॥ वर कुन्दकुन्द-अवदात। चामरव्रज सव सुहात ॥ तुम ऊपर मघवा ढारें। धरि भक्तिभाव अघ टारें ॥७॥ मुक्ताफलमाल-समेत। तुम ऊर्ध्व छत्रत्रय सेत ॥ मानो तारान्वित चंद। त्रय मूर्ति धरी दुतिवृंद ॥८॥ शुभ दिव्य पटह बहु बाजें। अतिशय जुत अधिक विराजें ॥ तुमरो जस घोकें मानों। त्रैलोक्यनाथ यह जानों ॥ ९ ॥ हरिचंदन सुमन सुहाये। दशदिशि सुगंध महकाये ॥ अलिपुंज विगुंजत जामें। शुभ वृष्टि होत तुम सामें ॥ १० ॥ भामंडलदीप्ति अखंड। छिप जात कोटि मार्तंड ॥

जग लोचनको सुखकारी। मिथ्यातमपटल निवारी ॥ ११ ॥ तुमरी दिव्यध्वनि गाजे ॥ विन इच्छा भविहित काजे ॥ जीवादिक तत्त्वप्रकाशी। भ्रमतमहर सूर्यकलासी। १२। इत्यादि विभूति अनंत। वाहिज अतिशय अरहंत ॥ देखत ममभ्रमतम भागा। हित अहित ज्ञान उरजागा ॥ १३ ॥ तुम सबलायक उपगारी। मै दीन दुखी संसारी ॥ तातैं सुनिये यह अरजी। तुम शरन लियौ जिनवरजी।१४। मैं जीवद्रव्य विनअंग। लाग्यो अनादि विधिसंग ॥ ता निमित पाय दुख पाये। हम मिथ्यातादि महाये।१५। निजगुन कबहूं नहिं भाये। सब परपदार्थ अपनाये ॥ रति अरति करी सुख दुखमें। ह्वैकरि निजधर्मविमुख में ॥१६॥ परचाहदाह नित दाह्यो। नहिं शांतसुधा अवगाह्यो ॥ पशु नारकनरसुरगत में। चिर भ्रमत भयो भ्रमतमें ॥१७॥ कीने वहु जामन मरना। नहिं पायो सांचौ शरना॥ अब भाग उदय मो आयौ। तुम दर्शन निर्मल पायौ ॥१८॥ मन शांत भयो उर मेरो। वाढ्यो उछाह शिवकेरो ॥ परविषयरहित आनंद। निज रस चाख्यो निरद्वंद ॥१९॥ मुझ काजतने कारन हो। तुम देव तरन तारन हो ॥ तातैं ऐसी अब कीज्यो। तुम चरन भक्ति मोहि दीज्यो ॥२०॥ दृगज्ञानचरन परिपूर। पाऊं निश्चय भवचूर ॥ दुखदायक विषय कषाय। इनमें परनति नहिं जाय ॥ २१ ॥ सुरराज समाज न चाहौं। आतम समाधि अवगाहौं ॥ अरु इच्छा मो मनमानी। पूरौ सब केवलज्ञानी ॥ २२ ॥

दोहा—गनपति पार न पावहीं, तुम गुनजलधि विशाल।

'भागचंद' तुव भक्ति ही, करै हमें वाचाल ॥ २३ ॥

(११८)

हरिगीतिका (२८ मात्रा)

तुम परम पावन देव जिन अरि, रजरहस्य विनाशनं। तुम ज्ञान-दृग-जलवीच त्रिभुवन, कमलवतप्रतिभासनं ॥ आनंद निजज अनंत अन्य, अचिंत संतत परनये। वल अतुलकलित स्वभावतैं नहिं, खलितगुन अमिलित थये ॥ सब रागरुपहन परम श्रवन, स्वभावघननिर्मलदशा। इच्छा-रहित भविहित खिरत वच, सुनत ही भ्रमतम नशा। एकांत गहनसुदहन स्यात्पद, वहनमय निजपर दया। जाके प्रसाद विषादविन, मुनिजन सपदि शिवपद लहा ॥ २ ॥ भूपन-वसनसुमनादिविनतन, ध्यानमयमुद्रा दिपै। नासाग्रनयन सुपलक हलय न, तेजलखि खगगन छिपै ॥ पुनि वदन-निरखत प्रशमजल, वरखत सुहरखतउर धरा। बुधि स्वपर परखत पुन्य आकर, कलिकलिलदरखत जरा ॥३॥ इत्यादि वहिरंतर असाधारन, सुविभवनिधानजी। इंद्रादिवंदप-दारविंद, अनिंद तुम भगवानजी ॥ मैं चिरदुखी परचाहतैं, तुम धर्म नियत न उर धर्‌यो ॥ परदेव सेव करी वहुत, नहिं काज एक तहां सर्‌यो ॥ ४ ॥ अब भागचंद उदय भयौ, मैं शरन आयो तुम तनी। इक दीजिये वरदान तुम जस, स्व-पददायक बुधमनी ॥ परमाहिं इष्ट-अनिष्ट-मति-तजि, मगन निज गुनमें रहौं। दृग-ज्ञान-चरन समस्त पाऊं, 'भागचन्द' न पर चहौं ॥ ५ ॥

भववास वसेराजी, फिरि होय न फेराजी । सुख पावै जन तेरा, स्वामी सो करोजी ॥ १६ ॥ तुम शरनसहाईजी, तुम सज्जन भाईजी । तुम माई तुम्हीं वाप, दया मुझ लीजियेजी ॥ १७ ॥ भूधर कर जोरेजी ठाड़ो प्रभु ओरे जी । निजदास निहारो, निरभय कीजियेजी ॥ १८ ॥

(१२०)

ढाल-परमादी ।

अहो जगतगुरु एक, सुनियो अरज हमारी । तुम हो दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी ॥ १ ॥ इस भववनके मांहि, काल अनादि गमायो । भ्रम्यो चहूंगतिमांहिं, सुख नहिं दुख वहु पायो ॥२॥ कर्म महारिपु जोर, एक न कान करैजी । मनमाने दुख देहिं, काहूसों न डरैजी ॥ कवहूं इतर निगोद, कवहूं नरक दिखावै । सुरनरपशुगत्ति मांहिं. वहुविधि नाच नचावें ॥ ४ ॥ प्रभु इनको परसंग, भवभवमांहिं वुरोजी । जे दुख देखे देव !, तुमसों नाहिं दुरो जी ॥५॥ एक जनमकी वात, कहि न सकों सुनि स्वामी । तुम अनंत परजाय, जानतु अंतरजामी ॥६॥ मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे । कियो वहुत वेहाल, सुनियो साहिव मेरे ॥ ७ ॥ ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निवल करि डार्यो । इनही तुम मुझमांहिं, हे जिन ! अंतर पार्यो । पापपुन्य मिल दोय, पायनि वेरीं डारी । तनकाराग्रहमांहिं, मोहि दियो दुख भारी ॥ ९ ॥ इनको नेक विगार, मैं कछु नाहिं कियोजी । विनकारन जगवंद्य ! वहुविधि वैर लियोजी ॥ १० ॥ अव आयो तुम पास, सुन जिन सुजस तिहारो । नीतिनिपु

ही होयें ॥९॥ तुम्हरी कीर्तिवेलि बहु वढी । यत्न विना जगमंड
चढी ॥ और कुदेव सुयश निज चहें । प्रभु अपने थल
यश लहें ॥१०॥ जगत जीव घूमें विन ज्ञान । कीनों मोहमह
विषपान ॥ तुम सेवा विषनाशक जरी । यह मुनिजन मि
निश्चय करी ।११। जन्म-लता मिथ्यामत मूल । जन्म मरण ला
तहँ फूल ॥ सो कवहूं विन भक्ति कुठार । कटै नहीं दुख फल
दातार ॥ १२ ॥ कल्पतरूवर चित्रावेलि कामपोरषा नवनिधि
मेलि ॥ चिंतामणि पारस पाषान । पुण्य पदारथ और महान ॥१
ये सब एक जन्म संजोग । किंचित सुखदातार नियोग ॥
त्रिभुवननाथ तुम्हारी सेव । जन्म जन्म सुखदायक देव ॥१४
तुम जगबांधव तुम जगतात । अशरण-शरण विरद
विख्यात ॥ तुम सब जीवनके रखवाल । तुम दाता तुम परम
दयाल ॥१५॥ तुम पुनीत तुम पुरुष प्रमान । तुम समदर्शी तुम
सब-जान ॥ जय जिन यज्ञ पुरुष परमेश । तुम ब्रह्मा तुम
विष्णु महेश ॥१६॥ तुम जगभर्ता तुम जगजान । स्वामि स्वयंभू
तुम अमलान ॥ तुम विन तीन काल तिहुं लोय । नाहीं मरण
जीवको कोय ।१७। यातैं अव करुणानिधि नाथ । तुम सन्मुख
हम जोडें हाथ ॥ जवलौं निकट होय निर्वान । जगनिवास
छूटै दुखदान ॥१८॥ तबलौं तुम चरणांवुज वास । हम उर होऊ
यही अरदास ॥ और न कुछ वांछा भगवान । हो दयाल
दीजे वरदान ॥ १९ ॥

(१२२)

शेर ।

हे दीनबंधु श्रीपति करुणानिधानजी । यह मेरी विथा क्यों

परी थी तुम्हें जब ध्यावती हती। तब वीर धीरने हरी दुख दंदकी गती ॥ हो० ॥ ८ ॥ जब अंजना सतीको हुआ गर्भ उजारा। तब सासने कलंक लगा घरसे निकारा ॥ वनवर्गके उपसर्गमें तब तुमको चितारा। प्रभुभक्त व्यक्त जानिके भय देव निवारा ॥ हो० ९॥ सोमासे कहा जो तु सती शील विशाला। तो कुंभतें निकाल भला नाग जु काला॥ उस वक्त तुम्हें ध्यायके सतिहाथ जब डाला। तत्काल ही वह नाग हुआ फूलकी माला ॥ हो० ॥ १० ॥ जब कष्ट रोग था हुआ श्रीपालराजको। मैना सती तब आपको पूजा इलाजको॥ तत्काल ही सुंदर किया श्रीपाल राजको। वह राजरोग भाग गया मुक्तराजको ॥ हो० ॥ ११ ॥ जब सेठ सुदर्शनको मृषा दोष लगाया। रानीके कहे भूपने सूलीपै चढाया॥ उस वक्त तुम्हें सेठने निज ध्यानमें ध्याया। सूलीसे उतारुस्को सिंहासनपै बिठाया ॥ हो० ॥ १२ ॥ जब सेठ सुधन्नाजीको वापीमें गिराया। ऊपरसे दुष्ट फिर उसे वह मारने आया॥ उस वक्त तुम्हें सेठने दिल अपनेमें ध्याया। तत्काल ही जंजालसे तब उसको बचाया ॥ हो० ॥ १३ ॥ इक सेठके घरमें किया दारिद्रने डेरा। भोजनका ठिकाना भी न था साँझ सवेरा॥ उस वक्त तुम्हें सेठने जब ध्यानमें घेरा। घर उसकेमें तब कर दिया लक्ष्मीका बसेरा ॥ हो० ॥ १४ ॥ बलि वादमें मुनिराजसों जब पार ना पाया। तब रातको तलवार ले शठ मारने आया॥ मुनिराजने निजध्यानमें मन लीन लगाया। उस वक्त हो प्रत्यक्ष तहां देव बचाया। हो० ॥ १५ ॥ जब रामने

धाममें धारे। हम आपसे दातारको प्रभु आज निहारे ॥ हो० ॥२३॥ तुम ही अनंत जंतुका भय भीर निवारा। वेदो पुरानमें गुरू गणधरने उचारा ॥ हम आपकी सरनागतीमें आके पुकारा। तुम हो प्रत्यक्ष कल्पवृक्ष इच्छिताकारा ॥ हो० ॥ २४ ॥ प्रभु भक्त व्यक्त जक्त भक्त मुक्तके दानी। आनंद कंद वृंदको हो मुक्तके दानी ॥ मोहि दीन जान दीनबंधु पातक भानी। संसार विषम खार तार अंतरजामी ॥ हो० ॥ २५ ॥ करुणानिधानबानको अब क्यों न निहारी। दानी अनंतदानके दाता हो सँभारी ॥ वृषचंदनंद वृंदका उपसर्ग निवारो। संसार विषम खारसे प्रभु पार उतारो ॥ हो दीनबंधु श्रीपति करुणानिधानजी। अब मेरी व्यथा क्यों ना हरो बार क्या लगी ॥ २६ ॥

(१२३)

दोहा—जासु धर्मपरभावसों, संकट कटत अनंत।
मंगलमूरति देव सो, जैवंतो अरहंत ॥ १ ॥
हे करुणानिधि सुजनको, कष्टविषें लखि लेत।
तजि विलंब दुख नष्ट किय, अब विलंब किह हेत ॥२॥

षट्पद।

तब विलंब नहिं कियो, दियो नमिको रजताचल। तब विलंब नहिं कियो, मेघवाहन लंकाथल ॥ तब विलंब नहिं कियो, शेठ सुत दारिद भंजे। तब विलंब नहिं कियो, नाग जुग सुरपद रंजे ॥ इमि चूरि भूरि दुख भक्तके, सुख पूरे शिवतियरवन। प्रभु मोर दुःखनाशनविषें, अब विलंबकारन

कवन ॥ ३ ॥ तव विलंव नहिं कियो, सिया पावक जल कीन्हों। तव विलंव नहिं कियो, चंदना शृंखल छीन्हों ॥ तव विलंव नहिं कियो, चीर द्रुपदीको वाढ्यो। तव विलंव नहिं कियो, सुलोचन गंगा काढ्यो ॥ इमि० प्रभु० ॥ ४ ॥ तव विलंव नहिं कियो, सांप किय कुसुम सु माला। तव विलंव नहिं कियो, उर्मिला सुरथ निकाला ॥ तव विलंव नहिं कियो शील-वल फाटक खुल्ले। तव विलंव नहिं कियो अंजना वन मन फुल्ले ॥ इमि० प्रभु० ॥ ५ ॥ तव विलंव नहिं कियो, शेठ सिंहासन दीन्हों। तव विलंव नहिं कियो, सिंधु श्रीपाल कढ़ीन्हों ॥ तव विलंव नहिं कियो, प्रतिज्ञा वज्रकर्ण पल। तव विलंव नहिं कियो, सुधन्ना काढ़ि वापि थल ॥ इमि० प्रभु० ॥ ६ ॥ तव विलंव नहिं कियो, कंस भय त्रिजुग उवारे। तव विलंव नहिं कियो, कृष्णसुत शिला उतारे ॥ तव विलंव नहिं कियो खड्ग मुनिराज वचायो। तव विलंव नहिं कियो नीरमातंग उचायो ॥ इमि० प्रभु० ७ ॥ तव विलंव नहिं कियो, शेठ सुत निरविष कीन्हों। तव विलंव नहिं कियो, मानतुंगबंध हरीन्हों ॥ तव विलंव नहिं कियो, वादिमुनिकोढ़ मिटायो। तव विलंव नहिं कियो, कुमुद जिनपास मिटायो ॥ इमि० प्रभु० ॥ ८ ॥ तव विलंव नहिं कियो, अंजनाचोर उधार्‍यो। तव विलंव नहिं कियो, पूरवा भील सुधार्‍यो ॥ तव विलंव नहिं कियो, गृद्धपक्षी सुंदर तन। तव विलंव नहिं कियो, भेक दिय सुर अद्भुत धन ॥ इमि० प्रभु० ॥ ९ ॥ इहविधि दुःख निरवार, सारसुख प्रापति कीन्हो। अपनो दास निहारि,

भक्तवत्सल गुन चीन्हों ॥ अब विलंब किहिं हेत, कृपाकर इहां लगाई । कहा सुनो अरदास नाहिं, त्रिभुवनके राई। जनवृंद सुमनवचतन अवै, गही नाथ तुम पद शरन। सुधि ले दयाल मम हालपै, कर मंगल मंगलकरन ॥ १० ॥

(१२४)

दोहा–सहज शुद्ध ज्ञायक सकल, सकल गुननिकरयुक्त। निर्विकार निर्दुंदमय, वंदों जिन विधिमुक्त ॥ १ ॥

पद्धड़ी छंद।

जय त्रिभुवननायक त्रिजगईस । जय करणकुरंगनको मृगीस ॥ जय मोहशैलविध्वंसकार । जय जगतशिरोमणि स्वच्छवार ॥ २ ॥ जय अनुपम अद्‌भुत सुगुणधार । जय धर्मपोत जगजियउधार ॥ जय चरण शुद्ध अवलंब लंब । जय बोधशुद्ध प्रतिबिंब बिंब ॥ ३ ॥ जय एनमुक्त तुम उक्त उक्त। जय क्रांतिभार अति युक्त युक्त ॥ विधि नष्टअष्ट गुण अष्टपुष्ट। जय जंतुतुष्ट अति सुष्ट सुष्ट ॥ ४ ॥ जय मानमदोद्धतकरी तंग। जय मीनकेतुमद किमपि भंग। जय कर्मभर्म भान्यौ प्रवीन । जय मर्मज्ञान ज्ञाता कहीन ॥५॥ जय सुद्धातम प्रतिबोध बोध । जय आस्रवभाव विरोधरोध ॥ जय मलजालजग चूरचूर । जय आम जगनकी पूरपूर ॥ ६ । जय भूलधूलनाशनसमीर । जय स्वात्मरमफलभोगकीर। जय विदिनसप्ततत्त्वार्थअर्थ। जय मुगनिगमन विनचिंतव्यर्थ ॥ ७ ॥ जय लब्धिनवोंपूरित पुनीत । जय ज्ञानांबुधभासव सुनीत ॥ जय अनंतचतुष्टय इष्ट अंग । जय चतुकचमूविधि

संगभंग ॥ ८ ॥ जय समवसरनलक्ष्मीनिवास। जय प्रातिहार्य-वसुद्युत विभास ॥ जय कल्पवेलवांछक सुदेन । जयचिंतामणि मनचिंत लेन ॥ ९ ॥ जय जगभूरुहनासनकुठार । जय भवि-जनचातकवारिधार ॥ जय मलिनकलिलकालिमपखाल। जय मुखअरविंदअधरप्रवाल ॥ १० ॥ जय पुरहुत सुरनरनाग इंस। जय नायमाथ ध्यावत मुनीस ॥ जय आनँदकंदउदोत सूर। जय तारणतरणतरंड भूर ॥ ११ ॥ जय सवविधिलायक तुम दयाल। जय मोहनमूरति सृष्टिपाल ॥ जय जीवनमूल सुमूलमंत्र। जय अधमउधारक भूमितंत्र ॥ १२ ॥ जय ताप-तप्तजगइंदुअंस। जय आरतरुद्रउड़ाय वंस ॥ जय जगअनाथ तुम नाथकीन। जय अमल अचलचिद्रूपचीन ॥ १३ ॥ नहिं चाह नाथ कछु और मोय। हे दीनदयाल कृपाल होय । कर जोर जुगल विनतीविचार । संसारक्षारदुखवारतार ॥ १४ ॥

दोहा—दुख भंजन रंजन भविक, अंजनमंजनत्यागि ।
गंजनगर्भ अरीनके, नमैं 'चंद' पद लागि ॥ १५ ॥

१२५ । पुकार पच्चीसी ॥

दोहा—जे या भव संसारमें, भुगते दुःख अपार ।
तिन पुकारपच्चीसिका, करों कवित इक हार ॥ १ ॥

मनहर ३१

श्रीजिनराज गरीबनिवाज सुधारन काज सबै सुखदाई ।
दीनदयाल बड़े प्रतिपाल दयागुणमाल सदा शिर नाई ॥
दुर्गति टारन पापनिवारन हो भविनारन को भवनाई । बार-
ही बार पुकारतु हों जनकी विनती सुनिये जिनराई ॥ १ ॥

जन्मजरामरणो त्रय दोष लगे हमको प्रभु कालअनाई।
तासु नसावनको तुम नाम सुन्यो हम वैद्य महासुखदाई॥
सो त्रय दोष निवारनको तुम्हरे पद सेवतु हौं चितलाई।
बारही० ॥ २ ॥ जो इक है भवको दुख होय तो ताप रखौं
मनको मगुदाई। यह चिरकाल कुहाल भयो अबलों कहुं
अंत परयो न दिखाई॥ मोपर या जगमांहि कलेश परे
दुख घोर महे नहिं जाई। बारही० ॥ ३ ॥ देख दुखीगर
दीन दयाल सु है इक ग्रामपती शिरनाई। हो तुम नाथ
त्रिलोकपती तुमसे हम अर्ज करें शिरनाई॥ सो दुख दूर
करो सबके वसु कर्मनतें प्रभु लेउ छुड़ाई। बारही० ॥५॥
कर्म बडे रिपु हैं हमरे हमरी बहु हीन दशा कर पाई। दुःख
अनंत दिये हमको हर भांतिन भांतिन दोष लगाई॥ मैं
इन वैरिनके वश है कबिके भटक्यो सु कह्यो नहिं जाई।
बारही० ॥ ५ ॥ मैं हम हो वन काननमें भटक्यो चिरकाल
सुढाल गमाई। किंचित ही निकसे सुमको बहुभांति उपाय
कर लटकाई॥ चार गत निगमें भटक्यो अरु मग मगान
सदा दुखदाई। बारही० ॥ ६ ॥ नित्य निगोद अनादि [illegible]
[illegible] अहै दुखदाई। [illegible] निकस्यो विह-
[illegible] [illegible] । [illegible] नाम भयो
[illegible] । बारही० ॥ ७ ॥ सबही
[illegible] [illegible]। [illegible]
[illegible] ॥ [illegible]
[illegible] । बारही० ॥ ८ ॥

जीव अकेला फिरै त्रिकाल । ऊरधमध्यभुवन पाताल ॥
दूजा कोइ न तेरे साथ । सदा अकेलो भ्रमै अनाथ ॥ ५ ॥
भिन्न सदा पुदगल तैं रहै । भर्मबुद्धितैं जडता गहै ॥
वे रूपी पुदगलके खंध । तू चिनमूरति सदा अबंध ॥ ६ ॥
अशुचि देख देहादिक अंग । कौन कुवस्तु लगी तो संग ॥
अस्थीमांस रुधिर गद गेह । मलमूत्रनि लख तजहु सनेह ॥७॥
आस्रव परसों कीजे प्रीत । तातैं बंध बढहि विपरीत ॥
पुदगल तोहि अपनपो नाहिं । तू चेतन वे जड सब आँहि ॥
संवर परको रोकन भाव । सुख होवेको यही उपाव ॥
आवैं नहीं नये जहँ कर्म । पिछले रुकि प्रगटे निजधर्म ॥ ९ ॥
थिति पूरी ह्वै खिर खिर जांहिं । निर्जर भाव अधिक अधिकांहिं
निर्मल होय चिदानँद आप । मिटै सहज परसंग मिलाप ।१०।
लोकमाहिं तेरो कछु नाहिं । लोक अन्य तू अन्य लखाहिं ॥
वह सब षटद्रव्यनको धाम । तू चिन्मूरति आतमराम ॥११॥
दुर्लभ परको रोकनभाव । सो तो दुर्लभ है सुनु राव ॥
जो तेरो है ज्ञान अनंत । सो नहिं दुर्लभ सुनो महंत ॥ १२ ॥
धर्मस्वभाव आपही जान । आपस्वभाव धर्म सोइ मान ।
जब वह धर्म प्रगट तोहि होय । तब परमातम पद लख सोय ॥
येही बारह भावन सार । तीर्थंकर भावहिं निरधार ॥
ह्वै वैराग महाव्रत लेहिं । तब भवभ्रमण जलांजुलि देहिं ॥१३॥
'भैया' भावहु भाव अनूप । भावत होहु तुरत शिवभूप ॥
सुख अनंत विलसो निशदीस । इम भाख्यो स्वामी जगदीस ॥

१२७। वारह भावना भूधरदासकृत।

दोहा—राजा राणा छत्रपति, हाथिनके असवार।
मरना सवको एक दिन, अपनी अपनी वार ॥ १ ॥
दलवलदेई देवता, मात पिता परिवार।
मरती विरियां जीवको, कोई न राखनहार ॥ २ ॥
दामविना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूं न सुख संसारमें, सव जग देख्यो छान ॥ ३ ॥
आप अकेलो अवतरै, मरै अकेलो होय।
यूं कवहूं इस जीवका, साथी सगा न कोय ॥ ४ ॥
जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपनो कोय।
पर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥ ५ ॥
दिपै चामचादरमढी, हाड पींजरा देह।
भीतर यासम जगतमें, और नही घिनगेह ॥ ६ ॥

सोरठा।

मोहनींदके जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्मचोर चहुं ओर, सरवस लूटें सुध नहीं ॥ ७ ॥
सतगुर देय जगाय, मोहनींद जव उपशमें।
तव कछु वनै उपाय। कर्मचोर आवत रुकें ॥ ८ ॥
दोहा—ज्ञानदीपतपतेल भर, घरशोधै भ्रम छोर।
याविध विन निकसै नहीं, पैठे पूरव चोर ॥ ९ ॥
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रवल पंच इंद्रीविजय, धार निर्जरा सार ॥ १० ॥
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष संठान।

तामें जीव अनादितें, भरमत हैं विनज्ञान ॥ ११ ।
जाचे सुरतरु देय सुख, चिंतत चिंता रैन ।
बिन जाचें बिन चिंतये धर्म सकल सुख दैन ॥ १२ ॥
धनकनकंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान ।
दुर्लभ है संसारमें, एक जथारथ ज्ञान ॥ १३ ॥

इति बारह भावना भूधरदासकृत ।

१२८ । बारहभावना बुधजनकृत ।

गीताछंद ।

जेती जगतमें वस्तु तेती अथिर परणमती सदा ।
परणमनराखन नाहिं समरथ इंद्र चक्री मुनि कदा ॥
सुतनारियौवन और तन धन जान दामिनि दमकसा ।
ममता न कीजे धारि समतामानिजलमें नमकसा ॥ १ ॥
चेतन अचेतन सब परिग्रह हुआ अपनी थिति लहैं ।
सो रहैं आप करार माफिक अधिक राखे ना रहैं ॥
अब शरण काकी लेयगा जब इंद्र नादी रहत हैं ।
शरण तो इक धर्म आतम जाहि मुनि जन गहत हैं ॥ २ ।
सुर नर नरक पशु सकल हेरे कर्मचेरे बन रहे ।
सुख शाश्वता नहिं भासता सब विपतिमें अतिमन रहे ॥
दुख मानसी तो देवनिमें नारकी दुख ही भरे ।
तिर्यंच मनुज वियोग रोगी शोक संकटमें जरे ॥ ३ ॥
क्यों भूलता शठ फूलता है देख परिकर थोकको ।
लाया कहां लेजायगा क्या फौज भूषण रोकको ॥
जनमत मरत तुझ एकलेको काल केता होगया ।

सँग और नाहीं लगे तेरे सीख मेरी सुन भया ॥ ४ ॥
इंद्रीनतैं जाना न जावै तू चिदानंद अलक्ष है ।
स्वसंवेदन करत अनुभव होत तव परत्यक्ष है ॥
तन अन्य जड जानो सरूपी तू अरूपी सत्य है ।
कर भेद ज्ञान सो ध्यान धर निज और वात असत्य है ॥५॥
क्या देख राचा फिरै नाचा रूपसुन्दरतन लहा ।
मलमूत्र भांडा भरा गाढा तू न जानै भ्रम गहा ॥
क्यों सूग नाही लेत आतुर क्यों न चातुरता धरै ।
तुहि काल गटकै नाहिं अटकै छोड तुझको गिर परै ॥ ६ ॥
कोइ खरा अरु कोइ बुरा नाहीं वस्तु विविध स्वभाव है ।
तू वृथा विकलप ठान उरमें करत राग उपाव है ॥
यूं भाव आस्रव बनत तूही द्रव्य आस्रव सुन कथा ।
तुझ हेतुसे पुद्गल करम न निमित्त हो देते व्यथा ॥ ७ ॥
तन भोग जगत सरूप लख डर भविक गुर शरणा लिया ।
सुन धर्म धारा भर्म गारा हर्षि रुचि सन्मुख भया ।
इंद्री अनिंद्री दावि लीनी त्रस रु थावरवँध तजा ।
तव कर्म आस्रव द्वार रोकै ध्यान निजमें जा सजा ॥ ८ ॥
तज शल्य तीनों वरत लीनो वाह्याभ्यंतर तप तपा ।
उपसर्ग सुरनर जड पशू कृत सहा निज आतम जपा ॥
तव कर्म रसविन होन लागे द्रव्यभावन निर्जरा ।
सव कर्म हरकै मोक्ष वरकै रहत चेतन ऊजरा ॥ ९ ॥
विन लोक नंतालोक माहीं लोकमें द्रव सव भरा ।
सव भिन्नभिन्न अनादिरचना निमितकारणकी धरा ॥

जिनदेव भाषा तिन प्रकाशा भर्मनाशा सुन गिरा।
सुर मनुप तिर्यक नारकी हुइ ऊर्ध्व मध्य अधोधरा॥
अनंत काल निगोदअटका निकस थावर तनधरा।
भू वारितेजवयार व्हैके वेइंद्रिय त्रस अवतरा॥
फिर हो तिइंद्री वा चोइंद्री पंचेंद्री मनविन बना।
मनयुत मनुपगतिहोनदुर्लभ ज्ञान अति दुर्लभ घना॥
जिय! न्हान धोना तीर्थ जाना धर्म नाहीं जपजपा।
तननम रहना धर्म नाहीं धर्म नाहीं तप तपा॥
वर धर्म निज आतम स्वभावी ताहि विन सब निष्फला।
बुधजन धरम निज धार लीना तिनहिं कीना सब भला॥

दोहा—अथिराशरणसंसार है, एकत्वअनित्यहि जान।
अशुचि आस्रव संवरा, निर्जर लोक बखान॥ १३॥
बोध रु दुर्लभ धरम ये, बारह भावन जान।
इनको भावै जो सदा, क्यों न लहै निर्वान॥ १४॥

इति बारह भावना बुधजन कृत सम्पूर्ण।

वज्रनाभि चक्रवर्तीकी।

१२६। वैराग्यभावना।

दोहा—बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जगमाहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म विसारै नाहिं॥ १॥

जोगीरासा वा नरेन्द्र छंद।

इहविध राज करै नरनायक भोगै पुण्य विशालो।
सुखसागरमें रमत निरंतर जात न जान्यो कालो॥
एक दिवस शुभ कर्मसंजोगे क्षेमंकर मुनि वंदे।

ख सिरीगुरुके पद पंकज लोचन अलि आनंदे ॥ २ ॥
तीन प्रदक्षिण दे सिर नायो कर पूजा थुति कीनी ।
साधुसमीप विनय कर बैठ्यो चरननमें दिठि दीनी ॥
गुरु उपदेश्यो धर्मशिरोमणि सुन राजा वैरागे ।
राजरमा वनितादिक जे रस ते रस वेरस लागे ॥ ३ ॥
मुनिसूरजकथनीकिरणावलि लगत भरम बुधि भागी ।
भवतनभोगस्वरूप विचारयो परमधरम अनुरागी ॥
इह संसार महावनभीतर भ्रमते ओर न आवै ।
जामन मरन जरा दों दाझे जीव महादुख पावै ॥ ४ ॥
कबहूं जाय नरक थिति भुंजे छेदन भेदन भारी ।
कबहूं पशु परजाय धरै तहँ वध बंधन भयकारी ॥
सुरगतिमें परसम्पति देखे राग उदय दुख होई ।
मानुप योनि अनेक विपतिमय सर्व सुखी नहीं कोई ॥ ५ ॥
कोई इष्टवियोगी विलखे कोई अनिष्ट सँजोगी ।
कोई दीन दरिद्री विगूचे कोई तनके रोगी ॥
किस ही घर कलिहारी नारी कै वैरी सम भाई ।
किसहीके दुख बाहिर दीखे किसही उर दुचिताई ॥ ५ ॥
कोई पुत्र विना नित झूरे होइ मरै तब रोवै ।
खोटी संततिसों दुख उपजे क्यों प्रानी सुख सोवै ॥
पुण्य उदय जिनके तिनके भी नाहिं सदा सुखसाता ।
यह जगवास जथारथ देखे सबही दीखे दुखदाता ॥ ६ ॥
जो संसारविषै सुख होता तीर्थंकर क्यों त्यागे ।
काहेको शिवसाधन करते संजमसों अनुरागे ॥

देह अपावन अथिर घिनावनि यामें सार न कोई।
सागरके जलसों शुचि कीजे तो भी शुद्ध न होई ॥ ७ ॥
सात कुधातुभरी मलमूरत चर्मलपेटी सो है।
अंतर देखत या सम जगमें और अपावन को है ॥
नवमलद्वार स्रवैं निशिवासर नाम लिये घिन आवे।
व्याधि उपाधि अनेक जहां तहँ कौन सुधी सुख पावे ॥ ८
पोषत तो दुख दोष करै अति सोषत सुख उपजावे।
दुर्जनदेहस्वभाव बराबर मूरख प्रीति बढ़ावे ॥
राचनजोग स्वरूप न याको विरचनजोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजे यामें सार यही है ॥ ९ ॥
भोग बुरे भवरोग बढ़ावें वैरी हैं जग जीके।
बेरस होंय विपाक समय अति सेवत लागें नीके ॥
वज्र अगिनि विषसे विषधरसे ये अधिके दुखदाई।
धर्मरतनके चोर चपल अति दुर्गतिपंथ सहाई ॥ १० ॥
मोहउदय यह जीव अज्ञानी भोग भले कर जानें।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा सो सब कंचन मानें ॥
ज्यों ज्यों भोग सँयोग मनोहर मनवांछित जन पावे।
तृष्णा नागिन त्यों त्यों डंके लहर जहरकी आवे ॥ ११ ॥
मैं चक्रीपद पाय निरंतर भोगे भोग घनेरे।
तो भी तनक भये नहिं पूरन भोग मनोरथ मेरे ॥
राजसमाज महा अघकारण बैरबढ़ावनहारा।
वेश्यासम लछमी अति चंचल याका कौन पत्यारा ॥ १२ ॥
मोहमहारिपु बैरविचार्यो जगजिय संकट डारे।

घरकारागृह वनिता बेड़ी परिजन जन रखवारे ॥
सम्यकदर्शन ज्ञानचरन तप ये जियके हितकारी ।
येही सार असार और सब यह चक्री चितधारी ॥ १३ ॥
छोड़े चौदह रत्न नवोंनिधि अरु छोड़े सँग साथी ।
कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी ॥
इत्यादिक संपति बहुतेरी जीरण तृण सम त्यागी ।
नीति विचार नियोगी सुतकों राज दियो बड़भागी ॥ १४ ॥
होय निशल्य अनेक नृपति सँग भूषण वसन उतारे ।
श्रीगुरु चरनधरी जिनमुद्रा पंच महाव्रत धारे ॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम धनि यह धीरजधारी ।
ऐसी संपति छोड़ बसे वन तिन पद धोक हमारी ॥ १५ ॥
दोहा—परिगहपोट उतार सब, लीनो चारित पंथ ।
निजस्वभावमें थिर भये, वज्रनाभि निरग्रंथ ॥ १६ ॥

इति श्रीवज्रनाभि चक्रवर्तीकी वैराग्यभावना समाप्त ।

१२० । बारह भावना ।

दौलतरामजी कृत । चाल छन्द १४ मात्रा ।

१ । अनित्यभावना ।

जोबनगृह गोधन नारी । हयगयजन आज्ञा कारी ॥
इंद्रीयभोग छिन थाई । सुरधनु चपला चपलाई ॥ १ ॥

२ । अशरण भावना ।

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते ।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ॥ २ ॥

३ । संसार भावना

चहुंगति दुख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं ।

सबविधि संसार असारा, यामें सुख नाहिं लगारा ॥ ३

४ । एकत्व भावना ।

शुभ अशुभकरमफल जेते, भोगे जिय एकहि ते ते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथके हैं भीरी ॥ ४ ॥

५ । अन्यत्व भावना ।

जलपय ज्यों जियतन मेला, पै भिन्न भिन्न नहिं भेला।
तो प्रगट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिल सुत रामा॥

६ । अशुचित्व भावना ।

यह रुधिर राधमल थैली, कीकस वसादितैं मैली।
नवद्वार बहै घिनकारी, अस देह करे किम यारी ॥ ६ ॥

७ । आस्रव भावना ।

जो जोगनकी चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकारि घनेरे, बुधवंत तिन्हें निरवेरे ॥ ७ ॥

८ । संवर भावना ।

जिन पुण्य पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना
तिनही विधि आवत रोके, संवरलहि सुख अवलोके ॥ ८

९ । निर्जरा भावना ।

निजकाल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना
तपकर जो करम खपावै, सोई शिवसुख दरसावै ॥ ९ ॥

१० । लोक भावना ।

किन हू न करयो न धरै को, षटद्रव्यमयी न हरै को।
सो लोकमाहि बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता॥

११ । बोध दुर्लभ भावना ।

अंतिम ग्रीवकलौंकी हद, पायो अनंत बिरियां पद।
पर सम्यक्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निजमें मुनि साध्यौ ॥१

१२। धर्म भावना।

जो भाव मोहतें न्यारे, दृग ज्ञानव्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै ॥ १२ ॥
सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूत उचरिये।
ताको सुनिके भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥ १३ ॥

इति बारह भावना।

१२१। अथ बारह भावना।

जयचंदकृत।

दोहा—द्रव्यरूपकरि सर्व थिर, परजय थिर है कौन।
द्रव्यदृष्टि आपा लखो, पर्जय नयकरि गौन ॥ १ ॥

सोरठा।

जगमें सरनो दोय, शुद्धातम अरु पंच गुरु।
आन कलपना होय मोह उदय जियकें वृथा ॥ २ ॥
दोहा—परद्रव्यनतें प्रीति जो, है संसार अबोध।
ताको फलगति चारमें, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध ॥ ३ ॥
परमारथतें आतमा, एकरूप ही जोय।
कर्म निमित विकलप घने, तिन नासे शिव होय ॥ ४ ॥
अपने अपने सत्वकूं, सर्व वस्तु विलसाय।
ऐसें चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय ॥ ५ ॥
निर्मल अपनो आतमा, देह अपावन गेह।
जानि भव्य निजभावको, यासों तजो सनेह ॥ ६ ॥
आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय दृष्टि निहार।
सब विभाव परिणाममय, आस्रव भाव विडार ॥ ७ ॥
निज स्वरूपमें लीनता, निश्चय संवर जानि।

समिति गुप्ति संयम धरम, धरें पापकी हानि ॥ ८ ॥
संवरमय है आतमा, पूर्व कर्म झड़ जाय ।
निज स्वरूपको पायकर, लोक शिखर जब थाय ॥ ९ ॥
दर्श ज्ञानमय चेतना, आतमधर्म बखानि ।
दया क्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जान ॥ १० ॥
लोक स्वरूप विचारिके, आतम रूप निहार ।
परमारथ व्यवहार मुणि, मिथ्या भाव निवारि ॥ ११ ॥
बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं ।
भवमें प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं ॥ १२ ॥

इति बारह भावना ।

१३२॥ अथ सोलहकारण भावना

चौपाई ।

आठदोषमद आठ मलीन, छह अनायतन शठता तीन ।
ये पचीस मल वर्जित होय, दर्श विशुद्धि कहावे सोय ॥ १ ॥
रत्नत्रयधारी मुनिराय, दर्शनज्ञान चरित समुदाय ।
इनकी विनय विषै परवीन, दुतिय भावना सो अमलीन ॥२॥
शीलधारि धारें समचेत, सहस अठारह अंग समेत ।
अतीचार नहिं लागै जहां, तृतिय भावना कहिये तहां ॥३॥
आगम कथित अरथ अवधार, यथाशक्ति निजबुधि अनुसार
करै निरंतर ज्ञान अभ्यास, तुरिय भावना कहिये तास ॥४॥
दोहा—धर्म धर्मके फल विषै, परतैं प्रीति विशेख ।
यही भावना पंचमी, [illegible] देख [illegible] ॥

औषधि अभय [illegible]

शक्ति समान सदा निर्वहै, छटी भावना धारक वहै ॥ ६ ॥
अनशन आदि मुक्ति दातार, उत्तमतप बारह परकार।
बल अनुसार करै जो कोय सो सातमी भावना होय ॥ ७ ॥
यतीवर्गको कारन पाय, विघन होत जो करै सहाय।
साधु समाधि कहावै सोय, यही भावना अष्टमि होय ॥ ८ ॥
दश विध साधु जिनागम कहे, पथ पीडित रागादिक गहे।
तिनकी जो सेवा सतकार, यही भावना नौमी सार ॥ ९ ॥
परम पूज्य आतम अरहंत, अतुल अनंत चतुष्टयवंत।
तिनकी थुति नित पूजा भाव, दशमि भावना भव जल नाव ॥
जिनवर कथित अर्थ अवतार, रचना करै अनेक प्रकार।
आचारजकी भक्ति विधान, एकादशमि भावना जान ॥ ११ ॥
विद्यादायक विद्यालीन, गुणगरिष्ट पाठक परवीन।
तिनके चरन सदा चित रहै, बहु श्रुत भक्ति बारमी यहै ॥ १२ ॥
भगवत भाषित अरथ अनूप, गणधर ग्रंथित ग्रंथ स्वरूप।
तहां भक्ति वरतै अमलान, प्रवचनभक्ति तेरमी जान ॥ १३ ॥
षट आवश्यक क्रिया विधान, तिनकी कबहूं करै न हान।
सावधान वरतै थित चित्त, सो चौदहवीं परम पवित्त ॥ १४ ॥
कर जप तप पूजाव्रत भाव, प्रगट करै जिनधर्म प्रभाव।
सोई मारग परभावना, यही पंचदशमी भावना ॥ १५ ॥
चार प्रकार संघसों प्रीति, राखै गाय वत्सकी रीति।
यह सोलहमी सब सुखदान, प्रवचन वातसल्य अभिधान ॥
दोहा—सोलह कारन भावना, परम पुण्यको खेत।
भिन्न भिन्न अरु सोलहों, तीर्थंकर पद देत ॥ १७ ॥

डांट लगत यह नाव पडी मझधार पार जावे ॥ १९ ॥

९ निर्जराभावना

ज्यों सरवर जल रुका सूखता तपन पडे भारी ।
संवर रोकै, कर्म निर्जरा, है सोखनहारी ॥
उदयभोग सविपाकसमय पकजाय आम डाली ।
दूजी है अविपाक पकावै, पाल विषै माली ॥ २० ॥
पहली सबके होय नहीं कुछ सरै काम तेरा ।
दूजी करै जु उद्यम करके, मिटै जगत फेरा ॥
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी ।
इस दुलहनकी यही सहेली, जानै सब ज्ञानी ॥ २१ ॥

१० लोक भावना ।

लोक अलोक अकाश माहिं थिर, निराधार जानो ।
पुरुष रूप कर कटी भये षट, द्रव्यनसों मानो ॥
इसका कोइ न करता हरता, अमिट अनादी है ।
जीवरु पुद्गल नाचै यामें, कर्म उपाधी है ॥ २२ ॥
पापपुन्यसों जीव जगतमें, नित सुख दुख भरता ।
अपनी करनी आप भरै शिर, औरनके धरता ॥
मोहकर्मको नाश मेटकर, सब जगकी आसा ।
निज पदमें थिर होय लोकके, शीश करो बासा ॥

११ बोधिदुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोदसे थावर, अरु त्रस गति पानी ।
नरकायाको सुरपति तरसै, सो दुर्लभ प्रानी ॥

दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षाका धरना।
दुर्लभ मुनिवरको व्रत पालन, शुद्धभाव करना ॥
दुर्लभसे दुर्लभ हैं चेतन, बोधि ज्ञान पावे।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भवमें आवे ॥ २५॥

१२। धर्मभावना

षट दरशन अरु बौद्ध रु नास्तिकने जगको लूटा।
मूसा ईसा और मुहम्मदका मजहब झूठा ॥
हो सुछंद सब पाप करें सिर, करताके लावें।
कोई छिनक कोई करतासे, जगमें भटकावें ॥ २६ ॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्रीजिनकी वानी।
सप्त तत्त्वका वर्णन जामें, सबको सुखदानी ॥
इनका चितवन बार बार कर, श्रद्धा उर धरना।
मंगत इसी यतनतें इक दिन, भवसागर तरना ॥२७॥

इति बारहभावना मंगतरायजी मुलतानपुर निवासी कृत समाप्ता ॥

१३४। भावना द्वात्रिंशतिका।

सोरठा।

दुखनाशक जिनराय, बसो हृदयमें मम सदा।
नाशो विषय कषाय, इन संसारी जीवके ॥

त्रिभंगी छंद।

सुमैत्री जीवोंमें सुगुणि गणको देख उमगूं।
दयाको हो धारूं दुखित जनको देख करके ॥
उपेक्षा हो मेरे मुदित मनमें क्रूर जनसे।
सदा स्वामिन्! ऐसी परिणति रहे बोध बलसे ॥१॥

डांट लगत यह नाव पडी मझधार पार जावै ॥ १९ ॥

९। निर्जराभावना।

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पडै भारी ।
संवर रोकै, कर्म निर्जरा, ह्वै सोखनहारी ॥
उदयभोग सविपाकसमय पकजाय आम डाली ।
दूजी है अविपाक पकावै, पाल विषै माली ॥ २० ॥
पहली सबके होय नहीं कुछ, सरै काम तेरा ।
दूजी करै जु उद्यम करके, मिटै जगत फेरा ॥
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुकत रानी ।
इस दुलहनकी यही सहेली, जानै सब ज्ञानी ॥ २१ ॥

१०। लोक भावना।

लोक अलोक अकाश माहिं थिर, निराधार जानो ।
पुरुष रूप कर कटी भये षट, द्रव्यनसों मानों ॥
इसका कोइ न करता हरता, अमिट अनादी है ।
जीवरु पुद्गल नाचै यामें, कर्म उपाधी है ॥ २२ ॥
पापपुन्यसों जीव जगतमें नित सुख दुख भरता ।
अपनी करनी आप भरै शिर, औरनके धरना ॥
मोहकर्मको नाश मेटकर सब जगकी आसा ।
निज पदमें थिर होय लोकके, शीश करो वासा ॥२३॥

११। दुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोदसे थावर अरु त्रस गति पानी ।
नरकायाको सुरपति तरसै सो दुर्लभ प्रानी ॥
उत्तम देश सुसंगति दुर्लभ श्रावककुल पाना ।
दुर्लभ सम्यक दुर्लभ संयम पंचम गुणठाना ॥ २४ ॥

दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षाका धरना।
दुर्लभ मुनिवरको व्रत पालन, शुद्धभाव करना॥
दुर्लभसे दुर्लभ हैं चेतन, बोधि ज्ञान पावे।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भवमें आवे॥ २५॥

१२। धर्मभावना

षट दरशन अरु बौद्ध रु नास्तिकने जगको लूटा।
मूसा ईसा और मुहम्मदका मजहब झूठा॥
हो सुछंद सब पाप करै सिर, करताके लावै।
कोई छिनक कोई करतासे, जगमें भटकावै॥ २६॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्रीजिनकी वानी।
सप्त तत्त्वका वर्णन जामें, सबको सुखदानी॥
इनका चितवन बार बार कर, श्रद्धा उर धरना।
मंगत इसी यतनतें इक दिन, भवसागर तरना॥२७॥

इति बारहभावना मंगतरायजी सुलतानपुर निवासी कृत समाप्ता॥

१३४। भावना द्वात्रिंशतिका।

सोरठा।

दुखनाशक जिनराय, बसो हृदयमें मम सदा।
नाशो विषय कषाय, इस संसारी जीवके॥

शिखरणी छंद।

सुमैत्री जीवोंमें सुगुणि गणको देख उमगूं।
दयाको ही धारूं दुखित जनको देख करके॥
उपेक्षा हो मेरे मुदित मनमें क्रूर जनसे।
सदा स्वामिन्! ऐसी परिणति रहे बोध बलसे॥१॥

इन्द्रवज्रा छंद।

मेरा प्रभो ! आत्म अनंत शक्ति-धारी सदा कर्मकलंकमुक्त। हो जाउँ मैं भिन्न, शरीरसे भी, ऐसी प्रभो ! हो मम शक्ति व्यक्त ॥ २ ॥ दुःखों सुखों शत्रु व बंधुओंमें मेले अकेले घरमें वनोंमें। मेरे सदा नाथ समानता हो विनाश निःशेष ममत्व का हो ॥ ३ ॥ पदाब्ज तेरे मन माहिं मेरे गये उकेरे जड़दी गये या। भानू सरीखे तम नाशकारी प्रभो ! सदा मैं उनका पुजारी ॥ ४ ॥ छोटे-बड़े जीव घने विदारे प्रमादसे हैं चलते हुए ने। या दुःख दीने यदि जंतुओंको, हो देव ! मेरे वह पाप मिथ्या ॥ ५ ॥ कुमार्गगामी पथमुक्ति मूला कषाय इंद्री वश बुद्धिनाशी। जो खो लिया है स्वचरित्र मन हो देव मेरा वह पाप मिथ्या ॥६॥ मनो वचः कायकषायसे जो हैं पाप कीने भवदुःखमूल। स्वकीय निंदा गर्हा दिखाके करूं उन्हें नाश मंत्रको ही ॥ ७ ॥ अति क्रमी या अतिचार मैंने तथा अनाचार चरित्रमें जो। किये कुबुद्धी व प्रमादसे हैं मनाय भागी उनका मुझ है ॥ ८ ॥ मनो वच काय पवित्रता का उल्लंघ होवे कुछ अंशमें तो। अतिक्रमी व अतिचार होंगे वही अनाचार समग्र हो तो ॥ ९ ॥ जो अर्थ मात्रा पद वाक्य छोड़े प्रमादसे की स्तुति देव तेरी। वे पाप मेरे च्युत हों सवेग, सर्वज्ञ होवे अरु आत्म मेरा ॥ १० ॥ हे देवि चिन्तामणि नाम तेरा, बना सदा है चरणाब्ज तेरा। श्रद्धा तथा ज्ञान चरित्र वृद्धी, हो मोक्षसिद्धी व समाधिसे भी ॥ ११ ॥ किया गया पाद मुनीन्द्रसे जो, पूजा गया

नरेंद्रसे जो। गाया गया वेद पुराणमें जो, सो देव मेरे उरमें विराजो ॥१२॥ जो दर्शनज्ञान सुख स्वभावी, समस्त संसार विकारनाशी। जो ध्यानसे गम्य परात्म संज्ञ सो देव मेरे उरमें विराजो ॥ १३ ॥ विध्वंस-कर्ता भव-दुःखका जो, आलोक-कर्ता जगमध्यका जो। दृष्टव्य जो योगि समाधिसे है, सो देव मेरे उरमें विराजो ॥ १४ ॥ जो मोक्षका मार्ग बता रहा है, संसारके दुःख सुदूर जामे। त्रैलोकदृष्टा तनु-ताप-हीन, सो देव मेरे उरमें विराजो ॥ १५ ॥ दुःखी किये हैं जग-जीव सारे, रागादि ऐसे जिसके नहीं हैं। ज्ञानी अतींद्री अनपाय है जो, सो देव मेरे उरमें विराजो ॥ १६ ॥ कल्याणकारी जिसका स्वरूप, सुशुद्ध वा बुद्ध अबद्ध है जो। ध्याया हुआ कर्म-कलंक खोता सो देव मेरे उरमें विराजो ॥ १७ ॥ छूते नहीं हैं जिसको कलंक जैसे सदा ध्वांत न सूर्यको है। जो ध्रौव्य निर्दोष अनेक एक, सो देव देवें मुझको सुशांति ॥१८॥ जग-प्रकाशी रवि तेजको भी जो है दबाता उस ज्ञान युक्त। तथा सदा हैं स्थिर आत्ममें जो सो देव देवें मुझको सुशांति ॥ १९ ॥ संसार देता जिसमें दिखाई निर्भ्रांत भाई! उस ज्ञानयुक्त। शुद्ध स्वरूपी शिव शांत नित्य सो देव देवें मुझको सुशांति ॥ २० ॥ ज्वाला जलाती तरु-जाल जैसे तैसे विनाशे जिन मान मूर्छा। विषाद निद्रा भय शोक चिंता सो देव देवें मुझको सुशांति ॥ २१ ॥ न भूमि चौकी तृण वा शिला भी आसन कभी काम समाधिमें है। विशुद्ध आत्मा जित-राग-द्वेष माना गया किंतु सुधी जनोंसे ॥ २२ ॥ है सो नहीं आसन

ध्यान कारी ना लोक पूजा नहिं संघ मेला । अध्यात
संलीन सुभव्य होओ छोड़ो सदा बाह्य कुवासनाको ॥ २३ ॥
मेरा नहीं बाह्य पदार्थ कोई न मैं हुआ हूं उनका कभी भी
ऐसा विचारो मनमें सदा ही हो बाह्यको छोड सुमुक्तिपात्र
॥ २४ ॥ आत्मा सदा देख स्व आत्ममें रे ! हो दर्शनज्ञान
मयी विशुद्ध । एकाग्रचेता मुनि क्या कहीं भी पाता नहीं
सुसमाधिको रे ! ॥ २५ ॥ आत्मा सदा नित्य व एक मेरा
ज्ञान-स्वभावी अकलंक भी है । पदार्थ सारे जगके विनाशी
उत्पन्न होते निज हेतुसे हैं ॥ २६ ॥ संबंध रक्खे न शरीरसे
जो पुत्रादि होवे उसके लगे क्यों ? । जो कायसे खाल उतार
डाले तो रोमकूपे किसमें रहेंगे ? ॥ २७ ॥ प्राणी सदा दुःख
अनेक पाता संयोगसे बाह्य कुवस्तुओंके । वियोगसे योग
त्याग देवो जो मुक्ति संयोग सुशीघ्र चाहो ॥ २८ ॥ दो छोड़
संकल्प-विकल्प जाल संसारमें है निज जो रुलाते । निर्लिप्त
देखो निज आत्मको रे ! सुलीन होओ परमात्ममें रे ॥ २९ ॥
जो कर्म तूने पहिले किये हैं देते तुझे हैं फल आज वे ही
देने लगे जो फल अन्य कोई स्वयं किये कर्म हि व्यर्थ होंगे
॥ ३० ॥ अतः विचारो मनमाहिं ऐसे स्वकर्मको छोड़ न
अन्य कोई । देता किसीको कुछ भी नहीं है निजात्मका
ध्यान न क्यों करूं मैं ॥ ३१ ॥

गया पूजा भाई अमितगतिसे देव नित जो ।
विवेकी निर्दोषी सु अतिशयसे है महित जो ॥
करेंगे जो प्राणी मन-कमलमें ध्यान उसका ।

सदाको पावैंगे चरम-पद जैसे विभवको ॥ ३२ ॥
"अमर" छंद दो-तीससे, परमातमका ध्यान ।
एकचित्त हो जो करै, पावै पद निर्वान ॥ ३३ ॥

९। नवमा अध्याय ।

परमार्थजकड़ीसंग्रह ।

१३५। जकड़ी रूपचंदकृत ।

चेतन अचरज भारी, यह मेरे जिय आवै ।
अमृतवचन हितकारी, सदगुरु तुमहिं पढ़ावै ॥
सदगुरु तुमहिं पढ़ावै चित दे, अरु तुमहू हो ज्ञानी ।
तवहू तुमहिं न क्यों हू आवै, चेतनतत्त्वकहानी ॥
विषयनकी चतुराई कहिये, को सरि करै तुम्हारी ।
विन गुरु फुरत कुविद्या कैसें, चेतन अचरज भारी ॥ १ ॥
चेतन चतुर सयाने, काहे तुम भ्रम भूले ।
विषय जु देखि रवाने, कहा जानि जिय फूले ॥
कहा जानि जिय फूले चेतन, तुम तौ विधिना बाँचे ।
सुद्ध सुभाव सहज सुख छोरि जु, इंद्रियसुखरस राचे ॥
भोजन सेज वेष कर जुवनी, गीतादिक जु रवाने ।
भये सुवा भव-सेंवर द्रुमके, चेतन चतुर सयाने ॥ २ ॥
मोहमहामदमातें, वादि अनादि गँवायौ ।
अपने धरमनि घातैं, विषयनिसौं मन लायौ ॥

---

१ बराबर । २ रमणीय—सुन्दर । ३ तुम तो विधाताके बाँचे अर्थात् ठगाये गये ४ युवती—जवानस्त्री । ५ संसाररूपी सेमर वृक्षके तोते । ६ व्यर्थ ही ।

ध्यान कारी ना लोक पूजा नहिं संघ मेला । अध्यात
संलीन सुभव्य होओ छोड़ो सदा बाह्य कुवासनाको ॥ २३
मेरा नहीं बाह्य पदार्थ कोई न मैं हुआ हूं उनका कभी भी
ऐसा विचारो मनमें सदा ही हो बाह्यको छोड सुमुक्तिगा
॥ २४ ॥ आत्मा सदा देख स्व आत्ममें रे ! हो दर्शनज्ञान
मयी विशुद्ध । एकाग्रचेता मुनि क्या कहीं भी पाता नहीं
सुसमाधिको रे ! ॥ २५ ॥ आत्मा सदा नित्य व एक मेरा
ज्ञान-स्वभावी अकलंक भी है । पदार्थ सारे जगके विनाशी
उत्पन्न होते निज हेतुसे हैं ॥ २६ ॥ संबंध रक्खे न शरीर
जो पुत्रादि होने उसके लगे क्यों ? । जो कायसे खाल उता
डाले तो रोमकूप किसमें रहेंगे ? ॥ २७ ॥ प्राणी सदा दु
अनेक पाता संयोगसे बाह्य कुवस्तुओंके । वियोगमें योग
त्याग देवो जो मुक्ति संयोग सुशीघ्र चाहो ॥ २८ ॥ दो
संकल्प-विकल्प जाल संसारमें हैं नित जो रुलाते । निर्वि
देखो निज आत्मको रे ! सुलीन होओ परमात्ममें रे ॥ २९
जो कर्म तूने पहिले किये हैं देते तुझे हैं फल आज वे ह
देने लगे जो फल अन्य कोई स्वयं किये कर्म हि व्यर्थ
॥ ३० ॥ अतः विचारो मनमाहिं ऐसे स्वकर्मको छोड़
अन्य कोई । देता किसीको कुछ भी नहीं है निजात्म
ध्यान न क्यों करूं मैं ॥ ३१ ॥

गया पूजा भाई अमितगतिसे देव नित जो ।
विविक्ती निर्दोषी सु अतिशयमें है महित जो ॥
करेंगे जो प्राणी मन-कमलमें ध्यान उसका ।

सदाको पावैंगे चरम-पद जैसे विभवको ॥ ३२ ॥
"अमर" छंद दो-तीससे, परमातमका ध्यान ।
एकचित्त हो जो करै, पावै पद निर्वान ॥ ३३ ॥

९। नवमा अध्याय ।

परमार्थजकड़ीसंग्रह ।

१३५। जकड़ी रूपचंदकृत ।

चेतन अचरज भारी, यह मेरे जिय आवै ।
अमृतवचन हितकारी, सदगुरु तुमहिं पढ़ावै ॥
सदगुरु तुमहिं पढ़ावै चित दै, अरु तुमहू हौ ज्ञानी ।
तवहू तुमहिं न क्यों हू आवै, चेतनतत्त्वकहानी ॥
विपयनकी चतुराई कहिये, को सरि[1] करै तुम्हारी ।
विन गुरु फुरत कुविद्या कैसें, चेतन अचरज भारी ॥ १ ॥
चेतन चतुर सयाने, काहे तुम भ्रम भूले ।
विपय जु देखि रवाने[2], कहा जानि जिय फूले ॥
कहा जानि जिय फूले चेतन, तुम तौ विधिनां[3] वाँचे ।
सुद्ध सुभाव सहज सुख छोरि जु, इंद्रियसुखरस राचे ॥
भोजन सेज वेप कर जुंवती[4], गीतादिक जु रवाने ।
भये सुवा भव-सैंवर द्रुमके[5], चेतन चतुर सयाने ॥ २ ॥
मोहमहामदमातैं, वादि[6] अनादि गँवायौ ।
अपने धरमनि घातैं, विपयनिसौं मन लायौ ॥

---

१ वरावरी । २ रमणीय-सुन्दर । ३ तुम तो विधातासे वाँचे अर्थात् ठगाये गये ४ युवती-जवानस्त्री । ५ संसाररूपी सेमर वृक्षके तोते । ६ व्यर्थ ही ।

ध्यान कारी ना लोक पूजा नहिं संघ मेला । ...
संलीन सुभव्य होओ छोड़ो सदा वाह्य कुवासनाको ॥ २३
मेरा नहीं वाह्य पदार्थ कोई न मैं हुआ हूं उनका कभी भी
ऐसा विचारो मनमें सदा ही हो वाह्यको छोड सुधु...
॥ २४ ॥ आतमा सदा देख स्व आतममें रे ! हो ...
मयी विशुद्ध । एकाग्रचेता मुनि क्या कहीं भी पाता नहीं
सुसमाधिको रे ! ॥ २५ ॥ आतमा सदा नित्य व एक ...
ज्ञान-स्वभावी अकलंक भी है । पदार्थ सारे जगके ...
उत्पन्न होते निज हेतुसे हैं ॥ २६ ॥ संबंध रक्खे न ...
जो पुत्रादि होने उसके लगे क्यों ? । जो कायसे खाल ...
डाले तो रोमकूप किसमें रहेंगे ? ॥ २७ ॥ प्राणी सदा ...
अनेक पाता संयोगसे वाह्य कुवस्तुओंके । त्रियोगसे योग
त्याग देवो जो मुक्ति संयोग सुशीघ्र चाहो ॥ २८ ॥ दो ...
संकल्प-विकल्प जाल संसारमें हैं नित जो रुलाते । ...
देखो निज आतमको रे ! सुलीन होओ परमातममें रे ॥ ...
जो कर्म तूने पहिले किये हैं देते तुझे हैं फल आज वे ।
देने लगे जो फल अन्य कोई स्वयं किये कर्म हि व्यर्थ ।
॥ ३० ॥ अतः विचारो मनमाहिं ऐसें स्वकर्मको छोड़
अन्य कोई । देता किसीको कुछ भी नहीं है निजा...
ध्यान न क्यों करूं मैं ॥ ३१ ॥

गया पूजा भाई अमितगतिमि देव नित जो ।
विवेकी निर्दोषी सु अतिशयमे है महित जो ॥
करेंगे जो प्राणी मन-कमलमें ध्यान उसका ।

सदाको पावैगे चरम-पद जैसे विभवको ॥ ३२ ॥
"अमर" छंद दोत्तीससे, परमातमका ध्यान ।
एकचित्त हो जो करै, पावै पद निर्वान ॥ ३३ ॥

९। नवमा अध्याय ।

परमार्थजकड़ीसंग्रह ।

१३५। जकड़ी रूपचंदकृत ।

चेतन अचरज भारी, यह मेरे जिय आवै ।
अमृतवचन हितकारी, सदगुरु तुमहिं पढ़ावै ॥
सदगुरु तुमहिं पढ़ावै चित दे, अरु तुमहू हो ज्ञानी ।
तबहू तुमहिं न क्यों हू आवै, चेतनतत्त्वकहानी ॥
विषयनकी चतुराई कहिये, को सरि करै तुम्हारी ।
विन गुरु फुरत कुविद्या कैसें, चेतन अचरज भारी ॥ १ ॥
चेतन चतुर सयाने, काहे तुम भ्रम भूले ।
विषय जु देखि रैंचाने, कहा जानि जिय फूले ॥
कहा जानि जिय फूले चेतन, तुम तौ विधिनी बाँचे ।
सुद्ध सुभाव सहज सुख छोरि जु, इंद्रियसुखरस राचे ॥
भोजन सेज वेष कर जुवती, गीतादिक जु रचाने ।
भये मुवा भव-सैंवर इनके, चेतन चतुर सयाने ॥ २ ॥
मोहमहामदमाते, बाँदि अनादि गँवायो ।
अपने धरमनि घाते, विषयनिसों मन लायो ॥

१ देखन २ [illegible] ३ [illegible] ४ [illegible] ५ [illegible] ६ [illegible]

विषयनिहींसौं मन लायो तुम, बाहिर सुंदर दीठे।
विषफल परिहरि शेष कटुक हैं, सेवत ही सुख मीठे॥
कामभोगभ्रमभाव भुलाने, रुचें न सदगुरुबातें।
हित अनहित कछु समझत नाहीं, मोहमहामदमातें॥ ३॥
इंद्रिनिकौ सुख सेए, सुखलव दुख अधिकायो।
सविष सुभोजन जेएं, कब कौनें सुख पायो॥
कब कौनें सुख पायो चेतन, ए सुख उहके स्वादे।
फरस दंन्ति, रस मीन, गंध अलि, रूप सलभ, मृग नादे॥
एक एक इंद्रिनिको यह दुख, पाँचौं तुमहिं बँधे ए।
सावधान किन होहु वंध हो, इंद्रिनिको सुख सेए॥ ४॥
इह संसारमँझारे, सुरनरवरपद पाए।
स्वकृतकरमअनुसारे, सुख सेए मन भाए॥
सुख सेए मनभाए तुम चिर, इंद्रिनि रति सुख माने।
तब हू त्रिपति भई नहि कब हू, अरु तिसना अधिकाने।
अब रतनत्रयपथ धरि शिवपुर, जाहु न होहु गुसारे।
रूपचन्द कहै दुख देखत हो, इह संसारमँझारे॥ ५॥

१२६। जकड़ी रूपचंदकृत।

राग गौड़ी।

चेतन चिर भूल्यो भम्यो, देख्यो चित न विचारि।
करम कुसंगति वहि पर्यो, यह भव-गहन मझारि॥
यह भवगहनमझारि मूरख, दुखदावानल नित दह्यो।
मिथ्यात तिनसौं दिष्टि छाई, सुकृतिपंथ न तैं लह्यो॥

[illegible]

तू पंच-इंद्री-सुखतृषा वसि, विषय खार सलिल छक्यो।
निज सुख सुधारसविमुख चहुंगति, चेतन चिर भूल्यो भम्यो॥
चहुंगति चिर भ्रमतहिं गयो, रहियो कहुं न थिराय।
कर्मप्रकृतिपेर्यो फिर्यो, देख्यौ लोक शिराय॥
देखियौ लोकशिराय सबतैं, ऊंच नीच परजे धरे।
करम अरु नोकरमरूपी, सकलपुद्गल आहरे॥
परिनयो परपरनति निरंतर, काज कछु भूलि न भयौ।
परमरत्नत्रय लबधि बिनु, चहुं गति चिर भ्रमतहिं गयौ॥२॥
गाफिल ह्वैके कहा रह्यो, अपनी सुरत बिसारि।
विषय कषायनिरत भयौ, दीनें योग पसारि॥
दीनें नियोग पसारि तीनों, सुभासुभरसपरिनयों।
आश्रये संतत करम बहु विधि, तोहि तिनि आवंरि लयौ॥
जिय कछु सुधिबुधि तोहि नाहीं, मूढमोहग्रहनि ग्रह्यो।
गुन सील सरवस खोय अपनो, गाफिल ह्वैके कहा रह्यो॥३॥
चेति चतुरमति चेतना, परपरनतिहिं निवारि।
दर्शनज्ञानचरित्रमय, अपनी वस्तु सँभारि॥
अपनी वस्तु सभाँरि बिसरी, कहा इत उत भटकही।
बहिरमुख भूल्यो भया कत, छोडि कैंन तुष झटकही॥
निजवस्तु अंतरगत विराजित, चिदानंदन-केतना।
स्वानुभवबुद्धि प्रजुंजि देखहि चेति चतुरमति चेतना॥४॥
इह संसारकुवासनें, दुख देखे चिरकाल।
अब तू यातें विरचही, छोडि सकल भ्रमजाल॥

---

१ ढक लिया। २ बादल। ३ छिलका। ४ चेतन जिसको चेतना लक्षण हुआ है।

विषयनिहीसौं मन लायो तुम, बाहिर सुंदर दीठे।
विषफल परिहरि शेप कटुक हैं, सेवत ही सुख मीठे॥
कामभोगभ्रमभाव भुलाने, रुचैं न सदगुरुबातें।
हित अनहित कछु समझत नाहीं, मोहमहामदमातें॥ ३॥
इंद्रिनिको सुख सेए, सुखलव दुख अधिकायो।
सविष सुभोजन जेएं, कब कौनैं सुख पायो॥
कब कौनैं सुख पायो चेतन, ए सुख उहके स्वादे।
फरस दन्ति, रस मीन, गंध अलि, रूप सलैंभ, मृग नांदे॥
एक एक इंद्रिनिको यह दुख, पाँचों तुमहिं बँधे ए।
सावधान किन होहु बंध हो, इंद्रिनिको सुख सेए॥ ४॥
इह संसारमँझारे, सुरनरवरपद पाए।
स्वकृतकरमअनुसारे, सुख सेए मन भाए॥
सुख सेए मनभाए तुम चिर. इंद्रिनि रचि सुख माने।
तब हू त्रिपति भई नहि कब हू, अरु तिसना अधिकाने।
अब रतनत्रयपथ धरि शिवपुर, जाहु न होहु सुखारे।
रूपचन्द कतें दुख देखत हो, इह संसारमँझारे॥ ५॥

१३६। जकडी रूपचंदकृत।

राग गौड़ी।

चेतन चिर भूल्यो भम्यो, देख्यो चित न विचारि।
कम्म कुसंगति बहि पर्यो, यह भव-गहन मझारि॥
यह भवगहनमझारि मूरख, दुखदवानल नित दह्यो।
मिथ्यात पिनमों दिष्टि छाई, मुकतिपंथ न तैं लह्यो॥

१ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible]। ४ [illegible]। ५ [illegible] ६। [illegible]

तू पंच-इंद्री-सुखत्रिषा वसि, विषय खार सलिल छक्यो ।
निज सुख सुधारसविमुख चहुंगति, चेतन चिर भूल्यो भम्यो ॥
चहुंगति चिर भ्रमतहिं गयौ, रहियो कहुं न थिराय ।
कर्मप्रकृतिपेर्‌यो फिर्‌यो, देख्यौ लोक शिराय ॥
देखियौ लोकशिराय सबतें, ऊंच नीच परजै धरे ।
करम अरु नोकरमरूपी, सकलपुदगल आहरे ॥
परिनयौ परपरनति निरंतर, काज कछु भूलि न भयौ ।
परमरत्नत्रय लवधि विनु, चहुं गति चिर भ्रमतहिं गयौ ॥२॥
गाफिल ह्वैके कहा रह्यौ, अपनी सुरत विसारि ।
विषय कषायनिरत भयौ, दीनें योग पसारि ॥
दीनें नियोग पसारि तीनों, सुभासुभरसपरिनयों ।
आश्रये संतत करम वहु विधि, तोहि तिनि आवेरि[1] लयौ ॥
जिय कछू सुधिवुधि तोहि नाहीं, मूढमोहग्रहनि ग्रह्यौ ।
गुन सील सरवस खोय अपना, गाफिल ह्वैकै कहा रह्यौ ॥३॥
चेति चतुरमति चेतना, परपरनतिहिं निवारि ।
दर्शनज्ञानचरित्रमय, अपनी वस्तु सँभारि ॥
अपनी वस्तु सभाँरि विसरी, कहा इत उत भटकही ।
बहिरमुख भूल्यो भया कत, छोडि कन[2] तुष[3] झटकही ॥
निजवस्तु अंतरगत विराजित, चिदानंदन-केतना[4] ।
स्वानुभवबुद्धि प्रजुंजि देखहि, चेति चतुरमति चेतना ॥ ४ ॥
इह संसारकुवासतें, दुख देखे चिरकाल ।
अव तू यातें विरचही, छोडि सकल भ्रमजाल ॥

१. ढक लिया । २ चावल । ३ छिलका । ४ चेतन जिसकी केतना अर्थात् धुजा है ।

छोडि सकल भ्रमजाल चेतन, रतनत्रयं आराध ही ॥
आपुने वलहिं सँभार अतिवल, करम-वैरिनि साध ही ॥
समरसीभाव सुभावपरनति, सदा रहहि उदासतें।
'रूपचंद' सहजहीं छूटहिं, इह संसारकुवासतें ॥ ५ ॥

१३७। जकडी दौलतरामकृत।

अव मन मेरा वे, सीखवचन सुन मेरा।
भजि जिनवर पद वे, ज्यों विनसे दुख तेरा ॥
विनसे दुख तेरा भववनकेरा, मनवचतन जिनचरन भजो।
पंचेंकरनवश राख सुज्ञानी, मिथ्यामतमग दोर तजो ॥
मिथ्यामतमग पगि अनादितें, तें चहुंगति कीन्हा फेरा।
अवहू चेत अचेत होय मत, सीख वचन सुन मन मेरा ॥ १ ॥
इस भववनमें वे, तें साता नहिं पाई।
वैसुविधिवश ह्वै वे, तें निजसुधि विसराई ॥
तें निजसुधि विसराई भाई, तातें विमल न वोध लहा।
परपरनतिमें मगन भयो तू, जन्म-जरा-मृत-दाह-दहा ॥
जिनमत सारसरोवरकों अव,-गाहि लागि निजचिंतनमें।
तो दुखदाह नशें सव नातर, फेर फंसे इस भववनमें ॥ २ ॥
इस तनमें तू वे, क्या गुन देख लुभाया।
महा अपावन वे, सतगुरु याहि वताया ॥
सतगुरु याहि अपावन गाया, मलमूत्रादिकका गेहा।
कृमिकुल-कलित लखत घिन आवे, यासों क्या कीजे नेहा ॥

१ संसाररूपी वनका। २ पांच इंद्रियों। ३ आठ कर्मोंके वश होकर।

यह तन पाय लगाय आपनी, परनति शिवमगसाधनमें ।
तो दुखदंद नशैं सब तेरा, यही सार है इस तनमें ॥ ३ ॥

भोग भले न सही, रोग शोकके दानी ।
शुभगति रोकन वे, दुर्गति पथ अगवानी ॥
दुर्गति पथ अगवानी हैं जे, जिनकी लगन लगी इनसों ।
तिन नानाविध विपति सही है, विमुख भयौ निजसुख तिनसों ॥
कुंजर[1] झख[2] अलि[3] शलभ[4] हिरन इन, एक अक्षवश[5] मृत्यु लही ।
यातैं देख समझ मनमाहीं, भवमें भोग भले न सही ॥ ४ ॥

काज सरै तब वे, जब निजपद आराधै ।
नशै भवावलि[6] वे, निराबाधपद लाधै ॥
निराबाधपद लाधै तब तोहि, केवलदर्शनज्ञान जहां ।
सुख अनंत अतिइन्द्रियमंडित, वीरज अचल अनंत तहां ॥
ऐसा पद चाहै तो भज निज[7], बार बार अबको उचरै ।
'दौल' मुख्य उपचार रत्नत्रय, जो सेवै तो काज सरै ॥ ५ ॥

१३८। जकड़ी दौलतरामकृत ।

वृषभादि जिनेश्वर ध्याऊं, शारद अंबा चित लाऊं ।
द्वैविधि-परिग्रह-परिहारी, गुरु नमहुं स्वपरहितकारी ॥
हितकारि तारक देवश्रुत गुरु, परख निज उर लाइये ।
दुखदायकुपथविहाय शिवसुख,-दाय जिनवृष ध्याइये ॥
चिरतैं कुमगपगि मोहठगकरि, ठग्यौ भव[8]-कानन पर्यौ ।
ब्यौलीसद्विकलख जौनि[9]में, जर-मरन-जामन-दव[10] जर्यौ ॥ १ ॥

---

१ हाथी । २ मछली । ३ भौंरा—भ्रमर । ४ पतंग । ५ एक एक इन्द्रियके वशसे । ६ भवोंका समूह । ७ "जिन" भी पाठ है । ८ संसार रूपी वन । ९ चौरासीलाख योनि । १० वृद्धावस्था, मृत्यु और जन्मरूपी अग्निमें जला ।

यह तन पाय लगाय आपनी, परनति शिवमगसाधनमें।
तो दुखदंद नसे सब तेरा, यही सार है इस तनमें ॥ ३ ॥

भोग भले न सही, रोग शोकके दानी।
शुभगति रोकन वे, दुर्गति पथ अगवानी ॥
दुर्गति पथ अगवानी है जे जिनकी लगन लगी इनसौं।
तिन नानाविध विपति सही है, विमुख भयो निजसुख तिनसौं ॥
कुंजर झख अलि शलभ हिरन इन, एक अक्षवश मृत्यु लही।
यातैं देख समझ मनमाहीं, भवमें भोग भले न सही ॥ ४ ॥

काज सरै तब वे, जब निजपद आराधे।
नसै भवावलि वे, निराबाधपद लाधे ॥
निराबाधपद लाधे तब तोहि, केवलदर्शनज्ञान जहां।
सुख अनंत अतिइन्द्रियमंडित, वीरज अचल अनंत तहां ॥
ऐसा पद चाहे तो भज निज, बार बार अबको उचरै।
'दौल' मुख्य उपचार रत्नत्रय, जो सेवै तो काज सरै ॥ ५ ॥

१३८। जकड़ी दौलतरामकृत।

वृषभादि जिनेश्वर ध्याऊं, शारद अंबा चित लाऊं।
देविधि-परिग्रह-परिहारी, गुरु नमहुं स्वपरहितकारी ॥
हितकारि तारक देवश्रुत गुरु, परख निज उर लाइये।
दुखदायकुपथविहाय शिवसुख-दाय जिनवृष ध्याइये ॥
चिरतैं कुमगपगि मोहठगकरि, ठग्यो भवकानन पर्यो।
स्वात्मानहितकरन सौंतिन, संचरन-जानन-नैन ठग्यो ॥ १ ॥

[illegible]

ाह तन पाय लगाय आपनी, परनति शिवमगसाधनमें ।
ाो दुखदंद नशै सब तेरा, यही सार है इस तनमें ॥ ३ ॥
भोग भले न सही, रोग शोकके दानी ।
शुभगति रोकन वे, दुर्गति पथ अगवानी ॥
दुर्गति पथ अगवानी हैं जे जिनकी लगन लगी इनसों ।
तिन नानाविध विपति सही है, विमुख भयो निजसुख तिनसों ॥
कुंजर[1] झख[2] अलि[3] शलभ[4] हिरन इन, एक अक्षवश[5] मृत्यु लही ।
यातें देख समझ मनमाहीं, भवमें भोग भले न सही ॥ ४ ॥
काज सरै तब वे, जब निजपद आराधै ।
नशै भवावलि[6] वे, निराबाधपद लाधै ॥
निराबाधपद लाधै तब तोहि, केवलदर्शनज्ञान जहां ।
सुख अनंत अतिइन्द्रियमंडित, वीरज अचल अनंत तहां ॥
ऐसा पद चाहै तो भज निज[7], बार बार अबको उचरै ।
'दौल' मुख्य उपचार रत्नत्रय, जो सेवै तो काज सरै ॥ ५ ॥

१३८। जकड़ी दौलतरामकृत ।

वृषभादि जिनेश्वर ध्याऊं, शारद अंबा चित लाऊं ।
द्वैविधि-परिग्रह-परिहारी, गुरु नमहुं स्वपरहितकारी ॥
हितकारि तारक देवश्रुत गुरु, परख निज उर लाइये ।
दुखदायकुपथविहाय शिवसुख,-दाय जिनवृष ध्याइये ॥
चिरतें कुमगपगि मोहठगकरि, ठग्यौ भव[8]-कानन पर्‌यौ ।
व्यालीसद्विकलख[9] जौनिमें, जर[10]-मरन-जामन-दव जर्‌यौ ॥ १ ॥

---

१ हाथी । २ मछली । ३ भौंरा—भ्रमर । ४ पतंग । ५ एक एक इन्द्रियके वशसे । ६ भवोंका समूह । ७ "जिन" भी पाठ है । ८ संसार रूपी वन । ९ चौरासीलाख योनि । १० वृद्धावस्था, मृत्यु और जन्मरूपी अग्निमें जला ।

जब मोहरिपु दीन्हीं घुमरिया, तसुवश निगोदमें परिया।
तहां स्वास एककेमाहीं, अष्टादश मरन लहाहीं ॥
लहि मरन अन्तर्मुहूर्तमें, छ्यासठ सहस शत तीन ही।
षटतीस काल अनंत यों दुख, सहे उपमा ही नहीं ॥
कबहूं लही वर आयु छिति-जल-पवन-पावक-तरुतणी।
तसु भेद किंचित कहूं सो सुन, कह्यो जो गौतमगणी ॥ २ ॥
पृथिवी द्वयभेद बखाना, मृदु माटी कठिन पखाना।
मृदु द्वादशसहस वरसकी, पाहन बाईस सहसकी ॥
पुनि सहस सात कही उदक त्रय, सहसवर्ष समीरकी।
दिन तीन पावक दश सहस तरु, प्रभृति नाश सुपीरकी ॥
बिनघात सूक्ष्म देहधारी, घातजुत गुरुतन लह्यो।
तहँ खनन तापन जलन व्यंजन, छेद भेदन दुख सह्यो ॥
शंखादि दुइंद्री प्रानी, थिति द्वादशवर्ष बखानी।
यूंकादि तिइंद्री हैं जे, वासर उनचास जियें ते ॥
जीवें छमास अलीप्रमुख, ब्यालीस सहस उरगतनी।
खगकी बहत्तरसहस नवपूर्वांग सरिसृपकी भनी ॥
नरमत्स्यपूरवकोटकी थिति, करम भूमि बखानिये।
विकलबिन भोगभूंनर,पशु त्रिपल्य प्रमानिये ॥ ४ ॥
अघवश करि नरक बसेरा, भुगतें तहँ कष्ट घनेरा।
छेदें तिलतिल तन सारा, छेपें द्रहपूंतिमँझारा ॥
वज्रानिल पचावें, धरहिं शूली ऊपरें।

१ पृथ्वी। २ पानी। ३ जूं आदि। ४ भ्रमर आदि। ५ मर्प विशेष। ६ भोगभूमिया मनुष्य और पशु। ७ दुर्गंधिके भरे तालाव।

सींचें जु खारे वारिसों दुठ, कहैं व्रेण नीके करें ॥
वैतरणिसरिता समल जल अति, दुखद तरु सेंवलतने ।
अति भीम वन असिक्रांत समदलै, लगत दुख देवें घने ॥५॥
तिस भूमें हिम गरमाई, सुरगिरि सम अर्स गल जाई ।
तामें थिति सिंधुतनी है, यों दुखद नरक अवनी है ॥
अवनी तहांकी तें निकसि, कबहूं जनम पायौ नरौ ।
सर्वांग सकुचित अति अपावन, जठर जननीके परौ ॥
तहँ अधोमुख जननी रसांश,-थकी जियौ नवमास लों ।
ता पीरमें कोउ सीर नाहीं, सहै आप निकास लों ॥ ६ ॥
जनमत जो संकट पायौ, रसना तें जात न गायौ ।
लहि बालपने दुख भारी, तरुनापौ लयौ दुखकारी ॥
दुखकारि इष्ट वियोग अशुभ,-सँयोग सोग सरोगता ।
परसेव ग्रीषम सीत पावस, सहै दुख अतिभोगता ॥
काहू कुतियँ काहू कुबांधव, कहुं सुता व्यभिचारिणी ।
किसहू विसर्न-रत पुत्र दुष्ट, कलत्र कोऊ पररिणी ॥ ७ ॥
वृद्धापनके दुख जेते, लखिये सब नयननते तें ।
मुखलाल बहै तन हालै, विन शक्ति न वसन सँभालै ॥
न सँभाल जाके देहकी तो, कहो वृषकी का कथा ।
तबही अचानक आन जम गह, मनुजजन्म गयौ वृथा ॥
काहू जनम शुभ ठान किंचित, लह्यो पद चहुंदेवको ।

१ फोड़े। २ [illegible]। ३ वन। ४ [illegible]। ५ पृथ्वी। ६ [illegible] [illegible]। ७ दुख [illegible]। ८ [illegible]। ९ [illegible]। १० धर्मकी। ११ चार [illegible] देव।

अभियोग किल्विषँ नाम पायो, सह्यौ दुख परसेवको ॥ ८ ॥
तहँ देख महत सुररिद्धी, झूर्‌यो विषयनकरि गृद्धी ।
कबहूं परिवार नसानों, शोकाकुल ह्वै विललानों ॥
विललाय अति जब मरन निकर्‌यो, सह्यो संकट मानसी ।
सुरविभव दुखद लगी तबै जब, लखी मालँ मलोंनसी ॥
तबही जु सुर उपदेशहित समुझाइयो समुझ्यो न त्यों ।
मिथ्यात्वजुत च्युत कुगति पाई, लहै फिर सो स्वपद क्यों ॥
यों चिरभव अटवी गाही, किंचित साता न लहाही ।
जिनकथित धरम नहिं जान्यो, परमाहिं अपनपो मान्यो ॥
मान्यो न सम्यक त्रयातम, आतम अनातममें फँस्यो ।
मिथ्या-चरन-दृग्ज्ञान रंज्यो, जाय नवग्रीवक वस्यो ॥
पै लह्यो नहिं जिनकथित शिवमग, वृथा भ्रम भूल्यो जिया ।
चिदभावके दरसावबिन सब, गये अहेले तप किया ॥ १० ॥
अब अदभुत पुण्य उपायो, कुल जात विमल तू पायो ।
यातें सुन सीख सयाने, विषयनसों रति मत ठाने ॥
ठाने कहा रति विषयमें ये, विषम विषधरसम लखो ।
यह देह मरत अनंत इनकों, त्यागि आतमरस चखो ॥
या रसरसिकजन बसे शिव अब, बसें पुनि बसि हैं सही ।
'दौलत' स्वरुचि परविरचि सतगुरु-सीख नित उर धर यही ॥

१३६। जकड़ी भूधरकृत।

अब मन मेरे वे, सुन सुन सीख सयानी ।
जिनवर चरना वे, कर कर प्रीति सुज्ञानी ॥

१–२–देवोंमें अभियोग और किल्विष एक प्रकारके नीचे सेवकोंके समान देव होते हैं। ३ माला। ४ मुरझानी हुई। ५ व्यर्थ। ६–सर्पके समान।

कर प्रीति सुज्ञानी शिवसुखदानी, धन जीतव है पंचदिना।
कोटि वरप जीवौ किस लेखै, जिनचरणांबुजभक्ति विना॥
नर परजाय-पाय अति उत्तम, गृहवसि यह लाहा लेरे।
समझ समझ बोलैं गुरुज्ञानी, सीख सयानी मन मेरे॥ १॥

तू मति तरसै वे, सम्पति देख पराई।
बोये लुनि ले वे, जो निज पूर्वकमाई॥
पूर्वकमाई संपति पाई, देखि देखि मति झूर मरै।
बोय वँबूल शूल-तरु भोंदू, आमनकी क्या आस करै॥
अव कछु समझ बूझ नर तासों, ज्यों फिर परभव सुख दरसै।
कर निज ध्यान दान तप संजम, देखि विभवपर मत तरसै॥

जो जगदीसै वे, सुंदर अर सुखदाई।
सो सव फलिया वे, धरमकल्पद्रुम भाई॥
सो सब धर्म कल्पद्रुमके फल, रथ पायक बहु रिद्धि सही।
तेज तुरंग तुंग गज नौ निधि, चौदह रतन छखंड मही॥
रति उनहार रूपकी सीमा, सहस छ्यानवें नारि वरै।
सो सब जान धर्मफल भाई, जो जग सुंदर दृष्टि परै॥ ३॥

लगैं असुंदर वे, कंटकवान घनेरे।
ते रस फलिया वे, पापकनकतरुकेरे॥
ते सव पापकनक-तरुके फल रोग सोग दुख नित्य नये।
कुथित शरीर चीर नहिं तापर, घरघर फिरत फकीर भये॥
भूख प्यास पीडें कन मांगें, होत अनादर पगपगमें।
ये परतच्छ पापसंचितफल, लगैं असुंदर जे जगमें॥ ४॥

इम भववनमें वे, ये दोऊ तरु जाने।

सूरज प्रकाशै तिमिरनाशै, सकल जगको तम हरै।
गिरिगुफागर्भ उदोत होत न, ताहि भानु कहा करै ॥ ७ ॥
जगमाहिं विषयवन फूल्यो। मनमधुकर तिहिंविच भूल्यो।
रसलीन तहां लपटान्यो। रस लेति न रंच अघान्यो ॥
न अघाय क्यों ही रमै निशिदिन, एक छन भी ना चुकै।
नहिं रहै वरज्यो वरज देख्यो. वार वार तहां झुकै॥
जिनमतसरोज सिधांतसुंदर,-मध्य याहि लगाय हो।
अब 'रामकृष्ण' इलाज याको, किये ही सुखपाय हो ॥ ८ ॥

१४१। जकडी जिनदासकृत।

राग आसासिंधु।

थिर चिर देवा गणहरसेवा, कर गुनमाला ज्ञान।
थिर चिर जीवा भरमनि भमता, करि करुना परिनाम॥
करि करुनापरिनाम सुजंता, गुणकरि सबै समाना।
कर्मतनी थिति घटि वधि दीसै,निश्चय केवलज्ञाना॥
यों जाने विनु जतन करीजै, परिहरिये परपीडा।
मूर्ख होय जिन आप वँधायो, ज्यों कुंसियाला कीड़ा ॥ १ ॥
ज्यों कुसियाला अपनी लालों, फंदति आपोआप।
त्यों तू आला विकलपमाला, वंधति पुन्नरु पाप॥
पुन्नरु पाप दुवै दिढ़वंधन, लोकशिखर किम जावे।
थर चर होय चहूंगति भीतर, रह्यो चिदानँद छावे॥
चितमें चेत चमकत नाहीं, साथि सरूपी कूड़ा।
इंद्री पंचतणे वसि पड़करि, विषय विनोदां बूड़ा ॥ २ ॥

---

१ काटीका अर्थात् एक प्रकारके रेशमका कोडा। २ लारसे। ३ दोनों।

विषय विनोदां आप विरोध्या, जात निगोद अपार ।
तहाँ काल अनंता दुःख सहंता, एकलड़ा निरधार ॥
एकलड़ौ निरधार निरंतर, जामन मरन करंतौ ।
कर्म विपाकतनैं वसि पड़ियौ, फिर फिर दुःख सहंतौ ॥
वरजै कौन स्वयंकृत कर्महिं, योंहि अनादि सुभावै ।
वांछित कहौ सुक्ख किमि पावै, दंसणतणौ अभावै ॥ ३ ॥
दंसण गुण विन जात जिके दिन, सो दिन धिक धिक जानि ।
धन्य सोहि सोही परभिन्नो, भ्रांति न मनमहिं आनि ॥
भ्रांति सुमिथ्यादृष्टीलच्छन, संशयरहित सुदिष्टी ।
यों जाने विन गह्यौ गहीजै, पद पावै परमिष्टी ॥
ए दुइ भेद जिनागम कहिया, ते मनमें अवधारै ।
सुद्ध सुसम्यकदरसन कारन, मिथ्यादृष्टि निवारै ॥ ४ ॥
मिथ्याती मुनिवर अवर सुतरुवर, सहैं कलेश अनेक ।
तप तप्यौ न तपियौ, खप्यौ न खपियौ, दोऊ रहितविवेक ॥
दोऊ रहितविवेक जीव इक, कर्म बँधै इक छोड़ै ।
आस्रव बंध उदय नहिं समझत, क्योंकर कर्महिं तोड़ै ॥
दंसण-णाण-चरण-गणरयणों, मूरख छिन न सँभालै ।
काचसमान विषयसुख सांटै ते गहि तीनों रालै ॥ ५ ॥
गहि तीनों रयणा तनमन वैयणा, चर निज चरन सयान ।
डंडसि करुणा खंडसि मयणा, मंडसि धरमहि ध्यान ॥
मंडसि ध्यान कर्मछयकारण, कारण काज दिखावै ।

१ अकेला। २ जो दिन। ३ ज्ञान। ४ रत्न। ५ बदले। ६ फेंक देता है। ७ ८
८ मदन-कामदेव।

काज सुदंसण ज्ञान सकति सुख, सहजहि चारों पावे ॥
बहुड़ि न कोइ रहै कृतकर्मह, जो जग जीवा ताणे ।
एक समयमें केवलज्ञानी, अतीत अनागत जाणे ॥ ६ ॥
अतीत अनागत देखत जानत, सो हम लख्यौ न देव ।
जो हूं देखत देखि विहरखत, हरखि करत तसु सेव ॥
हरखि हरखि तसु सेव करंता, जिन आपनसों कीनों ।
मोहनधूलि धरी सिर ऊपरि ठगि रयणत्तो लीनों ॥
अब श्रीकुन्दकुन्दगुरुवयणा, जिन विन घड़ि न सुहावे ।
आपणडा गुण सहज सुनिर्मल, यों जिनदासहि गावे ॥ ७ ॥

इति परमार्थ जकड़ीसंग्रह समाप्त ।

१० । दशवां अध्याय ।

जैनव्रतकथा संग्रह ।

१४२ । पुष्पांजलिव्रतकथा ।

दोहा—वीरदेवको प्रणमिकर अर्चा करों त्रिकाल ।
पुष्पांजलि व्रतकी कथा, सुनो भव्य अघटाल ॥ १ ॥

चौपाई ।

... विपुलाचल पर आय । समोशरण जिनवरका पाय ।
तिहँ सुन राजा श्रेणिक राय । वंदन चले प्रियायुत भाय ॥२॥
वंदन कर पूछनृप तबे । हे प्रभु पुष्पांजलि व्रत अबे ॥
मोमां कहो करों चितलाय । कोनें कियो कहा फल पाय ॥३॥
बोले गोतम वचन रसाल । जंबूद्वीपमध्य सुविशाल ।
सीतानदि दक्षिण दिशि सार । मँगलावती सुदेश मझार ॥४॥

दोहा–रतनसंचयपुर तहां, वज्रसेन नृप राय।
जयवंती वनिता लसै, पुत्र विहानी थाय ॥ ५॥
चौपाई–पुत्रचाह जिनमंदिर गई। ज्ञानोदधि मुनि वंदित भई ॥
हे मुनिनाथ कहो समझाय। मेरे पुत्र होइके नाय ॥६॥
दोहा–मुनि वोले हे वालकी, पुत्र होय शुभ सार। भूमि छह खंड सुसाधि है मुक्ति तनों भरतार ॥ ७ ॥ सुनके मुनिके वचन तव, उपज्यो हर्ष अपार। क्रमसों पूरे मास नव, पुत्र भयो शुभ सार ॥ ८ ॥ यौवन वयस सो पायकर, क्रीडा मंडप सार। तहां व्योमसों आइयो, खग भूपरतिसवार ॥९॥ रत्नशिखरको देखकर, वहुत प्रीति उरमाहिं। मेघवाहनने पांच सौ, विद्या दीनीं ताहि ॥ १० ॥

चौपाई।

दोनों मित्र परस्पर प्रीति। गये मेरु वंदन तज भीति ॥ सिद्ध कूट चैत्यालय वंदि। आये सवजन मन आनन्दि ॥ ११ ॥ ताकी सखी जनाई सार। वेग स्वयंवर करो तयार ॥ भूरि भूप आये तत्काल। माल रत्नशेखर गल डाल ॥१२॥ धूमकेत विद्याधर देख। क्रोध कियो मनमाहि विशेख ॥ कन्या काज दुष्टता धरी। विद्यावल वहु माया करी ॥१३॥ रत्नशेखरसों युद्ध सो करो। वहुत परस्पर विद्याधरो। जीत रत्नशेखर तिसवार। पाणिग्रहण कियो व्यवहार ॥१४॥ मदनमजूषा रानी संग। आयो अपने गेह असंग ॥ वज्रसेनको कर नमस्कार। मात तात मन सुक्ख अपार ॥१५॥ एक दिना मंदिरगिरयोग। पहुंचे मित्र सहित सव लोग ॥ चारण मुनि वंदे तिहि वार। सुन्यो धर्म चित भयो उदार ॥ १६ ॥ हे मुनि पूर्वजन्म

तीनोंके तुम कहो निबंध ॥ तव मुनि कहैं सुनो चितधार
एक मृणानलनगर सुखकार ॥ १७ ॥ नृपमंत्री इक
श्रुतिकीर्ति । बंधुमती वनिता अति प्रीति ॥ एक दिना
क्रीडा गयो । नारीसंग रमत सो भयो ॥ १८ ॥ पापी सर्प
भक्षण करी । मंत्री मृतक लखी निज नरीं ॥ भयो ।वर
जिनालय जाय । दिक्षा लीनी मन हर्षाय ॥ १९ ॥
तप कुछ दिन कर्‍यो ॥ पीछे भृष्ट भयो तप टर्‍यो ॥
करन चित ठन्यो । तव पुत्री मुख ऐसे भन्यो ॥ २०
मेरु चढे किहिंकाज । फिर भवासिंधु पडे तज लाज ॥ यों
प्रभावती वचसार । मंत्री कोप कियो अधिकार ॥ २१ ॥
विद्याको आज्ञा करी । पुत्रीको ले वनमें धरी ॥ विद्या
वनमें लै गई । प्रभावती मन चिंता भई ॥ २२ ॥
भक्ति चित्तमें धरी । तव विद्या फिर आई खरी ॥ हे पुत्री
चित जहां । वेग बोल पहुंचाऊं तहां ॥ २३ ॥ पुत्री कही
शके भाव । जिनदर्शनको अधिकहि चाव ॥ पूजा
वैठी वहां । पद्मावति आई सो तहां ॥ २४ ॥ इतने मध्य
आइयो । प्रभावतीको प्रश्न जु भयो ॥ हे देवी कहिये
काज । आये देवी देव सो आज ॥२५॥ पद्मावति वोली
सार । पुष्पांजलि व्रत है सु अवार ॥ भादों मास शुक्ल
पंच दिवस आरंभ न अमी ॥२६॥ प्रोषध यथाशक्ति
पूजो जिन चोवीसी सार ॥ नाना विधके पुष्प जु लाय
करै एक माला जु वनाय ॥ २७ ॥ तीनकाल वह
देय । वहुत भक्तिसों विनय करेय ॥ जपै जाप शुभ मंत्र

…या विधि पंच वर्ष अवधार ॥२८॥ उद्यापन कीजै पुनि सार। चारप्रकार दान अधिकार ॥ उद्यापनकी शक्ति न होय। तो दूनो व्रत कीजै लोय ॥ २९ ॥ यह सुन प्रभावती व्रत लयो। पद्मावती कृपाकर दयो ॥ स्वर्ग मुक्ति फलका दातार। है यह पुष्पांजलिव्रत सार ॥ ३० ॥

दोहा—पद्मावति उपदेससों, लीनो व्रत शुभ सार।
पृथ्वी परसु प्रकाशिके कियो, भक्तिचितधार ॥ ३१ ॥
तप विद्या श्रुतकीर्तिने, पाई अति जु प्रचंड।
प्रभावति व्रत खंडने, आई सो बलवंड ॥ ३२ ॥

चौपाई।

वासर तीन व्यतीते जबै। पद्मावति पुनि आई तबै ॥ विद्या सब भागी तत्काल। कियो सन्यासमरण तिस काल ।३३। कल्प सोलवें मुख्य सु जान। देव भयो सो पुण्य प्रमान ॥ तहां देवने कियो विचार। मेरा तात भ्रष्ट आचार ॥३४॥ मैं संबोधों वाको जबै। उत्तम गति वह पावै तबै ॥ यही विचार देव आइयो। मरणसन्यास तातको कियो ॥ ३५ ॥ वाही स्वर्ग भयो सो देव। पुष्पांजलिव्रत फल एव ॥ वसुमती माताको जीव। उपज्यो वाही स्वर्ग अतीव ॥ ३६ ॥

दोहा—प्रभावतीका जीव तू, स्वर्गसोलह भयो आय।
माताको जो जीव सो [illegible] थाय ॥ ३७ ॥

[illegible]

मुनिकीर्ति [illegible] ॥ [illegible]
जीनोंके सुन [illegible]। [illegible] बिना [illegible] ॥ ३८

सुन व्रतफल अरु गुरुकी वानि। भयो सुचित व्रत... जानि ॥ अपने थान वहुरि आइयो। चक्रवर्तिपद भोग... कियो ॥ ३९ ॥ समय पाय वैरागी भयो। राजभार सुतको दयो ॥ त्रिगुप्ति मुनिके चरणों पास। दिक्षा लीनी धरि हुलास ॥ ४० ॥ रत्नशेखर दिक्षा ली जवै। भयो ... मुनि तवै ॥ भवि जीवोंको अति सुखकार। केवलज्ञान ... यो सार ॥ ४१ ॥ घातिकर्म निर्मूल सु करे। पाछैं मुक्ति... अनुसरे ॥ इह विध व्रत पाले जो कोइ। अजर ... पावे सोइ ॥ ४२ ॥

इति पुष्पांजलि व्रत कथा सम्पूर्ण ॥

१४३। अथ दशलक्षण व्रतकी कथा।

दोहा—प्रथम वंदि जिनराजको, शारद गणधर पाय।
दशलक्षण व्रतकी कथा, कहूं सुगम सुखदाय ॥ १ ॥

चौपाई।

विपुलाचल श्रीवीरकुमार। आये भविभव-भंजनहार ॥
सुनि श्रेणिकनृप वंदन गयो। सर्वलोकसँग आनंद भयो
श्रीजिन पूजे मनधर चाव। स्तुति करी जोड़कर भाव ॥
धर्मकथा तहँ सुनी विचार। दानशील तप भेद अपार ॥ ३
भवदुखघायक दायक शर्म। भाख्यो प्रभु दशलच्छन धर्म ॥
ताको सुनि श्रेणिक रुचि धरी। गुरु गौतमसों विनती ...
दशलच्छन व्रत कथा रसाल। मुझको भाखहु दीनदयाल ॥
तव गुरुगौतमगणधर कही। सुन जिनधुनिमें भाखी वही ॥५
खंड धातुकी पूर्व विदेह। मेरुतें दक्षणदिश तेह ॥

सीतोदा नदि तीर जु सही । पुरी विशालाक्षा शुभ कही ॥६॥
भूपति पोतंकर तहँ बसै । रानी प्रियकारिणि तस लसै ॥
सुता मृगांकरेखा तस जान । मति शेखर तस मंत्रि प्रधान ॥७॥
शशीप्रभा ताकी तिय सही । सुता कामसेना तस भई ॥
राजसेठ गुणसागर जान । तस तिय शील सुभद्रा मान ॥८॥
सुता मदनरेखा अवतरी । रूप कला गुण लक्षण भरी ॥
लक्षभद्र नामा कुतवाल । तस तिय शशिरेखा गुणमाल ॥९॥
रोहणि कन्या ताके भई । चारों कन्या मिल सखि थई ॥
शास्त्र पढीं इक गुरुके पास । बढ्यो सनेह परस्पर जास ॥१०॥
रितु वसंत आयो निरधार । कन्या चारों वनहि मझार ॥
गई: सु मुनिवर देखे एक । वंदन थुति कीनी सविवेक ॥११॥
चारों कन्या मुनिसों कही । तिय परजाय ज्यों छूटै सही ॥
ऐसो व्रत उपदेशहु अवै । जासों नरतन पावैं सवै ॥ १२ ॥
बोले मुनि दशलक्षण सार । यह व्रत किये होहु भवपार ॥
कन्या बोली किहँविध करें । किसदिनतें यह व्रत हम धरें ॥१३॥
तब गुरु बोले वचन रसाल । भादव मास कह्यो सुखमाल ॥
शुक्लपंचमी दिनसों लेय । पंचामृत अभिषेक करेय ॥ १४ ॥
पूजार्चन कीजे शुभ सही । जिन चौवीसतणी सुख मही ॥
उत्तम क्षमा आदि सुखसार । दशमों ब्रह्मचर्य गुण धार ॥१५॥
तीनकाल अति भक्ती करो । तीनकाल पुष्पांजलि धरो ॥
इहविध दशवासर आचरो । नियमित व्रत शुभकारज करो ॥
उत्तम व्रत दश अनसन किये । मध्यमव्रत कुछ कांजी लिये ॥
अथवा दश एकासन करो । भूमिशयन ब्रह्मचर्य जु धरो ॥१...

भट्टारक श्रीभूषणवीर। तिनके चेला गुणगंभीर॥
ब्रह्मज्ञानसागर सुविचार। कही कथा दशलच्छनसार॥ ४१
पढै सुनै जो नर यह कथा। दशलच्छनव्रत धारैं तथा॥
दशलच्छन वृप भावैं जोय। सो अवश्य शिवतियपति होय।

इति दशलक्षणव्रत कथा समाप्ता।

१४४। सुगन्धदशमीव्रत कथा।

चौपाई।

वर्द्धमान वंदों जिनराय। गुरु गौतम वंदों सुखदाय।
सुगंधदशमीव्रतकी कथा। वर्द्धमान सुप्रकाशी यथा॥ १
मगधदेश राजगृह नाम। श्रेणिक राज करै अभिराम। ना॰
चेलना गृह पटरानि। चंद्ररोहिणीरूपसमान॥२॥ नृप बैठ्यो
सिंहासन परे। वनमाली फल लायो हरे॥ कर प्रणाम व॰
नृपसे कह्यो। प्रमोदचित्तसे ठाडो रह्यो॥ ३॥ वर्द्धमान आ॰
जिनस्वामि। जिन जीत्यो उद्धत अरि काम॥ इतनी सुनत
नृपति उठ चला। पुरजनयुत दलबलसे भला॥ ४॥ समो-
शरण वंदे भगवान। पूजा भक्ति धार बहुमान॥ नरकोठा
बैठ्यो नृप जाय। हाथजोड पूछ्यो शिर नाय॥ ५॥ सुगंध-
दशमीव्रत फल भाख। ता नरकी कहिये अब साख॥ गणधर
कहैं सुनो मगधेश। जंबुद्वीप विजयार्द्ध प्रदेश॥ ६॥ शिव-
मंदिरपुर उत्तरश्रेणि। विद्याधर प्रीत कर जैनि॥ कमलावती
नारि अति रूप। सुरकन्यासे अधिक अनूप॥ सागरदत्त वसै
तहां साह। जाके जिनव्रतमें उत्साह॥ धनदत्ता वनिता गृह
कही। मनोरमा ता पुत्री सही॥ ८॥ मुनि सुगुप्त गृहपर

आइयो । देव मुनींद्र दुःख पाइयो ॥ कन्या मुनिकी निंदा करी । कुछ मनमें नहिं शंका धरी ॥ ९ ॥ नग्नगात दुर्गंध शरीर । प्रगटपने देही नहिं चीर ॥ मुख तांबूल हतो मुनि-अंग । नाख्यो सुखको कीनो भंग ॥ १० ॥ भोजन अंतराय जब भयो । मुनि उठ जाय ध्यान वन दियो ॥ समताभाव धरै उरमांहि । किंचित खेद चित्तमें नांहिं ॥ ११ ॥ बीती अवधि समय कछु गयो । मनोरमाको काल सु भयो ॥ भई गधी पुनि कुकरी ग्राम । अपर ग्राम भइ सूकरि नाम ॥१२॥ मगध सुदेश तिलकपुर जान । विजयसेन तहँका नृप मान ॥ चित्र-रेखा ता रानी कही । तस पुत्री दुर्गंधा भई ॥१३॥ एकसमय गुरुवंदन गयो । पूजा कर विनतीको ठयो ॥ मो पुत्री दुर्गंध शरीर । कहो भवांतर गुणगंभीर ॥ १४ ॥ राजा वचन मुनी-श्वर सुने । मुनि विरतांत रायसे भने ॥ सब विरतांत हाल जो जान । मुनि राजासे कह्यो बखान ॥ १५ ॥ सुन दुर्गंधा जोडे हाथ । मोपर कृपा करो मुनिनाथ ॥ ऐसा व्रत उपदेशो मोहि जासों तनु निरोग अब होहि ॥१६॥ दयावंत बोले मुनिराय । सुन पुत्री व्रत चित्त लगाय ॥ समताभाव चित्तमें धरो । तुम सुगंधदशमी व्रत करो ॥ १७ ॥ यह व्रत कीजे मनवचकाय । पापों रोग शोक सब जाय ॥ दुर्गंधा विनवै मुनि पाय । कहिये सविधि महा मुनिराय ॥ १८ ॥ ऐसे वचन सुने मुनि जबै । तब बोले पुत्री सुन अबै ॥ भादों शुक्ल पक्ष जब होय । दशमी दिन आगयो सोय ॥ १९ ॥ चारों रसकी धार देव । मनमें राखो श्रीजिनदेव ॥ शीतल जिनकी

भट्टारक श्रीभूषणवीर। तिनके चेला गुणगंभीर॥
ब्रह्मज्ञानसागर सुविचार। कही कथा दशलच्छनसार॥ ४१
पढै सुनै जो नर यह कथा। दशलच्छनव्रत धारें तथा॥
दशलच्छन वृष भावैं जोय। सो अवश्य शिवतियपति होय

इति दशलक्षणव्रत कथा समाप्ता।

१४४। सुगन्धदशमीव्रत कथा।

चौपाई।

वर्द्धमान वंदों जिनराय। गुरु गौतम वंदों सुखदाय॥ सुगंधदशमीव्रतकी कथा। वर्द्धमान सुप्रकाशी यथा॥ १॥ मगधदेश राजगृह नाम। श्रेणिक राज करै अभिराम। नाम चेलना गृह पटरानि। चंद्ररोहिणीरूपसमान॥२॥ नृप बैठ्यो सिंहासन परे। वनमाली फल लायो हरे॥ कर प्रणाम वच नृपसे कह्यो। प्रमोदचित्तसे ठाडो रह्यो॥ ३॥ वर्द्धमान आये जिनस्वामि। जिन जीत्यो उद्धत अरि काम॥ इतनी सुनत नृपति उठ चला। पुरजनयुत दलबलसे भला॥ ४॥ समोशरण वंदे भगवान। पूजा भक्ति धार बहुमान॥ नरकोठा बैठ्यो नृप जाय। हाथजोड पूछयो शिर नाय॥ ५॥ सुगंधदशमीव्रत फल भाख। ता नरकी कहिये अब साख॥ गणधर कहैं सुनो मगधेश। जंबुद्वीप विजयार्द्ध प्रदेश॥ ६॥ शिवमंदिरपुर उत्तरश्रेणि। विद्याधर प्रीत कर जैनि॥ कमलावती नारि अति रूप। सुरकन्यासे अधिक अनूप॥ सागरदत्त बसे तहां साह। जाके जिनव्रतमें उत्साह॥ धनदत्ता वनिता गृह कही। मनोरमा ता पुत्री सही॥ ८॥ मुनि सुगुप्त गृहपर

आइयो। देख मुनींद्र दुःख पाइयो ॥ कन्या मुनिकी निंदा करी। कुछ मनमें नहिं शंका घरी ॥ ९ ॥ नग्नगात दुर्गंध शरीर। प्रगटपनै देही नहिं चीर ॥ मुख तांबूल हतो मुनि-अंग। नाख्यो सुखको कीनो भंग ॥ १० ॥ भोजन अंतराय जब भयो। मुनि उठ जाय ध्यान वन दियो ॥ समताभाव धरै उरमांहि। किंचित खेद चित्तमें नाहिं ॥ ११ ॥ बीती अवधि समय कछु गयो। मनोरमाको काल सु भयो ॥ भई गधी पुनि कुकरी ग्राम। अपर ग्राम भइ सूकरि नाम ॥१२॥ मगध सुदेश तिलकपुर जान। विजयसेन तहँका नृप मान ॥ चित्र-रेखा ता रानी कही। तस पुत्री दुर्गंधा भई ॥१३॥ एकसमय गुरुवंदन गयो। पूजा कर विनतीको ठयो ॥ मो पुत्री दुर्गंध शरीर। कहो भवांतर गुणगंभीर ॥ १४ ॥ राजा वचन मुनी-श्वर सुने। मुनि विरतांत रायसे भने ॥ सब विरतांत हाल जो जान। मुनि राजासे कह्यो बखान ॥ १५ ॥ सुन दुर्गंधा जोडे हाथ। मोपर कृपा करो मुनिनाथ ॥ ऐसा व्रत उपदेशो मोहि जासों तनु निरोग अब होहि ॥१६॥ दयावंत बोले मुनिराय। सुन पुत्री व्रत चित्त लगाय ॥ समताभाव चित्तमें धरो। तुम सुगंधदशमी व्रत करो ॥ १७ ॥ यह व्रत कीजे मनवचकाय। यासों रोग शोक सब जाय ॥ दुर्गंधा विनवै मुनि पाय। कहिये सविधि महा मुनिराय ॥ १८ ॥ ऐसे वचन सुने मुनि जबै। तब बोले पुत्री सुन अबै ॥ भादों शुक्ल पक्ष जब होय। दशमी दिन आराधो सोय ॥ १९ ॥ चारों रसकी धारा देव। मनमें राखो श्रीजिनदेव ॥ शीतल जिनकी

चौपाई ।

जंबूद्वीप द्विपनमें सार । लख योजन ताको विस्तार ॥ मध्य सु दर्शन मेरु वखान । भरतक्षेत्र ता दक्षिण मान ॥ २ ॥ मगधदेश देशों शिरमणी ॥ राजगृही नगरी अति वनी ॥ श्रेणिक महाराज गुणवंत । रानी चेलना गृह शोभंत ॥ ३ ॥ धर्मवंत गुण तेज अपार । राजा राय महागुण सार ॥ एक दिवस विपुलाचल वीर । आये जिनवर गुण गंभीर ॥ ४ ॥ चार ज्ञानके धारक कहे । गौतम गणधर सो संग रहे ॥ छह ऋतुके फल देखे नैन । वनमाली ले चाल्यो ऐन ॥ ५ ॥ हर्ष सहित वनमाली गयो । पुष्पसहित राजा पर गयो ॥ नमस्कार कर जोडे हाथ । मोपर कृपा करो नरनाथ ॥ ६ ॥ विपुला चल उद्यान कहंत । महावीर जिन तहां वसंत ॥ सुन राजा अति हर्षित भयो । वहुत दान मालीको दयो ॥ ७ ॥ सप्त ध्वनि वाजे वाजंत । प्रजा सहित राजा चालंत ॥ दे प्रदक्षिणा वैठो राव । जिनवर देव कियो चित चाव ॥ ८ ॥ द्वैविधि धर्म कह्यो समुझाय । जासों पाप सर्व जर जाय ॥ खग तहं आयो एक तुरंत । सुंदर रूप महा गुणवंत ॥ ९ ॥ नमस्कार जिनवरको कर्यो । जय जयकार शब्द उचर्यो ॥ ताहि देख अचरज अति कियो । राजा श्रेणिक पूछत भयो ॥ १० ॥ सेना सहित महा गुण खानि । को यह आयो सुंदर वानि ॥ याकी वात कहो समुझाय । ज्ञानवंत मुनिवर तुम आय ॥ ११ ॥ गोतम वोले वुद्धि अपार । विजयानगर कह्यो अतिसार ॥ मनोकुंभ राजा राजंत । श्रीमती रानीको कंत ॥

॥१२॥ ताका पुत्र आरिंजय नाम । पुण्यवंत सुंदर गुणधाम ॥
पूरव तप कीनो इन जोय । ताको फल भुगते शुभ सोय ॥
१३ ॥ ताकी कथा कहूं विस्तार । जंबूद्वीप द्वीपोंमें सार ॥
भरतक्षेत्र तामैं सुखकार । कौशल देश विराजै सार ॥ १४ ॥
परम सुखद नगरी तहँ जान । विप्र सोमशर्मा गुणखान ॥
सोमिल्या भामिनि ता कही । दुखदरिद्रकी पूरित मही ॥१५॥
पूरव पाप किये अति घने । ताको दुख भुगते ही बने ॥
सुन राजा याका विरतांत । नगर २ सो भ्रमै दुखांत ॥ १६॥
देश विदेश फिरैं सुखआश । तोहु न पावे सुक्ख निवास ॥
भ्रमत २ सो आयो तहां । समोशरण जिनवरको जहां ।१७।
दोहा—अनंतनाथ जिनराजका, शमोशरण तिहिवार ।
सुरनर अति हर्षित भये, देख महाद्युति सार ॥ १८ ॥

चौपई ।

विप्र देख अति हर्षित भयो । समोशरण वंदनको गयो ॥
वंदि जिनेश्वर पूछे सोइ । कहा पाप मैं कीनो होइ ॥ १९ ॥
दरिद्र पीडा रहै शरीर । सो तो व्याधि हरो गंभीर ॥ गणधर
कहै सुनो द्विजराय । अनंतव्रत कीजे सुखदाय ॥ २० ॥ तबै
विप्र बोलकर भाय । किन विध होइ सो देहु बताय ॥ किस
प्रकार या व्रतको करों । कहो विधान चित्तमें धरों ॥ २१ ॥
भादव मास सुपक्षकी जान । चौदस शुक्ल करो सुखदान ॥ कर
स्नान शुद्ध हो जाय । तब पूजे जिनवर सुखदाय ॥ २२ ॥
गुरुवंदना करै चितलाय । या विधिसों व्रत लेय बनाय ॥ त्रिकाल
पूजन श्रीजिनदेव । रात्रिजागरण कर सुख लेव ॥ २३

गीत रु नृत्य महोतसव जान। धारा जिनवर करो वखान।
वर्ष चतुर्दश विधिसों धरैं। तापीछैं उद्यापन करैं ॥ २४ ॥ करैं
प्रतिष्ठा चौदह सार। जासों पाप होइ जर छार ॥ झारी धारी
अधिक अनूप। चरण कलश देवैं शुभरूप ॥ २५ ॥ दीवट
झालर संकल माल। और चंदोवे उत्तम जाल ॥ छत्र सिंघा
सन विधिसों करै। तातैं सर्व पाप परिहरै ॥ २६ ॥ चारप्रकार
दान दीजिये। जासों अतुल सुक्ख लीजिये ॥ अंतसमय लेवै
सन्यास। तातैं मिलै स्वर्गका वास ॥ २७ ॥ उद्यापनकी शक्ति
न होय। कीजे व्रत दूनों भवि लोइ ॥ विप्र कियो व्रत विधिसों
आय। सब दुख ताके गये विलाय ॥ २८ ॥ अंतकाल धरके
सन्यास। तातैं पायो स्वर्गनिवास ॥ चौथे स्वर्ग देव सो जान।
महाऋद्धि ताके जु वखान ॥ २९ ॥ विजयारध गिरि उत्तम
ठौर। कांचीपुर पत्तन शिर मौर। राजा तहँ अपराजित वीर
विजया तासु प्रिया गंभीर ॥ ३० ॥ ताको पुत्र अरिञ्जय नाम
तिन यह आय कियो परनाम ॥ कंचनमय सिंहासन आन।
ता पर नृप बैठो सुख खान ॥ ३१ ॥ व्योम पटल विनशत लख
संत। उपज्यो चित वैराग महंत। राज्यपुत्रको दयो बुलाय
: लई दीक्षा शुभ भाय ॥ ३२ ॥ सही परीषह दृढ चित
धार। तातैं कर्म भये अति छार ॥ घाति घातिया केवल भयो
सिद्धि बुद्धि सो पद निर्मयो ॥ ३३ ॥ रानीने व्रत कीनो सही
देवदेह दिवअच्युत लही ॥ तहां सु सुख भुगते अधिकाय।
तहांसे आय भयो नरराय ॥ ३४ ॥ राजऋद्धि पाई शुभसार।
फिर तप कर विधि कीने छार ॥ तहां सों मुक्तीपुरको गयो

ऐसो तिन व्रतको फल लयो ॥३५॥ ऐसो व्रत पाले जो कोइ। स्वर्गमुक्तिपद पावै सोइ॥ विनयसागर गुरु आज्ञा करी। हरि किल पाठ चित्तमें धरी ॥३६॥ तब यह कथा करी मन ल्याय। यथाशास्त्रमें वरणी आय॥ विधिपूर्वक पालै जो कोय। ताको अजर अमर पद होय॥ ३७॥

१४६। रत्नत्रयव्रतकथा।

दोहा—अरहनाथको वंदिके, वंदों सरस्वति पाय।
रत्नत्रयव्रतकी कथा, कहूं सुनो मनलाय॥ १॥

चौपाई।

जंबूद्वीप भरत शुभ खेत। मगध देश सुख संपति हेत॥ राजगृही तहँ नगरि वसाय। राजा श्रेणिक राज कराय ॥२॥ विपुलाचल जिनवीर कुंवार। केवलज्ञानविराजत सार॥ माली आय जनावो दयो। ततछिन राजा वंदन गयो॥ ३॥ पूजा वंदन कर शुभ सार। लाग्यो पूछन प्रश्न विचार॥ हे स्वामी रत्नत्रयसार। व्रत कहिये जैसा व्यवहार॥ ४॥ दिव्यध्वनि भगवान बताय। भादों सुदि द्वादश शुभ भाय। कर स्नान स्वच्छ पट श्वेत। पहिनो जिनपूजनके हेत ॥५॥ आठों द्रव्य लेय शुभ जाय। पूजो जिनवर मनवचकाय॥ जीरण नूतन जिनके गेह। बिंब धरावो तिनमें तेह ॥६॥ हेमरूप्य पीतलके यंत्र। तांवा यथा भोजके पत्र॥ यंत्र करो वहु मन थिर देव। रत्नत्रयके गुण लिख लेव ॥७॥ निशंकादि दर्शन गुण सार। संशय रहित सु ज्ञान अपार॥ अहिंसादि महाव्रत सार। चारितके ये गुण हैं धार॥ ८॥ ये तीनोंके गुण हैं

इन्हें आदि जेते गुण वाद ॥ शिवमारगके साधनहेत। ये गुण धारै व्रती सुचेत ॥ ९ ॥ भादों माघ चैत्रमें जान। तीनोंकाल करो भवि आन ॥ या विधि तेरह वरस प्रमान। भावन भावै गुणहि निधान ॥ १० ॥ लवंगादि अष्टोत्तर आन। जपो मंत्र मन कर श्रद्धान ॥ पुनि उद्यापन विधि जो एह। कलशा चमर छत्र शुभ देह ॥ ११ ॥ संग चतुर्विधको आहार। वस्त्राभरण देहु शुभसार ॥ बिंबप्रतिष्ठा आदि अपार। पूजो श्रीजिन हो भव पार ॥ १२ ॥

दोहा—इसविध श्रीसुख धर्म सुन, भव्यो चित्तधर भाय।
कौनै फल पायो प्रभू, सो भाखो समुझाय ॥ १३ ॥

चौपाई।

जंबूद्वीप अलंकृत हेर। रह्यो ताहि लवणोदधि घेर ॥ मेरु सु दक्षिण दिशा है सार। है सो विदेह धर्म अवतार ॥ १४ ॥ कच्छवती सुदेश तहँ वसै। वीतशोकपुर तामें लसै ॥ वैसिव नाम तहांको राय। करै राज सुरपतिसम भाय ॥ १५ ॥ मालीने जु जनायो दयो। विपुल बुद्धि प्रभु बनमें ठयो ॥ ...। सुन नृप वंदन गयो। दान बड़त मालीको दयो ॥१६॥ हे स्वामी रत्नत्रय धर्म। मोसों कहो मिटैं सब भर्म ॥ तब स्वामीने सब विध कही। जो पहिले सो प्रकाशी सही ॥१७॥ पंचामृत अभिषेक सु ठयो। पूजा प्रभुकी कर सुख लयो ॥ जागरणादि ठयो बहु भाय। इस विध व्रतकर वैसिवराय ॥ १८ ॥ भावसहित राजा व्रत कस्यो। धर्मप्रतीत चित्त अनुसरयो ॥ षोडशभावन भावत भयो। अंत समाधिमरण

तिन कियो ॥ १९ ॥ गोत्र तीर्थंकर बांध्यो सार। जो त्रिभुवनमें पूज्य अपार॥ सर्वारथ सिद्धि पहुच्यो जाय। भयो तहां अहमेंद्र सुभाय ॥ २० ॥ हस्त मात्र तन ऊंचो भयो। तेंतिस सागर आयु सु लयो ॥ दिव्यरूप सुखको भंडार। सत्यनिरूपण अवधि विचार ॥ २१ ॥ सौधर्मेंद्र विचारी धरी यक्षेश्वरको आज्ञाकरी। वेग देश निर्माप्यो जाय। थाप्यो मुथरापुर अधिकाय ॥ २२ ॥ कुंभपुर राजा तहँ बसै। देवी प्रजावती तिस लसै॥ श्रीआदिक तहँ देवी आय। गर्भ सोधना कीनी जाय ॥ २३ ॥ रत्नवृष्टि नृप आंगन भई। पंद्रह मास लों बरसत गई॥ सर्वार्थसिद्धिसों सुर आय। प्रजावती कुक्ष उपजाय ॥ २४ ॥ मल्लिनाथ शुभ नाम जु पाय। द्वैजचंद्रसम बढत सुभाय॥ जबै विवाह मंगल विधि भई। तब प्रभु चित विरागता लई॥ २५॥ दीक्षा धर वनमें प्रभु गये। घातिकर्म हनि निर्मल ठये॥ केवल ले निर्वाण सु जाय। पूजा करी सुरन सब आय॥ २६ ॥ यह विधान श्रेणिकने सुन्यो। व्रत लीने चित अपने गुण्यो॥ भक्ति विनय कर उत्तम भाव। पहुंचे अपने गृहको आय॥ २७ ॥ याविधि जो नर नारी कही। ब्रनज्ञान भाषा निर्मही ॥२८॥

[illegible]

१८७। मुक्तावली व्रतकथा।

दोहा

ऋषभनायके पद नमों, भविसरोज रवि जान।
मुक्तावलिव्रतकी कथा, कहूं सुनो धर ध्यान ॥ १ ॥

इन्हैं आदि जेते गुण वाद ॥ शिवमारगके साधनहेत । ये गुण धारे व्रती सुचेत ॥ ९ ॥ भादों माघ चैत्रमें जान । तीनोंकाल करो भवि आन ॥ या विधि तेरह वरस प्रमान । भावन भावै गुणहि निधान ॥ १० ॥ लवंगादि अष्टोत्तर आन । जपो मंत्र मन कर श्रद्धान ॥ पुनि उद्यापन विधि जो एह । कलशा चमर छत्र शुभ देह ॥ ११ ॥ संग चतुर्विधको आहार । वस्त्राभरण देहु शुभसार ॥ बिंबप्रतिष्ठा आदि अपार । पूजो श्रीजिन हो भव पार ॥ १२ ॥

दोहा—इसविध श्रीमुख धर्म सुन, भव्यो चित्तधर भाय ।
कौन फल पायो प्रभु, सो भाखो समुझाय ॥ १३ ॥

चौपाई ।

जंबूद्वीप अलंकृत हेर । रह्यो ताहि लवणोदधि घेर ॥ मेरु सु दक्षिण दिश है सार । है सो विदेह धर्म अवतार ॥ १४ ॥ कच्छवती सुदेश तहँ बसे । वीतशोकपुर तामें लसे ॥ वैमित्र नाम तहांको राय । करै राज सुरपतिसम भाय ॥ १५ ॥ माळीने जु जनावो दयो । विपुल बुद्धि प्रभु वनमें ठयो ॥ इतनी सुन नृप वंदन गयो । दान बहुत माळीको दयो ॥ १६ ॥ है स्वामी रत्नत्रय धर्म । मोसों कहो मिटै भव भर्म ॥ तब स्वामीने सब विध कही । जो पहिले सो प्रकाशी सही ॥ १७ ॥ पंचामृत अभिषेक सु ठयो । पूजा प्रमुखी कर सुख लयो ॥ जागरणादि ठयो बहु भाय । इस विध व्रतकर वैमित्रराय ॥ १८ ॥ तावतदिन राजा व्रत करयो । धर्मप्रतीत चित्त अनुसरयो ॥ षोडशभावन भावत भयो । अंत समाधिमरण

तन कियो ॥ १९ ॥ गोत्र तीर्थंकर बांध्यो सार। जो त्रिभु-
नमैं पूज्य अपार॥ सर्वारथ सिद्धि पहुच्यो जाय। भयो
तहां अहमेंद्र सुभाय ॥ २० ॥ हस्त मात्र तन ऊंचो भयो।
तेतिस सागर आयु सु लयो ॥ दिव्यरूप सुखको भंडार।
सत्यनिरूपण अवधि विचार ॥ २१ ॥ सौधर्मेंद्र विचारी घरी
यक्षेश्वरको आज्ञाकरी। वेग देश निर्माप्यो जाय। थाप्यो
मुथरापुर अधिकाय ॥ २२ ॥ कुंभपुर राजा तहँ वसै। देवी
प्रजावती तिस लसै॥ श्रीआदिक तहँ देवी आय। गर्भ
सोधना कीनी जाय ॥ २३ ॥ रत्नवृष्टि नृप आंगन भई।
पंद्रह मास लों वरसत गई॥ सर्वार्थ-सिद्धिसों सुर आय।
प्रजावती कुक्ष उपजाय ॥ २४ ॥ मल्लिनाथ शुभ नाम जु
पाय। द्वैजचंद्रसम वढत सुभाय॥ जवै विवाह मंगल विधि
भई। तव प्रभु चित विरागता लई॥ २५॥ दीक्षा धर वनमें
प्रभु गये। घातिकर्म हनि निर्मल ठये॥ केवल ले निर्वाण
सु जाय। पूजा करी सुरन सव आय॥ २६ ॥ यह विधान
श्रेणिकने सुन्यो। व्रत लीने चित अपने गुण्यो॥ भक्ति
विनय कर उत्तम भाय। पहुंचे अपने गृहको आय॥ २७॥
याविधि जो नर नारी कही। ब्रह्मज्ञान भापा निर्मही ॥२८॥

इति श्री रत्नत्रयव्रतकथा समाप्ता।

१४७। मुक्तावली व्रतकथा।

दोहा।

ऋषभनाथके पद नमों, भविसरोज रवि जान।
मुक्तावलिव्रतकी कथा, कहूं सुनो धर ध्यान॥ १॥

चौपाई।

मगध देश देशनपरधान। तामें राजगृही शुभ थान ॥
राज्य करे तहँ श्रेणिक राय। धर्मवंत सबको सुखदाय ॥२॥
तां गृह नारि चेलना सती। धर्मशील पूरण गुणवती ॥ इक
दिन समोशरण महावीर। आयो विपुलाचलपर धीर ॥ ३
सुनि नृप अति आनन्दित भयो। कुटुम सहित वंदनक
गयो ॥ पूजाकर बैठ्यो सुखपाय। हाथ जोड कर अर्ज कराय
॥ ४ ॥ हे प्रभु मुक्तावलि-व्रत कहो। यह कर कौने क्या फल
लहो ॥ तब गौतम बोले हर्षाय। सुनो कथा मुक्तावलि रा
॥ ५ ॥ याही जंबूद्वीपमझार। भरतक्षेत्र दक्षिणदिशि सार।
अंगदेश सोहे रमणीक। नगर बसे चम्पापुर ठीक ॥ ६।
नगर मध्य इक ब्राह्मण बसे। नाम सोमशर्मा तसु लसे।
ता गृह एक सुता जो भई। यौवनमद कर पूरण भई ॥ ७।
इकदिन देखे श्रीगुरु जबे। नग्नगात लखि निंदी तबे ॥ अति
खोटे दुर्वचन कहाय। बहुतहि ग्लानी चितमें लाय ॥ ८।
ताकरि महा पाप बांधियो। आय विनीते मरण जु कियो।
नरक जाय नाना दुख सहे। छेदन भेदन जाय न कहे ॥ ९।
नरक आयु पूरी कर जोइ। भवभ्रमि द्विजगृह पुत्री होइ।
निर्नामिका धर्यो तिहँ नाम। अति दुर्गंधा देह निकाम
॥१०॥ कोई ढिग आवे नहिं तहां। क्रमकर बडी भई सो वहां
अन्नपानकर दुःखित महा। झूठन भखे कष्ट अति लहा ॥
११ ॥ एक दिवस देखे मुनिराय। कर प्रणाम विनय शिर
नाय ॥ कौन पाप मैं कीनो देव। मैं पायो अति दुःख अभेव ॥

॥ १२ ॥ तब मुनिवर पूरब भव कहे । गुरुकी निंदासों दुख लहे । तब दुर्गंधा जोडे हाथ । ऐसो व्रत दीजे मोहि नाथ ॥ १३ ॥ जासों रोग शोक सब जाय । उत्तम भव पाऊं गुरु- राय । तब श्रीगुरु बोले हर्षाय । मुक्तावलिव्रत कर मनलाय ॥ १४ ॥ तासों सबै पाप जरजाय । सुख सम्पत्ति मिले अधि- काय ॥ तब दुर्गंधा कहे विचार । कौन भांति कीजे व्रतसार ॥ १५ ॥ तब मुनिवर इम वचन कहाय । सुनो भेद व्रतको चितलाय ॥ भादों सुदि सप्तमि दिन होइ । तादिन व्रत कीजे अवलोइ ॥ १६ ॥ प्रातसमय जिनमंदिर जाय । पूजा कथा सुनो मनलाय ॥ सब आरंभ तजो दिनमान । संयम शील सजो गुणवान ॥ १७ ॥ भोर भये जिनदर्शन करो । शुद्ध असन कीजे तब खरो ॥ दूजो व्रत पूरववत करो । अश्विन वदि छठि पावन हरो ॥ १८ ॥ तीजो व्रत कीजे उर धार । अश्विनवदि तेरस सुखकार ॥ कर उपवास पाल गुणरसी । चौथो अश्विन सुदि ग्यारसी ॥ १९ ॥ पंचम व्रत कीजे मन- लाय । कार्तिक वदि बारसि सुखदाय ॥ फिर छट्टो उपवास सुजान । कार्तिक शुक्ल तीज गुणखान ॥ २० ॥ सप्तम व्रत जिनवरने कयो । कार्तिक सुदि ग्यारसि शुभ लयो ॥ फिर करो अष्टम व्रत लोय । मगसिर वदि ग्यारसि जब होय ॥ २१ ॥ नवमों व्रत मगसिर सुदि तीज । ये उपवास व्रतके बीज ॥ या विधि कर नव वर्ष प्रमान । मनवचकाय शुद्धता ठान ॥ २२ ॥ जब व्रत पूरण होय निदान । उद्यापन कीजे गुणवान ॥ श्रीजिनवर अभिषेक कराय । करो मांडनो जिन

गृह जाय ॥ २३ ॥ अष्टप्रकारी पूजा करो। जन्म जन्मके पातक हरो ॥ यथाशक्ति उपकरण बनाय। श्रीजिनधाम चढावो जाय ॥ २४ ॥ उद्यापनकी शक्ति नहोय। तो दूनो वृत कीजै सोय ॥ सब विध सुन दुर्गंधा बाल। मनवचतन-वृत लीनो हाल ॥२५॥ गुरुभाषित तिन वृत यह कियो। पूर्व-भवअघ पानी दियो॥ ता फल नारि लिंग छेदियो। प्रथमहिं स्वर्ग देव सो भयो ॥ २६ ॥ तहां आयु पूरणकर सोय। चलत भयो मथुराको लोय श्रीधर राजा राज करंत। ताके सुत उपज्यो गुणवंत ॥ २७ ॥ नाम पद्मरथ पंडित भयो। एक दिवस वनक्रीडा गयो ॥ गुफा मध्य मुनिवरको देख। वंदन कर सुन धर्म विशेष ॥ २८ ॥ तहां पूछ मुनिवरसों सोय। तुमसों अधिक प्रभा प्रभु कोय ॥ तब मुनिवर बोले सुन बाल वासुपूज्य जिन दीप्ति विशाल ॥ २९ ॥ चंपापुर राजे जिनराज। तेजपुंज प्रभु धर्म जहाज ॥ यह सुन धर्म विषे चित दयो। समोशरण जिन वंदन गयो ॥ ३० ॥ नमस्कार कर दीक्षा लई। तपकर गणधर पदवी भई ॥ अष्ट कर्म इस विधिसों जार। पहुँच्यो शिवपुर सिद्धमझार ॥ ३१ ॥ लखो भव्य वृतका जु प्रभाव। राज भोग गयो शिवपुरराय॥ जो [illegible] करै वृतसार। सुर सुख लहि पावै भवपार ॥ ३२ ॥

इति श्रीमुक्तावलिव्रतकथा समाप्ता।

१४८। श्रीरविव्रतकथा।

चौपाई।

श्रीसुखदायक पार्श्व जिनेश। सुमति सुगति दाता परमेश।

सुमिरो शारदपद अरविंद । तिनकर व्रत भगव्यो सानंद ॥१॥ वाणारसि नगरी सुविशाल । प्रजापाल भगव्यो भूपाल ॥ मतिसागर तहँ सेठ सुजान । ताको भूप करै सन्मान ॥ २ ॥ तासु तिया गुणसुंदरि नाम । सात पुत्र ताके अभिराम ॥ पद्दुत भोग करै परणीत । बालरूप गुणवर सुविनीत ॥ ३ ॥ सहस्र कूट शोभित जिनधाम । आये यतिपति खंडितकाम । सुनि मुनि आगम हर्षित भये । सर्व लोग वंदनको गये ॥ ४ ॥ गुणवाणी सुनिके गुणवती । सेठिन तबै करी वीनती ॥ प्रभो सुगमव्रत देहु बताय । जासों रोगशोक सब जाय ॥५॥ करुणानिधि भाखहिं मुनिराय । सुनो भव्य तुम चित्त लगाय ॥ जब अषाढ़ सुदि पक्ष विचार । तब कीजे अंतिम रविवार ॥ ६ ॥ अनशन अथवा लघु आहार । लवणादिक जु करै परिहार ॥ नवफलयुत पंचामृतधार । बहुप्रकार पूजो भवहार ॥ ७ ॥ उत्तम फल इक्यासी जान । नवश्रावक घर दीजे आन ॥ या विध कर नववर्ष प्रमाण । जातैं होय सर्व कल्याण ॥ ८ ॥ अथवा एक वर्ष इक बार । कीजे रविव्रत मनहिं विचार ॥ सुन नाहुन निज घरको गई । व्रत निंदाकर निंदित भई ॥ ९ ॥ व्रत निंदातैं निर्धन भये । सातहि पुत्र जु अवधपुर गये ॥ तहँ जिनदत्त सेठ घर रहैं । पूर्वदुष्कृतका फल लहैं ॥ १० ॥ मात पिता गृह दुःखित सदा । अवधिसहित मुनि पूछे तदा ॥ दयावंत मुनि ऐसैं कह्यो । व्रत निंदासे तुम दुख लह्यो ॥ ११ ॥ मुनि गुरुवचन बहुरि व्रत लयो । पुण्य कियो घरमें धन भयो ॥ भविजन सुनो कथा संबंध । जहँ रहते थे

वे सब नंद ॥ १२ ॥ एक दिवस गुणधर सुकुमार। घास लेय आयो गृहद्वार ॥ क्षुधावंत भावजपै गयो । दंत विना नहिं भोजन दयो ॥ १३ ॥ वहुरि गयो जहां भूल्यो दंत। देख्यो तासों अहिलिपटंत ॥ फणिपतिकी तहँ विनती करी। पद्मावति प्रगटी सुंदरी ॥ १४ ॥ सुंदर मणिमय पारसनाथ । प्रतिमा पंचरत्न शुभ हाथ ॥ देकर कह्यो कुंवर कर भोग। करो क्षणक पूजासंयोग ॥ १५ ॥ आनबिंब निज घरमें धर्यो। तिहकर तिनको दारिद हर्यो ॥ सुख विलास सेवें सब नंद । नित-प्रति पूजें पास जिनंद ॥ १६ ॥ साकेतानगरी अभिराम। सुंदर वनवायो जिनधाम ॥ करी पतिष्ठा पुण्य सँयोग। आये भविजन संग सु लोग ॥ १७ ॥ संघ चतुर्विधिको सनमान। कियो दियो मनवांछित दान ॥ देख सेठ तिनकी संपदा। जाय कही भूपतिसे तदा ॥ १८ ॥ भूपति तव पूछ्यो विर-तंत। सत्य कह्यो गुणधर गुणवंत ॥ देख सुलक्षण ताको रूप। अति आनंद भयो सो भूप ॥१९॥ भूपतिगृह तनुजा सुंदरी। गुणधरको दीनी गुणभरी ॥ कर विवाह मंगल सानंद । हय गय पुरजन परमानंद ॥ २० ॥ मनवांछित पाये सुख भोग। [illegible] भये सकल पुरलोग ॥ सुखसों रहत वहुत दिन भये। [illegible]थ सब बंधु वनारस गये ॥ २१ ॥ मातपिताके परसे पांय। अति आनँद हिरदै न समाय ॥ विघट्यो विषम विषम वीयोग। भयो सकल पुरजन संयोग ॥ २२ ॥ आठ सात सोलहके अंक। रविव्रत कथा रची अकलंक ॥ थोडो अर्थ ग्रंथ विस्तार। कहे कवीश्वर जो गुणमार ॥ २३ ॥ यह व्रत जो नर नारी

करें। सो कबहूं दुर्गति नहिं परें ॥ भावसहित सो शिवसुख लहैं। भानुकीर्ति मुनिवर इमि कहैं ॥ २४ ॥

इति श्रीरविव्रतकथा समाप्ता ॥

१४९। नन्दीश्वरव्रतकथा।

दोहा—चरण नमों जिनराजके, जासों दुरित नशाय।
शारद वंदों भावसों, सद्गुरु सदा सहाय ॥ १ ॥

जंबूदीप सुदर्शन मेरु। रह्यो ताहि लवणोदधि घेर ॥ मेरुसे दक्षिण भारत खेत। मगधदेश सुखसंपति हेत ॥ २ ॥ राजगृही नगरी शुभ वसै। गढ़ मठ मंदिर सुंदर लसै ॥ श्रेणिक राज करै सु प्रचंड। जिन लीनों अरिगणपै दंड ॥ ३ ॥ पटरानी चेलना सुजान। सदा करै जिन पूजा दान ॥ सभा मध्य वैठो सो जाय। वनमाली शिर नायो आय ॥ ४ ॥ दो कर जोड़ करै सो सेव। विपुलाचल आये जिनदेव ॥ वर्द्धमानको आगम सुन्यो। जन्म सुफल अपने चित गुन्यो ॥५॥ राजा रानी पुरजन लोग। वंदन चले पूजने योग ॥ चलत चलत सो पहुंचे तहां। समोशरण जिनवरका जहां ॥ ६ ॥ दे प्रदक्षिणा भीतर गये। वर्द्धमानके चरणों नये ॥ पुनि गणधरको कियो प्रणाम। हर्षितचित्त भयो अभिराम ॥ ७ ॥ दशविध धर्म सुने जिन पास। जातें गयो चित्तको त्रास ॥ दोकर जोड़ नृपति वीनयो। अति प्रमोद मेरे मन भयो ॥८॥ प्रभुदयाल अब कृपा करेव। व्रत नंदीश्वर कहु जिन देव ॥ अरु सब विधि कहिये समझाय। भावसहित यों पूछी राय ॥ ९ ॥ चारज्ञानधर गणधर कहै। कोशलदेश स्वर्ग सम रहै।

ताके मध्य अयोध्यापुरी। धनकन सुखी छत्तीसों कुरी॥१०॥
तिहिंपुर राज करै हरिसेन। त्याग तेज वल पूरण सेन। वंश
इच्छाक प्रगेट चक्रेश। आज्ञा धरै छखंड प्रदेश ॥११॥ पाट-
बंध रानी नृप तीन। गंधारी जेठी गुणलीन॥ प्रियमित्रा
रूपाश्री नाम। साधै धर्म अर्थ अरु काम॥ १२॥ सुखसों
रहत वहुत दिन भये। ऋतु वसंत वन राजा गये॥ जल-
क्रीड़ा वनक्रीड़ा करै। हास्य विलास प्रीति अनुसरै॥ १३॥
ता वन मध्य कल्पतरु मूल। चंद्रकांतिमणि शिलानुकूल॥
मंडपलता अधिक विस्तार। चारण मुनि आये तिहँ वार॥१४॥
आरिंजय अमितंजय नाम। सोम दयालु धर्मके धाम॥ राजा
रानी पुरजन नारि। देखत मुनि तिन दृष्टि पसारि॥ १५॥
सव नर नारि अनंदित भये। क्रीडा तज मुनिवंदन गये॥
त्रिया पुरुष चरणों अनुसरे। अष्टद्रव्य मुनि पूजैं खरे॥१६॥
धर्मध्यान कह्यो मुनिराय। श्रद्धासहित सुन्यो कर भाय॥
राजा प्रश्न कियो मुनि पास। सुन्यो धर्म भयो चित्तहुलास
॥ १७॥ दलवल सहित संपदा घनी। और भूमि षट्खंड जु
तनी॥ महा पुण्य जो यह फल होय। गुरुविन ज्ञान न पावै
॥ १८॥ वार वार विनवै कर सेव। कहो भवांतर पूरव
॥ अवधिज्ञान वल मुनिवर कहै। पुर अहिक्षेत्र वनिक
इक रहै॥ १९॥ सुखित कुवेरमित्र ता नाम। साधै धर्म अर्थ
अरु काम॥ जेष्ठपुत्र श्रीवर्म्म कुमार। मध्यम जयवर्मा गुण
सार॥२०॥ लघु जयकीर्त्ति कीर्त्ति विख्यात। तीनों शुभ आनं-
दित गात॥ एक दिवस उपज्यो शुभकर्म। वनमें आये मुनि

सौधर्म ॥ २१ ॥ सेठपुत्र मुनिवर वंदियो। श्रीवर्मा जु अठाई लियो ॥ नंदीश्वर व्रत विधिसों पाल। भवभव पापपुंजको जाल ॥२२॥ अंतसमाधिमरणको पाय। इस पुर वज्रबाहु नृपराय॥ ताके विमला रानी जान। तुम हरिसेन पुत्र भये आन ॥२३॥ पूरब व्रत पाले अभिराम। तासों लह्यो सुक्खको धाम ॥ जयवर्मा जयकीरति वीर।। निकटभव्य गुणसाहस धीर ॥२४॥ वंदे गुरु जु धुरंधर देव। मनवचकायकरी बहु सेव ॥ तब मुनि पंच अणुव्रत दिये। दोनों भावसहित व्रत लिये ॥ २५॥ अरु नंदीश्वरव्रत तिन लियो। अंत समाधि मरण तिन कियो ॥ हस्तनागपुर शुभ जहँ बसै। तहां विमल वाहन नृप लसै॥२६॥ ताके नारि श्रीधरा नाम। अरिंजय अमितंजय धाम ॥ पुत्र युगल हम उपजे तहां। पूर्वपुण्य फल पायो जहां ॥ २७॥ गुरु समीप जिनदिक्षा लई। तपबल चारण पदवी भई ॥ यातों हम तुम पूरब भ्रात। देखत प्रेम ऊपजे गात ॥ २८ ॥ पूरबव्रत-नंदीश्वर कियो। तातों राज चक्रपद लियो ॥ अब फिर व्रत नंदीश्वर करो। तातैं स्वर्गमुक्तिपदवरो ॥ २९ ॥ तब हरिसेन कहै कर जोर। व्रत नंदीश्वर कहो बहोर॥ मुनिवर कहैं द्वीप आठमो। नाम नाम नंदीश्वरनमो ३० ॥ ताके चहुंदिश पर्वत परे। अंजन दधिमुख रतिकर धरे॥ तेरह तेरह दिश दिश जान। ये सब पर्वत बावन मान ॥ ३१ ॥ पर्वत पर्वत पर जिन गेह। तस परिमाण सुनो धर नेह ॥ सौ योजन ताको आयाम। अरु पचास विस्तार सुनाम ॥ ३२ ॥ उन्नत है योजन पचीस। सुर तहँ आय नवावें शीस ॥ अष्टोत्तर शत प्रतिमा

जान। एक एक चैत्यालय मान ॥ ३३ ॥ गोपुर मणिमयके प्राकार। छत्र चमर ध्वज वंदनवार ॥ प्रातिहार्य विधि शोभा भली। तिन रवि कोटि सोम छवि छली ॥ ३४ ॥ ताही द्वीप सुरपति आय। पूजा भक्ति करें बहु भाय ॥ देव अव्रती व्रत नहि करै। भाव भक्ति कर पातक हरै ॥३५॥ तास द्वीप संबंधी सार। वृत नंदीश्वरको अधिकार ॥ यहां कह्यो जिनवर सु प्रकाशि आदि अनादि पुण्यकी राशि ॥ ३६ ॥ जो वृत मध्य भावसों करैं। ते भव जन्म जरामय हरैं॥ ता व्रतको सुनिये अधिकार वर्ष वर्षमें त्रय त्रय वार ॥३७॥ अषाढ कार्तिक अरु जो फाग। शाखा तीन करो अनुराग ॥ आठहिदिन पूनो परजंत। भक्ति सहित कीजे वृत संत ॥ ३८ ॥ सातेंको एकासन करो। यथा समय जिनवर मन धरो ॥ आठेंके दिन कर उपवास। जासों कटै कर्मकी त्रास ॥३९॥ करो प्रथम जिनको अभिषेक। जातें पातक जाय अनेक ॥ अष्टप्रकारी पूजा करो। सुखपरमेष्टि पंच उचरो ॥ तादिन व्रत नंदीश्वर नाम। ताको फल सुनियो अभिराम ॥ फल उपवास लक्ष दश जान। श्रीजिनवरने कियो ॥ ४१ ॥ दूजे दिन जिन पूजा करो। पात्र दान दे .तक हरो ॥ अष्टविभूति नाम दिन सोय। ता दिन एकासन कर लोय ॥ ४२ ॥ फल उपवास सहस दश होइ। अब तीजो दिन सुनिये लोइ ॥ जिनपूजा कर पात्रहि दान। भोजन पानी भात प्रमान ॥ ४३॥ नाम त्रिलोकसार दिन कह्यो। साठ लाख प्रोषध फल लह्यो ॥ चतुर्थ दिन कर अवमौदर्य। नाम चतुर्मुख दिन सो हर्यं ॥ ४४॥ तस उपवास लक्ष फल होइ। पंचम दिन

विधि करियो सोइ॥ जिनपूजा एकासन करो। हयलक्षण नाम जु दिन धरो ॥४५॥ फल चौरासी लक्ष उपास। जासों होय भ्रमण भव नास ॥ षष्टम दिन जिनपूजा दान। भोजन भात आमिली पान ॥४६॥ तादिन नाम स्वर्गसोपान। व्रत चालीस लक्ष फल जान॥ सप्तम दिन जिनपूजा दान। कीजे भविजन-को सन्मान ॥ ४७ ॥ सवसम्पती नाम दिन सोइ। भोजन भात त्रिवेली होय॥ फल उपवास लक्षको जान। अष्टम दिन व्रत चितमें आन॥४८॥ कर उपवास कथा रुचि सुनो। पात्र दान दे शुभ कृत गुनो॥ इंद्रध्वजाव्रत दिन तस नाम। सुमरो जिन-वर आठों जाम॥४९॥ तीन करोड़ अति लाख पचास। यह फल होय हरै सव त्रास ॥ इहविधि आठ वर्षमें सोइ। भाव सहित कीजे भवि लोइ,॥ ५०॥ उत्तम आठ वर्ष विधि जान। मध्यम पांच, तीन लघु मान ॥ उद्यापनविध पूर्वक सचो। वेदी-मध्य मांडनो रचो॥ ५१ ॥ जिन पूजा रु महा अभिषेक। चंद्रोपम ध्वज कलश अनेक॥ छत्र चमर सिंहासन करो। वहुविधि जिनपूजो अघ हरो॥५२॥ चारों दान सुपात्रहि देहु। वहुत भक्ति कर विनय करेहु॥ वहुविध जिनप्रभावना होइ। शक्ति समान करो भवि लोइ॥ ५३ ॥ उद्यापनकी शक्ति न होय। तो दूनो व्रत कीजे सोइ॥ जिन यह व्रत कीनो अभि-राम। तिन पदलियो जु सुखको धाम ॥ ५४॥ यह व्रत पूर्व महाफल लियो। प्रथम ऋषभ जिनवरने कियो॥ अनँतवीर्य अपराजित पाल। चक्रवर्ति पदवीमहँ हाल॥ ५५॥ सिरी-पाल मैंना सुंदरी। व्रतकर कुष्टव्याधि सव हरी॥ वहुतक नर

नारी व्रत कियो। तिन सब अजर अमरपद लियो ॥ ५६ ॥ सुन्यो विधान राय हरिसेन। अति प्रमोद सुख जंपे बैन॥ सब परवारसहित व्रत लियो। मुनिवर धर्म प्रीतिकर दियो ॥५७॥ व्रतकर फिर उद्यापन कर्‌यो। धर्मध्यान कर शुभपद धर्‌यो॥ अंत समाधिमरणको पाय। भयो देव हरिसेन सुराय ॥५८॥ पर्यायांतर जैहैं मुक्ति। श्रेणिक सुन्यो सकल व्रतयुक्ति॥ गोतम कह्यो सकल अधिकार। सुन्यो मगधिपति चित्त उदार ॥५९॥ जो नरनारी यह व्रत करैं। निश्चय स्वर्गमुक्ति पद धरैं॥ संकट रोग शोक सब जाहिं। दुख दरिद्रता दूर विलाहिं ॥६०॥ यह व्रत नंदीश्वरकी कथा। हेमराज सु प्रकाशी यथा॥ शहर इटावा उत्तम थान। श्रावक करैं धर्म शुभ ध्यान ६१॥ सुनैं सदा ये जैन पुरान। गुणीजनोंका राखैं मान॥ तिहठां सुन्यो धर्म संबंध। कीनी कथा चोपाई बंध ॥ ६२॥ कहैं सुनैं देवैं उपदेश। लहैं भावसों पुन्य विशेष॥ जाके नाम पाप मिट जांय। तिहं जिनवरके वंदों पांय ॥ ६३ ॥

इति श्री नंदीश्वरव्रतकथा समाप्ता।

ग्यारहवां अध्याय।

जैनकथा संग्रह।

१५०। निशिभोजनभुंजनकथा।

दोहा—नमों सारदा सार बुध, करैं हरैं अघ लेप।
निशिभोजनभुंजन कथा, लिखूं सुगम संछेप॥ १॥

चौपई।

जंबूद्वीप जगत विख्यात। भरतखंड छवि कहिय न जात॥

तहां देश कुरुजांगल नाम । हस्तनागपुर उत्तम ठाम ॥२॥ यशो-
भद्र भूपति गुणवास । रुद्रदत्त द्विज प्रोहित तास ॥ अश्वमास
तिथि दिन आराध । पहिली पडवा कियो सराध ॥ ३ ॥ बहुत
विनयसों नगरी तने । न्योत जिमाये ब्राह्मण घने ॥ दान
मान सबहीकों दियो । आप विप्र भोजन नहिं कियो ॥४॥ इतने
राय पठायो दास । प्रोहित गयो रायके पास ॥ राजकाज
कछु ऐसो भयो । करम करावत सब दिन गयो ॥५॥ घरमें रात
रसोई करी । चुल्हे ऊपर हांडी धरी ॥ हींग लेन उठि बाहर
गई । यहां विधाता औरही ठई ।६। मेंडक उछल पर्‍यो तामाहि ।
त्रिया तहां कछु जान्यो नाहिं । बेंगन छोंक दिये तत्काल ।
मेंडक मर्‍यो होय बेहाल ॥७॥ तबहु विप्र नहिं आयो धाम । धरी
उठाय रसोई ताम ॥ पराधीनकी ऐसी बात । औसर पायो
आधी रात ॥८॥ सोय रहे सब घरके लोग आग न दीवा कर्म
संयोग ॥ भूखो प्रोहित निकसे प्रान । ततछिन बैठो रोटी
खान ॥९॥ बेंगनभोले लीनों ग्रास । मेंडक मुंहमें आयो तास ॥
दांतन तले चब्यो नहिं जबे । काढ़ पर्‍यो थालीमें तबे ॥ १० ॥
प्रात हुये मेंडक पहिचान । तौ भी विप्र न करी गिलान ॥
थिति पूरी कर छोड़ी काय । पशुकी योनी उपज्यो जाय ॥११॥

सोरठा ८१

घूघू काग बिलाव, सावर गिद्ध पखेरुआ ।
सूकर अजगर नाग, यह गोह जलमें मगर ॥ १२ ॥
दस भव इहविधि पाय, दसों जन्म नरकहि गयो ।
दुर्गति कारन पाय, फल्यो पाप रात्रीभोजन ॥ १३ ॥

दोहा—निशिभोजन करिये नहीं, प्रगट दोष अविलोय।
परभव सब सुख संपजै, इह भवरोग न होय ॥ १४ ॥

छप्पय छंद।

कीडी बुधबल हरै, कंपगद करै कसारी। मकडी कारण पाय कोढ उपजै दुख भारी ॥ जुआं जलोदर जनै फाँस गल विथा बढावै। बाल सबै सुरभंग वमन माखी उपजावै ॥ तालुवे छिद्र बीछू भखत, और व्याधि बहु करहिं सब। यह प्रगट दोष निशिअसनके परभव दोष परोक्ष फल ॥ १५ ॥

दोहा—जो भय इहभव दुख करै, परभव क्यों न करेय।
डसत सांप पीडे तुरत, लहर क्यों न दुख देय ॥ १६ ॥
सुवचन सुन डाहारजे, मूरख मुदित न होय।
मणिधर फण फेरै सही, नहीं सांप वह होय ॥ १७ ॥
सुवचन सतगुरुके वचन, और न सुवचन कोय।
सतगुरु वही पिछानिये, जा उर लोभ न होय ॥ १८ ॥
भूधर सुवचन सांभलो, स्वपरपक्ष कर बौन।
समुद रेणुका जो मिलै, तोडेतैं गुण कौन ॥ १९ ॥

इति निशिभोजनदुःखकथा समाप्ता।

१५१। अठारह नातेकी कथा।

दोहा—पंच परमगुरु प्रणमि कर, जिनवाणी उरधार।
अट्ठारह नाते कहूं, भवि जीवन हितकार ॥ १ ॥

चौपाई १५ मात्रा।

जंबूद्वीप दिपनमें सार। लख जोजन है गोल अकार।
भरतक्षेत्र दक्षनदिस तास। उज्जयनी तहं म्यास ॥ २ ॥

विश्वसेन नृप राज्यहि करै। पालै प्रजानीति अनुसरै॥
ताभैं सेठ सुदत्त जु गुनी। सोरह कोटि द्रव्यको धनी॥ ३॥
वसंततिलका वेश्या एक। घरमैं राखी रहित विवेक॥
ताके संग रमहि दिनरात। तसफल गर्भ रह्यो सुखपात॥ ४॥
फिर वह वेश्या रुगनी भई। तवहि सेठ तिहं काद जु दई॥
अपने घर वह वेश्या गई। कुछ दिन गये निरोगी भई॥ ५॥
ताके सुत कन्या दो वाल। जुगल भये सुंदर सुकुमाल॥
तिन्हें देख अति दुःखित सोय। तिन्हें लपेटी कंवल दोय॥
दरवाजे उत्तर सुत डार। कन्या डारी दखन दुवार॥
प्रातहि वनिजारो इक आय। कन्या वानें लई उठाय॥ ७॥
अपनी तियको जाकर दई। कन्या देख जु हर्षित भई॥
तानैं पाली तन मन लाय। 'कमला' नाम धरयो सुखदाय॥८॥
साकेतापुर वासी एक। वणिक 'सुभद्र' धरै सुविवेक॥
तिहँ लीनो वह पुत्र उठाय। तस तिय पाल्यो तिहँ मनलाय॥
ताको नाम धरयो धनदेव। वढत रह्यो शशि सम स्वयमेव॥
व्याह जोग दोनों ह्वै गये। दोनों वणिक विचारत भये॥१०॥
यह सुंदर जोड़ी सुखदाय। व्याह दिये दोनों मनलाय॥
भाई वहन युग उतपन भये। कर्मयोग तियपति ह्वै गये॥११॥
दोहा—सुनहु भविकजन कथन अव, पूर्व करम अनुसार।
वणिजहेत धनदेव सो, गयो उज्जैन मझार॥ १२॥

चौपाई।

तहँ वसंततिलका तस मात। रहै उजेनीमें वहु ख्यात॥
तासों प्रीत करी धनदेव। रमैं मातसों वह स्वयमेव॥ १३॥

ताको फल इक पुत्र जु भयो। नाम वरुण तांको घर दयो ॥
यह तो कथन रह्यो इह ठौर। आगें भयो सुनो जो और ॥
दोहा—अवधिज्ञानजुत एक मुनि, कमला द्वारे आय।
तिहँ पड गाह्यो भावजुत, माता धुनि फिरजाय ॥१५॥
कमला मुनि ढिंग जायकर, प्रश्न कियो शिरनाय।
मो घरतें पाछे फिरे, कारण को मुनिराय॥ १६ ॥

चौपाई।

तब मुनि बोले सुनि चितलाय। तेरो ब्याह भ्रात संग थाय॥
तुम दोनों वेश्या संतान। यह लखि हम आये बन थान ॥१७॥
तो पति पुनि उज्जयनी जाय। रमहिं मातसँग मन हुलसाय॥
ताको फल इक पुत्र जु भयो। वरुण नाम ताको घर दयो ॥
यह सुन कमला कंपित भई। ह्वै विराग दीक्षा तब लई॥
बन आर्याके धारे सार। तबहि गई उज्जयनिमझार ॥१९॥
निजमाता वेश्या घर जाय। झूले वरुण बाल तिहँ ठांय॥
हे बालक तेरे संग मोर। छह नाते हैं सुन चितचोर ॥२०॥

बालकके साथ छह नाते।

प्रथमहिं मेरी मातें जायो, तातें मेरो है तू भ्रात।
दूजे तू सौतिनको सुत है, तातें मेरो पुत्र विख्यात ॥
देवर भी मेरा लगता है, क्योंकि तू पतिका लघु भ्रात।
होय भतीजा भी तू मेरे मेरे भ्रातका पुत्रजु ख्यात॥

भावार्थ—

१—प्रथम तो तू मेरी माताके उदरसे पैदा हुआ इस कारण मेरा छोटा भाई है।
२—दूसरे मेरे पति कमलेश्वरकी माँ, मेरी सौत, उसका तू पुत्र सो मेरा भी पुत्र है
३—तीसरे कमलेश्वर मेरे पति उसका तू छोटाभाई इसकारण तू मेरा देवर भी है
४—चौथे कमलेश्वर मेरे भाईका तू पुत्र है इस कारण मेरा भतीजा भी है।

मेरी माका पति धनदेव जु, तातें वह मो पिता भया।
पितुका छोटा भाई तातें तू कांका मम होय गया॥
सौतिनका सुत है धनदेव जु वह मेरा भी पुत्रजु होय।
पूतका पूत भया पोतां तू, यह नाते छह मेरे जोय ॥२२॥

५—पांचवें मेरी माताका पति धनदेव यह मेरा पिता, पिताका छोटा भाई, मेरा काका भी हुआ।

६—छट्टे धनदेव सौतनका पुत्र होनेसे यह मेरा भी पुत्र, पुत्रका पुत्र होनेसे मेरा दादा भी हुआ।

दोहा—वसंततिलका रोपकर आई कमला पास।
तू को है मो सुतहि सँग, नाते करत प्रकास॥ २३॥
कमला बोली मात सुन, छह नाते तो संग।
भिन्न भिन्न क्रमसे कहूं, तामें कछू न भंग॥ २४॥

वसंततिलका वेश्याके साथ छह नाते।

मैं धनदेव जुगल तो उरसे पैदा है नातें तू माते।
फिर तू भोजाई है मेरी भ्रात तिया जगमें विख्यात॥
तू माता धनदेव पिता मम, पितुकी मा दादी जु थई।
मो पतिकी तू दूसरि तिय है, तातें मेरी सौति भई॥
सौत पुत्रकी तू तिय है, तातें तू पुत्रवधू मेरी।
मो पति जो धनदेव उन्हीकी, माता तू सासू हेरी॥
या विध छह नाते सुनते ही, तहां जु आया है धनदेव।
तुमरे संग भी छहनाते हैं, सुन लो कान लगा स्वयमेव॥२६॥

[illegible]

१—उसका मा है और धनदेव मेरे उदरसे युगल हुवे इस कारण तू मेरी माता है।

२- दूसरे धनदेव मेरा भाई उसका तू स्त्री होनेसे मेरी भौजाई है।

५१

३—तीसरे तू मेरी माता और माताका पति धनदेव मेरा पिता हुआ, माता इसकारण तू मेरी दादी है।

४—चौथे मेरे पति धनदेवकी तू दूसरी स्त्री है इसकारण मेरी सौत हुई।

५—पांचवें सौतका पुत्र धनदेव मेरा भी पुत्र हुआ उसकी स्त्री तू मेरी पुत्रवधू हुई

६—छट्ठे मेरे पति धनदेवकी तू माता, इसकारण मेरी तू सास भी हुई।

धनदेवके साथ छह नाते।

प्रथम भ्रात है फिर पति होगये, माताके पति हो मम तात।
वरुण मेरा काका है ताके पिता भयेतें दादा भ्रात ॥
मेरे शौत पुत्र हो तुम तातैं मेरे भी पुत्र भये।
वेश्या मेरी सास तास पति, तातैं मेरे सशुरे थये ॥ २७ ॥

भावार्थ–

१—प्रथम तो तू और मैं इस वेश्याके उदरसे युगल उत्पन्न हुये इसकारण मेरा सगा भाई है।

२—दूसरे तेरा मेरा विवाह होगया इस कारण तू मेरा पति है।

३—तीसरे मेरी माता इस वेश्याके पति होनेसे तुम मेरे पिता भी हुये।

४—चौथे पिताका छोटा भाई वरुण, मेरा काका, काकेका पिता होनेसे तुम मेरे दादा हुये।

५—पांचवें वेश्या मेरी सौत, उसके तुम पुत्र हो इस कारण मेरे भी तुम पुत्र हुये।

६—छट्ठे तुम मेरे पति, पतिकी माता मेरी सास हुई और सासके पति होनेसे मेरे श्वसुर भी हुये।

दोहा—वेश्याके संग रमनतें, एकहि भवके मांय।
एक जीवके मायमें, नाते अठदश थांय ॥ २८ ॥

चौपाई।

सुनकर अचरज सुन सब भये। होय विरागी मुनिढिग गये।
मुनिने भव विचित्रता कही। सुन सब श्रावक दीक्षा गही ॥२९॥
व्रत धर नष्ट किये बहु कर्म। शुभगति पा बहु भोगे शर्म ॥
वेश्या संग पाय संताप। धर्म धार नाशे बहु पाप ॥ ३० ॥

तातैं वेश्या सँग तुम तजो । धर्मधार जिनवरको भजो ॥
पन्नालाल चाकलीवार । अर्ज करत यह वारंवार ॥ ३१ ॥

इति अठारह नाते समाप्त ।

१२ । वारहवां अध्याय ।

उपदेश संग्रह ।

१५२ । तेरहकाठिया चोर ।

दोहा—जे वटपारे वाटमें, करहिं उपद्रव जोर ।
तिनहिं देश गुजरातमें, कहैं काठिया चोर ॥१॥
त्यों यह तेरह काठिया, करहिं धर्मकी हानि ।
तातैं कछु इनकी कथा, कहूं विशेष वखानि ॥२॥
जूआ आलस शोक भय, कुकथा कौतुक कोह ।
कृपणबुद्धि अज्ञानता, भ्रम निद्रा मद मोह ॥३॥

१५ मात्रा चौपाई ।

प्रथम काठिया जूआ जान । जामैं पंच वस्तुकी हान ।
प्रभुता हटै घटै शुभ कर्म । मिटै सुजश विनशै धनधर्म ॥१॥
द्वितिय काठिया आलसभाव । जासु उदय नाशै विवसाव ॥
वाहिर शिथिल होंय सव अंग । अंतर धर्मवासना भंग ॥२॥
ठग तीसरो शोक संताप । जासु उदय जिय [illegible] ।
सूतक पातक जिहँपर होय । धर्मक्रिया [illegible] ।३।
भय चतुर्थ काठिया वखान । जाके [illegible] ।
उर कंपै नहिं फुरै उपाय । तव [illegible] ।४।
ठग पंचम कुकथा वकवाद । [illegible] ।
जवलौं जीव मगन इम [illegible]

कौतूहल छट्ठम काठिया । भ्रम विलाससों हरषै हिया ॥
मृषा वस्तु निरखै धरिध्यान । विनशि जाय सत्यारथ ज्ञान॥
कोप काठिया है सातमा । अग्निसमान जहां आतमा ॥
आपन दाहि औरको दहे । तहाँ धर्मरुचि रंच न रहे ॥७॥
कृपणबुद्धि अष्टम वटपार । जामें प्रगट लोभ अधिकार ॥
लोभमाहिं ममता परकाश । ममता करे धर्मको नाश ॥८॥
नवमा ठग अज्ञान अगाध । जासु उदय उपजे अपराध ॥
जो अपराध पाप है सोय । जहां पाप तहँ धर्म न होय ॥९॥
दशम काठिया भ्रम विच्छेप । भ्रमसों अशुभकर्मको लेप॥
अशुभकर्म दुरमतिकी खानि । दुरमति करे धर्मकी हानि ॥१
एकादशम काठिया नींद । जासु उदय जिय वस्तु न वींद।
मन वच काय होय जड रूप । बूडे धर्म कर्मवनकूप ॥११॥
ठग द्वादशम अष्टमद भार । जामें अकर रोग अधिकार ॥
अकररोग अरु विनय विरोध । जहँ अविनय तहँ धर्मनिरोध
तेरम चरम काठिया मोह । जो विवेकसों करे विछोह ॥
अविवेकी मानुष तिरजंच । धर्म धारणा धरे न रंच ॥१३॥
दोहा—येही तेरह करम ठग, लेहिं रतनत्रय छीन ।
तातैं संसारी दशा, कहिये तेरह तीन ॥ १४ ॥

इति तेरह काठिया थोर समाप्त ।

१५३। मोक्षपैडी ।

दोहा ।

इक समय रुचिवंतनो, गुरु अक्खय सुनमल्ल ।
जो तुम अंदर चेतना, वहै तुसाडी अल्ल ॥ १ ।

छंद पंजाबी भाषाका :

ए जिनवचन सुहावने, सुन चतुर छयल्ला । अक्खे रोचक शिक्खनो, गुरु दीनदयल्ला ॥ इस बुज्झे बुध लहलहै, नहिं रहै मयल्ला । इसदा मरम न जानई, सो द्विपद वयल्ला ॥ २ ॥ जिसदौं गिरदा पेचसों, हिरदा कलमल्ला । जिसना संसैतिमरसों, सूझै झलमल्ला ॥ खनै जिन्हादी भूमिनौ, कुज्ञान कुदल्ला । सहज तिन्हांदा वहजसों, चित रहै दुदल्ला ॥३॥ जिन्हां इका करमदा, दुविधा पद मल्ला । इक अनिष्ट असोहना, इक झांक झमल्ला ॥ तिन्हां इक न सूझई, उपदेश अहल्ला । वंक कटाछे लोपना, ज्यों चंद गहल्ला ॥ ४ ॥ जिन्हां चित इतवारसों, गुरु वचन न झल्ला । तिन्हां आगे कथन यो, ज्यों कोदों दल्ला ॥ वरपै पाहन भुम्मिमें, नहिं होय चहल्ला । वोए वीज न ऊपजै, जल जाय वहल्ला ॥ ५ ॥ चेतन इस संसारमें, तू सदा इकल्ला । आपै रूप पिशाच है, तें अप्पा छल्ला ॥ आपै घूम्यां गिरिगयौ, किन दित्ता टल्ला । जिनसों मिलन वियोग है, तिनसों क्या तल्ला ॥ ६ ॥ इस दुनियांदी मौजसों, तू गरव गहल्ला । भया भारखम पुरख ज्यों, छप्पर विच वल्ला ॥ सुपनैदा सुख मान तैं, अपना घर घल्ला । फिरा भरमकी भौरमें, तूं सहज विलल्ला ॥ ७ ॥ जोग अडंवर तैं किया, कर अंवर मल्ला । अंगविभूति लगायकैं, लीनी मृगछल्ला । है वनवासी तैं तजा, घरवार महल्ला । अप्पा पर न पिछानियां, सव झूठी गल्ला ॥८॥ माया मिथ्या अग्रसोच, ये तीनों सल्ला । तिहुंवादी करतूत सों,

जियदा उरझल्ला ॥ ज्यों रुधिरादी पुट्टसों पट दीसै लल्ला रुधिरा नलहि पखालिये नहिं होय उजल्ला ॥ ९ ॥ जब ल तेरे ज्ञानमें, होंदी हलचल्ला । सुजस वडाई लाभनो, करद छलवल्ला ॥ तबलग, तू स्याना नहीं, क्या मारइ कल्ला । सो करंदा पालने, ज्यों झूलै लल्ला ॥ १० ॥ किनि तूं जकर सांकला, किनि पकरा पल्ला । भिद मकरा ज्यों उरझिया, उ जाल उगल्ला ॥ चेतनि जड संयोगमें, तैं टांका झल्ला । तुही छुडावहि आपको, लख रूप इकल्ला ॥ ११ ॥ जो तैं दारिद मानियां, है ठल्लमठल्ला । जो तूं मानहिं संपदा, भर दाम गल्ला ॥ जो तूं हुआ करंकसा, अरु मोगरमल्ला । सो सब नाना रूप है, नाचै पुदगल्ला ॥ १२ ॥

जो कुरूप दुरलच्छणा, जो रूपरसल्ला । वे मंघा भरि जोवना, बूढा अरु बल्ला ॥ लंब मझोला ठींगना, गोग अरु कल्ला । सो सब नानारूप हैं, निहचै पुदगल्ला ॥ १३ ॥ जो जीरण है झर पड़े, जो होयँ नवल्ला । जो मुरझावे सुकके, फुल्ला अरु फल्ला ॥ जो पानीमें बह चलै, पावकमें जल्ला । सो सब नाना रूप हैं, निहचै पुदगल्ला ॥ १४ ॥ एक कर्म दीपै दुधा, ज्यों तुल्दा पल्ला । हलै तन गुल्लैतमों, अब ऊरध थल्ला ॥ अशुभ शुभरूप है, दुहु दिशिनो चल्ला । धरै दुविध विस्तार ज्यों, भटविरख जटल्ला ॥ १५ ॥ पवनपरेरे ज्यों उड़े, माटी विच गल्ला । जो अकाशमें देखिये, चल रूप अचल्ला ॥ पानी पावक पौन भू, चहुंधामें रल्ला । सो सब नानारूप है, निहचै पुदगल्ला ॥ १६ ॥ खिन रोवै खिनमें हँसे, ज्यों मदमत बल्ला । त्यों दुहुं

बादी मोजसों, वेहोश सँभल्ला ॥ ईकसवीच विनोद है, इकमैं खल फल्ला । समदृष्टी सज्जन करै, दुहुंसों हलभल्ला ॥ १७ ॥ जाति दुहूंकी एक ज्यों मणि पत्थरडल्ला । जलविथार संकोच सों, कहिये नदि नल्ला ॥ उद्धत जलपरवाहमें, ज्यों भौंर बुलल्ला । त्यों इस कर्मविपाकदे, विच ऊंचा खल्ला ॥१८॥ दुहुंदा अथिर स्वभाव है, नहिं कोइ अटल्ला । ऊंच नीच इक सम करै, कलि-काल पटल्ला ॥ अध ऊरध ऊरध अधो, थिति उथलपुथल्ला । अरहटहार विहारमें, क्या ऊपर तल्ला ॥१९॥ पाया देवशरीर ज्यों, नलनीर उछल्ला । भवपूरण कर ढहि परा, फिर जल ज्यों ढल्ला ॥ पुण्यपापविच खेद है, यह भेद न भल्ला । ज्ञान क्रिया निर्दोष है, जहँ मोखमहल्ला ॥ २० ॥ बतनु तुसाड़ा मोहमें, ज्यों रोह रुहल्ला । थिति प्रवाण तुज्ञ नो भया, गुरु-ज्ञानदुहल्ला ॥ अव घटअंतर घटगई, भवभीर चुहल्ला । परमचाह परघट भई, शिवराह सहल्ला ॥ २१ ॥ ज्ञानदिवा-कर ऊगियो, मतिकिरण प्रबल्ला । है शत खंड विहंडिया, भ्रमतिमरपटल्ला ॥ सत्य प्रतापै भंजिया, दुर्गती दुहल्ला । अंगि अँगारे दज्झिया, ज्यों तूल पहल्ला ॥ २२ ॥

दोहा—

यह सतगुरुदी देशना, कर आस्रव दीवाड़ि ।
लद्दी पैड़ी मोखदी, करमकपाट उघाड़ि ॥ २३ ॥
भवथिति जिनकी घट गई, तिनको यह उपदेश ।
कहत 'बनारसिदास' यों, मूढ़ न समुझै लेश ॥ २४ ॥

इति मार्तंड स्तवन ।

१५४। ज्ञानपचीसी।

दोहा।

सुरनरतिरियगयोनिमें, नरकनिगोदभमंत । महामोह
नींदसों, सोए काल अनंत ॥ १ ॥ जैसें ज्वरके जोरसे
भोजनकी रुचि जाय । तैसें कुकरमके उदय, धर्मवचन
सुहाय ॥ २ ॥ लगे भूख ज्वरके गयें, रुचिसों लेय अहार
अशुभ गये शुभके जगे, जानै धर्मविचार ॥ ३ ॥ जैसें पव
झकोरतें, जलमें उठे तरंग । त्यों मनसा चंचल भई, परिगह
परसंग ॥४॥ जहां पवन नहिं संचरे, तहां न जल कल्लोल
त्यों सब परिग्रह त्यागतों, मनसा होय अडोल ॥ ५ ॥ ज्यं
काहू विषधर डसे, रुचिसों नीम चबाय । त्यों तुम ममतासे
मढे, मगन विषयसुख पाय ॥ ६ ॥ नीम रसन परसे नहीं
निर्विष तन जब होय । मोह घटें ममता मिटे, विषय न वां
कोय ॥७॥ ज्यों सछिद्र नौका चढे, बूडहि अंध अदेख । त
तुम भवजलमें परे, बिन विवेक धर भेख ॥ ८ ॥ जहां अ
डित गुण लगे, खेवट शुद्धविचार । आतमरुचिनौका चढे
पावहु भवजलपार ॥ ९ ॥ ज्यों अंकुश माने नहीं, महामत
गजराज । त्यों मन तृष्णामें फिरे, गने न काज अकाज ॥१०
ज्यों नर दाव उपावकें, गहि आने गज साधि । त्यों या मन
वश करनको, निर्मल ध्यान समाधि ॥ ११ ॥ तिमिररोगसों
नैन ज्यों, लखै औरकी और । त्यों तुम संशयमें परे, मिथ्या
मतिकी दौर ॥ १२ ॥ ज्यों औषध अंजन किये, तिमिररोग
मिटि जाय । त्यों सतगुरुउपदेशतें, संशय वेग विलाय ॥१३॥

जैसे सब यादव जरे, द्वारावतिकी आगि। त्यों मायामें तुम परे, कहां जाहुगे भागि ॥१४॥ दीपायनसों ते बचे, जे तपसी निरग्रंथ। तजि माया समता गहो, यहै मुकतिको पंथ ॥१५॥ ज्यों कुधातुके फेंटसों, घटवढ कंचनकांति। पापपुण्यकर त्यों भए, मूढातम बहुभांति ॥ १६ ॥ कंचन निजगुण नहिं तजै, वान हीनके होत। घटघटअंतर आतमा, सहजस्वभाव उदोत ॥ १७ ॥ पन्नापीट पकाइये, शुद्ध कनक ज्यों होय। त्यों प्रघटै परमातमा, पुण्यपापमल खोय ॥ १८ ॥ पर्वराहुके ग्रहणसों, सूरसोम छविछीन। संगति पाय कुसाधुकी, सज्जन होय मलीन ॥ १९ ॥ निंबादिक चंदन करै, मलयाचलकी बास। दुर्जनतें सज्जन भए, रहत साधुके पास ॥ २० ॥ जैसें ताल सदा भरै, जल आवै चहुंओर। तैसें आस्रवद्वारसों, कर्मबंधको जोर ॥ २१॥ ज्यों जल आवत मूंदिये सूखै सरवरपानि। तैसें संवरके किये, कर्मनिर्जरा जानि ॥ २२ ॥ ज्यों बूटीसंयोगतें, पारा मूर्छित होय। त्यों पुदगलसों तुम मिले, आतमशक्ति समोय ॥२३॥ मेलखटाई माजियै, पारा परघट रूप। शुक्लध्यान अभ्यासतें, दर्शन ज्ञान अनूप ॥२४॥ कहि उपदेश 'बनारसी' चेतनि अब कछु चेत। आप बुझावत आपको, उदयकरनके हेत ॥२५॥

इति श्रीज्ञानपच्चीसी समाप्त।

द्यानतरायजीकृत

१५५। धर्मपचीसी।

दोहा छंद।

भव्यकमल रवि सिद्ध जिन, धर्मधुरंधर धीर।
नमूं सदा जग तमहरण, नमूं त्रिविध गुरु वीर ॥ १ ॥

चंद्रमाला चौपई छंद।

मिथ्याविषयनमें रत जीव । तातैं जगमें भ्रमहिं सदीव ॥
विविधप्रकार गहे परजाय । श्रीजिनधर्म न नेक सुहाय ॥ २ ॥
धर्मविना चहुंगतिमें फिरै । चौरासी लख फिर फिर धरै ॥
दुखदावानलमांहि तपंत । कर्म करै सुख भोग लहंत ॥ ३ ॥
अति दुरलभ मानुषपरजाय । उत्तम धनकुल रोग न काय ॥
इस अवसरमें धर्म न करै । फिर यह अवसर कब को वरै ॥४॥
नरकी देह पाय रे ! जीव । धर्म विना पशु जान सदीव ॥
अर्थकाममें धर्म प्रधान । ता विन अर्थ न काम न मान ॥ ५ ॥
प्रथम धर्म जो करै पुनीत । शुभसंगम आवै कर प्रीत ॥
विघन हरै सब कारज सरै । धनसों चारों कोने भरै ॥ ६ ॥
जन्मजरामृतके वश होय । तिहुंकाल जग डोलै सोय ॥
श्रीजिनधर्मरसायनपान । कबहुं न रुचि उपजै अज्ञान ॥ ७ ॥
जो कोई मूरखजन होय । गहै हलाहल अमृत खोय ॥
त्यों सठ धर्मपदारथ त्याग । विषयनसों ठानै अनुराग ॥ ८ ॥
मिथ्याग्रह गहिया जो जीव । छांडि धर्म विषयनचित दीव ॥
[illegible] सठ कल्पवृक्षको तोड़ । वृक्ष धतूरेके बहु जोड़ ॥ ९ ॥
[illegible] जानो परधान । तिमर विषय कर धर्म सुजान! ॥
अनुपम[illegible] सुख भोग । पूजनीक हो इंद्रनजोग ॥ १० ॥
चंद्रविनानिश गजविनदंत । जैसें नलनारि विनकंत ॥
धर्मविना त्यों मानुषदेह । तातैं करिये धर्मसनेह ॥ ११ ॥
हय गयरथ पायक बहु लोग । सुभट बहुतदल चमर मनोग ॥
सुता आदि राजाविल जान । धर्म विना त्यों नरभव मान ॥

जैसे गंध विना है फूल । नीरविहीन सरोवर धूल ॥
ज्यों धनविन शोभित नहिं भौन । धर्मविना त्यों नर चिंतौन ॥
अरचै सदा देव अरहंत । चरचै गुरुपद करुणावंत ॥
खरचै दानधर्मसों प्रेम । न रचै विषय सकलनर एम ॥ १४ ॥
कमला चपल रहै थिर नाय । यौवन कांति जरालपटाय ॥
सुत मित नारी नावसँयोग । यह संसार सुपनका भोग ॥१५॥
यह लखि चितधर शुद्ध सुभाव । कीजे श्रीजिनधर्म उपाव ॥
यथाभाव जैसी गति गहै । जैसी गत तैसा सुख लहै ॥१६॥
जो मूरख बुद्धीकरहीन । विषयपंथरत व्रत नहिं कीन ॥
श्रीजिनभापित धर्म न गहै । जैसी गत तैसा सुख लहै ।१७।
आलसमंद बुद्धि है जास । कपटी मगनविषयसठ तास ॥
कायरता नहिं परगुण ढकै । सो तिर्यंचजोन लहि सकै ॥१८॥
आरतरौद्रध्यान नित करै । क्रोधादिक मच्छरता धरै ॥
हिंसक वैरभाव अनुसरै । सो पापिष्ट नरकगति परै ॥ १९ ॥
कपटहीन करुणा चितमाहिं । हेय उपादे भूलै नाहिं ॥
भक्तिवंत गुणवंत जु कोय । सरल सुभाव सुमानुष होय ।२०।
श्रीजिनवचनमगन तपवान । जिनपूजे दे पात्रहिं दान ॥
रहै निरंतर विषयउदास । सोही लहै सुरग आवास ॥ २१ ॥
मानुषजोन अंनकी पाय । सुन जिनवचन विषय विसराय ॥
गहै महाव्रत दुद्धर वीर । शुक्लध्यानथिर लह शिव धीर ।२२।
धर्मकरत सुख होय अपार । पाप करत दुख विविधप्रकार ॥
बालगुपाल कहैं सब नारि । इष्टहोय सोई अवधारि ॥२३॥
श्रीजिनधर्म मुकतिदातार । हिंसाकर्म बढइ संसार ॥

॥२४॥ ज्ञाता जीवनमुक्त है, एक देश यह बात। ध्यान अगि बिन कर्मवन, जलै न शिव किमि जात ॥ २५ ॥ दर्पण काई अथिर जल, मुख दीसे नहिं कोय। मन निर्मल थिर बिन भये, आप दरश क्यों होय ॥ २६ ॥ आदिनाथ केवल लह्यो, सहस वर्ष तप ठान। मोहे पायो भरतजी, एक मुहूरत ज्ञान ॥२७॥ राग रोष संकल्प है, नयके भेद विकल्प। रोषभाव मिट जाय जब, तब सुख होय अनल्प ॥ २८ ॥ राग विराग दुभेदसों, दोय रूप परिणाम। रागी जगके भूमिया, वैरागी शिवधाम ॥ २९ ॥ एक भाव है हिरणके, सुख लगे तृण खाय। एक भाव मंजारके जीव खाय न अघाय ॥ ३० ॥ विविधभावके जीव बहु दीसत हैं जगमाहिं। एक कछू चाहे नहीं, एक तजे कछु नाहिं ॥३१॥ जगत अनादि अनंत है, मुक्ति अनादि अनंत। जीव अनादि अनंत है, कर्म दुविधि सुन संत ॥ ३२ ॥ सबके कर्म अनादिके कर्म भव्यको अन्त। कर्म अनन्त अभव्यकै तीनकाल भटकंत ॥ ३३ ॥ फरस रसन [illegible] गन्ध सुर पांचो जाने कोय। बोलै डोलै कौन है [illegible] पूछै सोय ॥ ३४ ॥ जो जाने सो जीव है, जो माने सो जीव। जो देखै सो जीव है, जीवै जीव सदीव ॥ ३५ ॥ ज्ञान पना दो [illegible] लखै [illegible] निर्विकल्प [illegible]। निर्ग्रन्थता [illegible] लखै [illegible] आगम [illegible] ॥३६॥ दर्शन जीव श्रद्धान सो [illegible] ॥ ज्ञान क्रिया सो मोक्ष है, यही बात सुखदाय। पुद्गल [illegible] यही कथन है वेद। जीव [illegible] निज आतमा यही [illegible] भेद ॥ ३८ ॥ [illegible] लखै निज आतमै [illegible] न होत।

आप बंध्यो निजसों समझ, त्याग करै शिव होय ॥ ३९ ॥ यथा भूपको देखके, ठौर रीतिको जान । तब धन अभिलाषी पुरुष, सेवा करै प्रधान ॥ ४० ॥ तथा जीव सरधान कर जाने गुण परजाय । सेवै शिव धन आश धर, समता सो मिल जाय ॥ ४१ ॥ तीन भेद व्यवहारसों, सर्व जीव सब ठाम । श्रीअरहन्त परमातमा, निश्चय चेतनराम ॥४२॥ कुगुरु कुदेव कुधर्म रति, अहंबुद्धि सब ठौर । हित अनहित सरधै नहीं, मूढनमें शिरमौर ॥ ४३ ॥ ताप आप पर पर लखै, हेय उपादे ज्ञान । अब तो देशव्रती महा, व्रती सबै मतिमान ॥ ४४ ॥ जा पदमें सब पद लसै, दर्पन ज्यों अविकार । सकल निकल परमात्मा, नित्यनिरंजन सार ॥ ४५॥ बहिरात्मके भाव तज, अन्तरआतम होय । परमात्म ध्यावै सदा, परमात्म सो होय ॥४६॥ बूंद उदधि मिल होत दधि, बीती फरश प्रकाश । त्यों परमातम होत है, परमात्म अभ्यास ॥ ४७ ॥ सब आगमको सार ज्यों, सब साधनको धेव । जाको पूजै इन्द्र सो, सो हम पायो देव ॥ ४८ ॥ सोहं सोहं नित जपै, पूजा आगम सार । सतसंगतिमें बैठना, यहै करै व्यवहार ॥ ४९ ॥ अध्यातम-पंचाशिका माहिं कह्यो जो सार । द्यानत ताहि लगे रहो, सब संसार असार ॥ ५० ॥ इति अध्यात्मपंचासिका ।

१५७ । सुवाबत्तीसी ।

दोहा—नमस्कार जिनदेवको, करों दुहुं करजोर । सुवा बतीसी सुरस मैं, कहुं अरिनदल मोर ॥ १ ॥ आतम सुआ सुगुरु वचन, पढ़त रहै दिन रैन । करत काज अघरीतिके, यह

अचरज लखि नैन ॥ २ ॥ सुगुरु पढ़ावे प्रेमसों, यह पढ़त म
लाय । घटके पट जो ना खुले, सब हि अकारथ जाय ॥ ३

चौपाई ।

सुवा पढ़ाया सुगुरु बनाय । करम बनहि जिन जइयो भाय
भूले चूके कबहु न जाहु । लोभ नलिनिपै चुगा न खाहु ॥४
दुर्जन मोहदगाके काज । बांधी नलनी तल धर नाज ॥ तुम
जिन बैठहु सुवा सुजान । नाज विषयसुख लहि तिहं थान
॥ ५ ॥ जो बैठहु तो पकरि न रहियो । जो पकरो तो दृ
जिन गहियो ॥ जो दृढ़ गहो तो उलटि न जइयो । जो उलटो
तो तजि भजि धइयो ॥६॥ इहविध सूआ पढ़ायो नित्त । सुवटा
पढ़िके भयो विचित्त ॥ पढ़त रहै निशिदिन ये बैन । सुनत लहै
सब मानी चैन ॥७॥ इक दिन सुवटे आई मनै, गुरु संगत तज
भज गये बनै ॥ बनमें लोभ नलिन अति बनी । दुर्जन मोह
दगाकी तनी ॥८॥ तो तर विषयभोग अन धरे । सुवटे जान्यो
ये सुख खरे । उतरे विषयसुखनके काज । बैठ नलिनपै विलसै
राज ॥९॥ बैठो लोभ नलिनपै जबै । विषय स्वाद रस लटक्यो
तबै ॥ लटकत तरे उलटि गये भाव । तर मुंडी ऊपर भये पांव
॥१०॥ नलिनी दृढ पकरे पुनि रहै । मुखतें रटन दीनता कहै
कोउ न तहां छुड़ावनहार नलनी पकरहि करहि पुकार ॥११॥
पढ़त रहै गुरुके सब बैन । जे जे दिनकर रसिये ऐन ॥ सुवटा
वनमें उड़ निज जाहु । जाहु तो भूल सुगा जिन खाहु ॥१
नलनीके जिन जइयो तीर । जाहु तो तहां न बैठहु वीर ॥
बैठो तो दृढ़ जिन गहो । जो दृढ़ गहो तो पकरि न रहो ॥१३

जो पकरो तो चुगा न खइयो। जो तुम खावो तो उलट न जइयो॥ जो उलटो तो तज भज घइयो। इतनी सीख हृदयमें लहियो ॥१४॥ ऐसे वचन पढ़त पुन रहै। लोभ नलनि तज भज्यो न चहै॥ आयो दुर्जन दुर्गतिरूप। पकड़े सुवटा सुंदर भूप॥१५॥ डारे दुखके जालमझार। सो दुख कहत न आवे पार॥ भूख प्यास बहु संकट सहै। परवस पर्यो महा दुख लहै ॥१६॥ सुवटाकी सुधि बुधि सब गई। यह तो बात और कछु भई॥ आय पर्यो दुखसागरमाहिं। अब इततें कितको भज जाहिं ॥१७॥ केतो काल गयो इह ठौर। सुवटे जियमें ठानी और॥ यह दुख जाल कटै किह भांति। ऐसी मनमें उपजी खांति॥१८॥ रात दिना प्रभु सुमरन करे। पाप जाल काटन चित धरे॥ क्रम क्रम कर काट्यो अघ जाल। सुमरन फल भयो दीनदयाल॥१९॥ अब इततें जो भजकें जाउं। तो नलनीपर बैठ न खाउं॥ पायो दाव भज्यो ततकाल। तज दुर्जन दुर्गति जंजाल॥२०॥ आयो उड़त वहुर वनमांहि। बैठो नर भव द्रुमकी छांहि॥ तित इक साधु महा मुनिराय। धर्मदेशना देत सुभाय॥२१॥ यह संसार कर्मवन रूप। तामहिं चेतन सुआ अनूप॥ पढ़त रहै गुरु वचन विशाल। तौ हू न अपनो करै सम्हाल॥२२॥ लोभ नलिनिपै बैठो जाय। विषय स्वाद रस लटक्यो आय। पकरहि दुर्जन दुर्गति परे। तामें दुख बहु [illegible]॥२३॥ सो दुख कहत न आवे पार। [illegible] सुनतें सुवटो चोंक्यो आप। यह तो [illegible]॥२४॥ ये दुख तो सब मैं ही सहे। जो मुनिवरने मुखतै कहे॥ सुवटा सोचे

हियेमँझार । ये गुरु सांचे तारनहार ॥ २५ ॥ मैं शठ फिरयो करम वनमाहिं । ऐसे गुरु कहुं पाये नाहिं ॥ अब मोहि पुण्य उदै कछु भयो । सांचे गुरुको दर्शन लयो ॥२६॥ गुरु स्तुति कर वारंवार । सुमिरे सुवटा हियेमझार ॥ सुमरत आप पाप भज गयो । घटके पट खुल सम्यक् थयो ॥२७॥ समकित होत लखी सव वात । यह मैं यह परद्रव्य विख्यात ॥ चेतनके गुण निज महिं धरे । पुद्गल रागादिक परिहरे ॥२८॥ आप मगन अपने गुणमाहिं । जन्म मरण भय जिनको नाहिं ॥ सिद्ध समान निहारत हिये । कर्म कलंक सवहि तज दिये ॥२९॥ ध्यावत आप माहिं जगदीश । दुहुंपद एक विराजत ईश ॥ इहविधि सुवटो ध्यावत ध्यान । दिन दिन प्रति प्रगटत कल्यान ॥३०॥ अनुक्रम शिवपद जियको भयो । सुख अनंत विलसत नित नयो ॥ सतसंगति सवको सुख देय । जो कछु हियमें ज्ञान धरेय ॥३१॥ केवलिपद आतम अनुभूत । घट घट राजत ज्ञान सँजूत ॥ सुख अनंत विलसै जिय सोय । जाके निजपद परगट होय ॥३२॥ सुवावत्तीसी सुनहु सुजान । निजपद प्रगटत परम निधान ॥ सुख अनंत विलसहु ध्रुव नित्त । 'भैयाकी' विनती धर चित्त ।३३। संवत सत्रह त्रेपनमाहिं । अश्विन पहले पक्ष कहाहिं ॥ दशमीं दशों दिशा परकाश । गुरु संगतितैं शिवसुखभास ॥ ३४ ॥

१५८। सप्तविसनके चौवोले।

सात विसन। दोहा।

सातविसन जगमें बुरे, बुरा इन्होंका संग।
जिसके शिर चढ जात हैं, केई दिखावत रंग ॥

केई दिखावत रंग संगमें, नफा नहीं सुन भाई।
अपना तन धन धर्म गुमावै, जग वदनामी छाई॥
तात मात सुत नारी छोडे, मौन लगावै भाई।
हाय हाय किस नीच जीवने, इनकी चाल चलाई॥

झड।

चालमें सव जग आया, ख्यालमें जन्म गमाया।
पाप कर नरक सिधाया, वहुत पीछें पछताया॥
विसनकी सुनो कहानी, कही जैसें जिनवानी।
तज्या जिन्होंने विसन जिनेश्वर तिनकी शिक्षा मानी॥ १॥

(१) जूआखेलनविसन।

जुआ खेलकर जगतमें, हुआ मुफ्त वदनाम।
मजा नहीं इस काममें, सजावार वसु जाम॥
सजावार वसु जाम धाम, आराम कभी नहिं पाता।
फिकरमंद मतिअंध वक्तपर, खानेको नहिं जाता॥
संग जुआरी कई रंगका, ढंग देख घवराता।
मारपीट वहु माल खायकर, तो भी नहीं लजाता॥

झड।

लाज ज्वारीके नाहीं, दया नहिं मनके माहीं।
सत्य नहिं कहे कदाही, राज्यका चौर सदाही॥
पांडुसुत खेल किया था, नारिका दाव दिया था।
तजा जिन्होंने जुआ जिनेश्वर तिन सव सुक्ख लिया था॥२॥

(२) मांसभक्षणविसन।

श्वास श्वास पर खैरको, चाहै सकल जहान।
श्वास नाशकर होत है, मांस महा दुखदान॥
मांस महा दुखदान खानकी वात सुनत घिन आवे।

थरहर काँपै काय हाय पशु दीन बडा घबरावे ॥
बेकसूर पशुमांसलालची तनमें छुरी चलावे ।
बडे निर्दयी जीव जगतमें, आमिषभोजन खावे ॥

झड़।

भावना हिरदे खोटी, छोंककर आमिस बोटी ।
मनुष भी राक्षस जोटी, धरै शिर अघकी पोटी ॥
मांसका नाम न लेना, असनके लायक है ना ।
मांस असनको त्याग जिनेश्वर जगमें कीरति लेना ॥ ३

(३) मदिरासेवनविसन ।

जितने नशे जहाँनमें, सभी विनाशै ज्ञान ।
तिनमें मदिरा अति बुरी, सही गमावे प्रान ॥
सही गमावे प्रान ज्ञानका, नाम न रहने पावे ।
मदिरा पीके मनुष होशमें, कबहूं नाहिं रहावे ॥
जननी भगिनी नार न जाने, मदमातुर हो जावे ।
अति बेहोश पडा दुख भुगते, मूरख प्रान गमावे ॥

झड़।

प्रान बहु जीवन खोया, जादवां वंश डुबोया ।
ऋषीको क्रोध जगाया, द्वारिका दाह कराया ॥
तुच्छकी कौन कहानी, बडोंकी कालनिशानी ।
यातें मदिरा त्याग जिनेश्वर करो धर्म सुखपानी ॥ ४ ॥

(४) शिकारविसन ।

अपने अपने प्रानकी, सभी मनावें खैर ।
हाय सिकारी बनविषै, पशु मारै बिन बैर ॥
पशु मारै बिन बैर खैरकी दया हिये नहिं लावै ।

शीत घाम सब सहै वनीमें, भोजन भी नहिं पावै ॥
नाम भजन हरनाम त्यागकें, मार मार मुख गावै ।
कायर क्रूर कुरंग अंगमें, भारी चोट लगावै ॥

झड़ ।

चोटमें हिरन सताया, दयाका नाम मिटाया ।
भगेके पीछे धाया, वीरका नाम लजाया ॥
मृगीपर हाथ चलाया, वृथा क्षत्री कहलाया ।
दुर्गतिपंथ शिकार त्यागकर, यही जिनेश्वर गाया ॥ ५ ॥

(५) चौरी विसन ।

प्रानोंसे प्यारी गिनै धनदौलत संसार ।
याके कारन नरपती, हाथ गहै तलवार
हाथ गहै तलवार समरमें, सूरवीर शिर देते ।
नदसागर तिर जांय वणिक शिर वडी आपदा लेते ॥
कठिन कठिनकर लछमी जोडैं, सहैं सभी दुख जेते ।
हाय हाय ताको ठगता कर सहज चौर कर लेते ॥

झड ।

चौरकों राजा मारै. सजा दे देशनिकारै ।
लोग सवही दुतकारै, वडी वेशरमी धारै ॥
भूल मति चौरी करियो. चौरसंगतिमें डरियो ।
डरियो जगतमझार जिनेश्वर चौरी कवहुं न करियो ॥ ६ ॥

(६) वेश्या सेवनविसन ।

नीचनकी संगत रहै. करै नीच सब काम ।
मूरखजन फँसि जात हैं. देख ऊजरो चाम ॥
देख ऊजरो चाम दामकी, खातिर धरम गमावै ।

ऊंच नीचका ख्याल करे ना, सबको अंग लगावे ॥
जगकी झूंट जानि गनिकाको, मूरख मन ललचावे ।
हा धिक धिक ऐसे जीवनको, गनिका संग रहावे ॥

झड़ ।

लगै जब गनिका प्यारी, बुद्धि नशि जाय अगारी ।
क्रोडपति होय भिखारी, कर्मगति टरे न टारी ॥
भूल मति यारी करियो, देह दुरगतिसों डरियो ।
तजि गनिकाको नेह जिनेश्वर धर्मविषे मन धरियो ॥ ७ ॥

(७) परस्त्रीसेवनविसन ।

कुलकलंकदायक सदा, परकामिनिको प्यार ।
मूरखमनके हतनको, मृगनैनी तलवार ॥
मृगनैनी तलवार कलेजा, आरपार हो जावे ।
दृगकटाक्ष सर चोट लगे तब, ओट न कोई आवे ॥
ऊपर घाव प्रगट नहिं दीखे, मनही मन पछतावे ।
खानपान गृहवास खासका, मजा हाथसे जावे ॥

झड़ ।

जानके मान गमावे, भेद काहू न बतावे ।
दिवसमें निद्रा आवे, सुपनमें नार लखावे ॥
वृथा क्यों जी ललचावे, लिखी विधिने सोइ पावे ॥
लंकपतीसे रंक भये नर, तेरी कौन चलावे ॥ ८ ॥

इति सप्तविसन चौबोला ।

अथ सूरत कवि कृत ।

१५९ । उपदेशी बारहखड़ी ।

दोहा—प्रथम नमूं अरहंतको, नमूं सिद्ध आचार ।
उपाध्याय सब साधुको, नमूं पंच परकार ॥ १ ॥

भजन करूं श्रीआदिको, अंत नाम महावीर।
तीर्थंकर चउवीसको, नमूं ध्यान धर धीर ॥ २ ॥
जिनधुनितैं वानी खिरी, प्रगट भई संसार।
नमस्कार ताकूं करूं, इक चित इकमन धार ॥ ३ ॥
ता वानीके सुनतही, बढ्यो परम आनंद।
भई सुरति कछु कहन की, वारखडीके छंद ॥

वारखडीके छंद बनाऊं यह मेरे मन आई। जैन पुराण बखानी वानी, सो मैंने सुन पाई ॥ गुरुप्रसाद भविजनकी संगति, यह उपजी चतुराई। सूरत कहै बुद्धि है थोरी, श्री जिननाम सहाई ॥४॥ कक्का करत सदा फिर्यो, जामन मरन अनेक। लख चौरासी जोनिमें, काज न सुधर्यो एक ॥ काज न सुधर्यो एक दिवाना, तैं शुभ अशुभ कमाया। तेरी भूलि तोहि दुखदाई, बहुतेरा समझाया। भटकत फिर्यो चहूं गतिभीतर काल अनादि गमाया। सूरत सतगुरु सीख न मानी तातैं जग भरमाया ॥ ५ ॥ खक्खा खूबी मत लखो, संसारी सुखजान। यह सुख, दुखका मूल है, सतगुरु कही बखान ॥ सतगुरु कही बखान जान यह, तू मति होय अयाना। विनाशीक सुख इन इंद्रिनका, तैं मीठा करि जाना ॥ यह सुख जानि खानि है दुखकी, तू क्या भरम भुलाना। सूरत पछतावैगा तबही, होय नरक जब थाना ॥६॥ गग्गा गुरु निरग्रंथको, मनवानी मुख भाख। अवर विकार सबै तजो, यह थिरता मन राख ॥ यह थिरता मनराखि चाखि रस, जो अपना सुख चाहै। अवर सबहिं जंजाल दूर

करि ये बातें अवगाहे ॥ पांचों इंद्रीवस करि अपनी कर्ममूल को दाहे। सूरत चेत अचेत होय मति, अवसर बीता जाहे ॥ ७ ॥ घग्घा घाट सुघाटमें, नाव लगी है आय। जो अबके चेत नही, तो गहरा गोता खाय ॥ गहिरा गोता खाय जाय तब कौन निकासनहारा। समय पाय मानुषगति पाई, अजहूं नाहिं सँभारा ॥ बार बार समझाऊं चेतन मानो कहा हमारा सूरत कही पुकार गुरूने, यों हो है निस्तारा ॥ ८ ॥ नन्ना नाता जगतमें, निज स्वारथ सबकोय। आन गांठि जिसदिन परे, कोउ न सँगाती होय ॥ कोउन सँगाती सगा न साथी जिसदिन काल सतावे। सब परिवार अपन स्वारथका, तेरे काम न आवे ॥ आठों मदमें छाकि रह्यो है, मैं मैं कर बिललावे सूरत समझि होय मत बौरा, अवसर बीता जावे ॥९॥ चच्चा चंचल विकलमन, तिस मनको वसिआन। जबलग मन बस में नहीं, काज न होय निदान ॥ काज न होय निदान जान यह, बस नाहीं मन तेरा। पांचू इंद्री छठा चोरमन, न इनका मयो चेरा ॥ राग दोष अरु मोहममीरी इनहूं आन मिल घेरा। सूरत जिसदिन [illegible] हो है [illegible] होय निबेरा

१० ॥ छच्छा छह रस [illegible] मान। छ[illegible]

छाडे नहीं, [illegible]

[illegible] जा[illegible] [illegible] त्याग[illegible]

है, [illegible]

नाचा ॥ [illegible]

॥११॥ [illegible]

॥ १६ ॥ डड्डा डिग मति जाय तू, अडिग होय पद साधि। दृढता करि परिणामकी, जो सुख लहै समाधि ॥ जो सुख लहै समाधि व्याधितज अप्पा खोजो भाई । सिद्धरूप तेरे घट अंतर, कहां ढूंढने जाई ॥ जड पुद्गलको भिन्न जान तू, मिटै करम दुखदाई । सूरत आप आपमें साधै, यह सतगुरु फरमाई ॥ १७ ॥ ढड्ढा ढोरी छोडदे, ढिग इनके मत जाय । कुगुरु कुदेव कुज्ञानको, तू मति चित्त लगाय ॥ तू मति चित्त लगाय भाव तजि कुगुरु कुदेव कुज्ञानी । ये तोकूं दुरगति दिखलावें, सोदुखमूलनिशानी ॥ इनतें काज एक नहिं सुधरे, करम भरमके दानी । सूरत तजि विपरीत इन्होंकी, सतगुरु आप बखानी ॥१८॥ णण्णा रण ऐसा करो, संवरशस्त्र सँभार । कर्मरूप ये अरि बडे, तिनहिं ताकिकरि मार ॥ तिनहिं ताकि करि मार, निवारो कर्म रूप अरि सोई । है अनादिके ये दुखदाई, तेरी जानि विगोई ॥ नारायण प्रति हरि हर चक्री, यातें बचे न कोई । सूरत ज्ञानसुभट जब जागे, तिन इनकी जड खोई ॥ १९ ॥ तत्ता तन तेरा नहीं, जामें रह्यो लुभाय । तांता तोरै तनकमें, नाहि कहा पतियाय ॥ ताहि कहा पतियाय पाय सुख, ह्वै रह्यो याको धामी । छिनमें मरै छिनकमें उपजै, होय जगतमें हांसी ॥ याके संग बंटे बहु ..परे महादुख फांसी । सूरत भिन्न जान इस तनको यासों उदासी ॥ २० ॥ थत्था थिरपदको चहै, यों थिरपद नहिं ... थिरता करि परिणामकी थिरपद परसे सोय ॥ थिर- ... सोय होय सुख ... । ज्ञानध्यानको

करै हथौरा, कर्म अरीको कूटै ॥ यह जगजाल अ
लका सो ऐसी विधि टूटै । सूरत थिरपदको तो पर
पुरके सुख लूटै ॥ २१ ॥ दद्दा दर्व छही कहे, प्रगट
माहिं । अवर दरव सब खेल हैं, ज्ञानी मानै नाहिं ॥
मानै नाहिं दरव वे, जो रतननको जानै । माटी भूमि
जो धंजि, जगमें प्रगट बखानै ॥ पुद्गल जीव धरम अरु
रम काल अकाश प्रमानै । सूरत इन दरवनकी चरचा, इ
गिनैं बखानैं ॥ २२ ॥ धध्धा ध्यान जु जगतमें, प्रगट कहे
यार । आर्त रौद्र धर्मसु शुकल, जिनमत कहै विचार ॥ जि
मत कहै विचार चार ये, ध्यान जगतके माहीं । आरत रौ
अशुभके दाता, इनतैं शुभगति नाहीं ॥ धर्मध्यानके जे नर
धारक शुभ सुख होत सदाही । सूरत शुक्लध्यानके करता,
ते शिवपुरको जाई ॥ २३ ॥ नन्ना नाशै करम जब, नेह करै
निजमाहिं । नटकी कला जु जगतमें, नेह करै छिन नाहिं ॥
नेह करै छिन नाहिं जगतमें, आपा नाहिं फंसावै । ज्यों पानीमें
रहै कमलतउ. जलका भेद न पावै ॥ शुभ अरु अशुभ एकसे
दोनों, रीझै ना पछतावै । सूरत भिन्न लखै ऐसी विध, करम
कहा ढिग आवै ॥ २४ ॥ पप्पा प्रभु अपना लखो, परसंगति
दे छोर । परसंगति आस्रव बढ़ै. देय करम झकझोर ॥ देय
करम झकझोर जोरकरि, फिर निकसन नहिं होई । आस्रव
बंध परी है वेरी. लगै उपाय न कोई ॥ यातैं प्रीति करो संव-
नों, हिन करके दिल जोई । सूरन संवरको आदरिये. कर्म

॥ १६ ॥ डड्डा डिग मति जाय तू, अडिग होय पद साधि। दृढता करि परिणामकी, जो सुख लहै समाधि॥ जो सुख लहै समाधि व्याधितज अप्पा खोजो भाई। सिद्धरूप तेरे घट अंतर, कहां ढूंढने जाई॥ जड पुद्गलको भिन्न जान तू, मिटै करम दुखदाई। सूरत आप आपमें साधै, यह सतगुरु फरमाई॥ १७॥ ढड्डा ढोरी छोडदे, ढिग इनके मत जाय। कुगुरु कुदेव कुज्ञानको, तू मति चित्त लगाय॥ तू मति चित्त लगाय भाव तजि कुगुरु कुदेव कुज्ञानी। ये तोकूं दुरगति दिखलावैं, सोदुखमूलनिशानी॥ इनतैं काज एक नहिं सुधरै, करम भरमके दानी। सूरत तजि विपरीत इन्होंकी, सतगुरु आप बखानी॥१८॥ णण्णा रण ऐसा करो, संवरशस्त्र सँभार। कर्मरूप ये अरि बडे, तिनहिं ताकिकरि मार॥ तिनहिं ताकि करि मार, निवारो कर्म रूप अरि सोई। है अनादिके ये दुखदाई, तेरी जाति विगोई॥ नारायण प्रति हरि हर चक्री, यातैं बचे न कोई। सूरत ज्ञानसुभट जब जागे, तिन इनकी जड खोई ॥ १९॥ तत्ता तन तेरा नहीं, जामें रह्यो लुभाय। तांता तोरै तनकमें, ताहि कहा पतियाय॥ ताहि कहा पतियाय पाय सुख, है रह्यो याको वासी। छिनमें मरै छिनकमें उपजै, होय जगतमें हांसी॥ याके संग बढै बहु ममता परै महादुख फांसी। सूरत भिन्न जान इम तनको यामें रहो उदासी॥ २०॥ थत्था थिरपदको चहै, यों थिरपद नहिं होय। थिरता करि परिणामकी थिरपद परमै सोय॥ थिरपद परमै सोय होय सुख, गतिचारनसों छूटे। ज्ञानध्यानको

करै हथोरा, कर्म अरीको कूटै ॥ यह जगजाल अनादिकालका सो ऐसी विधि टूटै ! सूरत थिरपदको तो परसै, शिवपुरके सुख लूटै ॥ २१ ॥ दद्दा दर्व छही कहे, प्रगट जगतके माहिं । अवर दरव सब खेल हैं, ज्ञानी मानै नाहिं ॥ ज्ञानी मानै नाहिं दरव वे, जो रतननको जानै । माटी भूमि शैलकी जो थंजि, जगमैं प्रगट वखानै ॥ पुद्गल जीव धरम अरु अधरम काल अकाश प्रमानै । सूरत इन दरवनकी चरचा, ज्ञानी गिनैं वखानै ॥ २२ ॥ धध्धा ध्यान जु जगतमैं, प्रगट कहे हैं च्यार । आर्त रौद्र धर्मसु शुकल, जिनमत कहैं विचार ॥ जिन मत कहै विचार चार ये, ध्यान जगतके माहीं । आरत रौद्र अशुभके दाता, इनतैं शुभगति नाहीं ॥ धर्मध्यानके जे नर धारक शुभ सुख होत सदाही । सूरत शुकलध्यानके करता, ते शिवपुरको जाई ॥ २३ ॥ नन्ना नाशै करम जब, नेह करै निजमाहिं । नटकी कला जु जगतमैं, नेह करै छिन नाहिं ॥ नेह करै छिन नाहिं जगतमैं, आपा नाहिं फंसावे । ज्यों पानीमैं रहै कमलतउ, जलका भेद न पावे ॥ शुभ अरु अशुभ एकसे दोनों, रीझै ना पछतावे । सूरत भिन्न लखै ऐसी विध, करम कहा ढिग आवे ॥ २४ ॥ पप्पा प्रभु अपना लखो, परसंगति दे छोर । परसंगति आस्रव वढै, देय करम झकझोर ॥ देय करम झकझोर जोरिकरि, फिर निकसन नहिं होई । आस्रव वंध परी है वेरी, लगै उपाय न कोई ॥ यातैं प्रीति करो संवरमों, हित करके दिल जोई । मूरत संवरको आदरिये, कर्म

१. खूबों या मन

निर्जरा होई ॥ २५ ॥ फफ्फा फूल्यो ही फिरै, फोकट देख न भूल । फांसी पडी अनादिकी, करि तोडनको सूल ॥ कर तोडनको सूल भूल मति, दाव भलो तैं पायो । भ्रमते भ्रमते भवसागरसों, मानुषगतिमें आयो ॥ याही गतिसों भये तीर्थंकर, केवल ज्ञान उपायो । सूरत जानि भूल मति चूकै, यह सतगुरु फरमायो ॥ २६ ॥ बब्बा बिसन कुबिसन है, बिसनवेग तू त्याग । बसकरि पांचों इंद्रियनि, शुभ कारजको लाग ॥ शुभकारजको लाग त्याग नर, बिसन सात ये भारी । जूआ आमिष सुरापान अरु, आखेटक दुखकारी । परधनचोरी अरु वेश्याकूं, त्याग करो परनारी ॥ सूरत इस भवमें सुख पावे, परभव सुख अधिकारी ॥ २७ ॥ भम्भा भूल्यो ही फिरै, भरम्यो महा मिथ्यात । भेद न पायो ज्ञानको तातैं आवत जात ॥ तातैं आवत जात भात मुन, भेदज्ञान नहिं पाया । क्रोध रु मान लोभ अरु माया, इनमौं नेह लगाया ॥ परमारथकी रीति न जानी, स्वारथ देख भुलाया । सूरत भेदज्ञान जब जाना, तब मिथ्यात मिटाया ॥ २८ ॥ मम्मा मति तिनकी मही, तिन मल कीनो दूर । मतवारे समुझें नहीं, तिनको नाहिं महूर ॥ तिनको नाहिं महूर दूर है, कुमती कुमति विचारे । तिन कुगुरनि तिनको समुझाये, पकरि मरोदधि डारे ॥ पुण्यपापको भेद न जाने, जीव अनादिक मारे । सूरत ने नर परे कुसंगति, किमपिव जाहिं उबारे ॥ २९ ॥ य्या अयान परो बुरो, यातैं होय अकाज । यह ममता मौं

१ । काम ।

...आवै लाज ॥ याहि न आवै लाज वाज
नाहि, कह तेरो यहां को है । तात मात बांधव सुत कामिन
तू इनके सुख मोहै ॥ आठों जाम रहै इनहीमें, यह तुमको
नहिं सोहै । सूरत तजि अज्ञान सीखगह तव तुहि शिव
सुख हो है ॥ ३० ॥ ररा रच्यो अनादिको, रचि विषइनसों
प्रीति । रस चाख्यो नहि आतमी, लखी न रसकी रीति ॥
लखी न रसकी रीति मीत तैं, विषयनिसँग सुख माना । आत
मीक रस है सुखदायक, सो तैं नहीं पिछाना ॥ जिन रस
रीति लखी आतमकी, सो सिवपुरका राना । सूरत वे भवि
मुक्ति गये हैं, जिनआतम हित ठाना ॥३१॥ लल्ला लिपट्यो
ही रहै, लख्यो जगतके भेक । लख्यो न आप सरूपको, लह्यो
न शुद्ध विवेक ॥ लह्यो न शुद्ध विवेक एक तैं, पर आपा
...हिं बूझा । वस्तु पराई लखी न भाई, तातैं रह्यो अरूझा ॥
...स्तु विनासी नहीं प्रकाशी, तू कर्मनसँग झूझा । सूरत वे
...पार भये हैं, जिनको आतम सूझा ॥ ३२ ॥ वव्वा वह
...त बुरी, जासों होय कुभाव । सो संगति शैली भली, जामें
...न सुभाव ॥ जामें सहज सुभाव भाव है सो शैली मोहिं
...। तत्त्व दरवकी चर्चा तिनकैं, तजै कुचर्चा भारी ॥ भरम
... दूर रहत हैं धर्म ध्यानकी त्यारी । सूरत यह वांछा
... उन मित्रनसों यारी ॥३३॥ शश्शा सोई सुघर है, सुनै
...ी सीख । सदा रहै शुभध्यानमें, सही जैनकी ठीक ॥
...की ठीक तिन्होंको अवर कछु नहिं भावै । आगम
...ध्यातम वानी, सुनै सुनावै गावै ॥ कुकथाचार विचार

जगतमें, तिनको नाहिं सुहावे। सूरत सो सज्जन मो भावे, जो शिवपंथ वतावे ॥३४॥ खक्खा खुटक निवारिकें, खिमा-भाव चितलाय। खुले कपाट अभ्यासके, खिरे करम दुखदाय॥ खिरे करम दुखदाय जाय वह, खिमाभाव चितल्यावे। होय अभ्यास तास भविजनको, ज्ञानी ज्ञान जगावे॥ सदा मगन है अपने मनमें, रीझ आप सुख पावे। सूरत सोई भिन्न सवनतें, सो आतमहित लावे॥ ३५॥ सस्सा सो स्याना सदा, सुगुरु सीख सुन लेह। सदा रहे संतोषसों, सो साधू लखिलेह॥ सो साधू लखि लेह गेहमें, जो संतोष विचारे। सीख बात है जो संसारी, तिनको नहीं निहारे॥ सँकलप विकलप जगके जितने, तिन दुसमनको टारे। सूरत सो साधू जन ऐसा, शिवपुर वेग सिधारे॥ ३६॥ हाहा हूहू कर रह्यो, है परवसि दुख पाय। क्यों न आप वश हूजिये, होय परम सुखदाय॥ होय परम सुखदाय पाय पद, अनरूपी अविनाशी। केवलज्ञान दर्श जहँ केवल, सिद्धपुरी सुखराशी॥ आठों करम खिपावे तिनके, आठों गुन परकासी। सूरत सिद्ध महा सुख पावे, काल अनंता पासी॥ ३७॥ लल्ला लेकें परमपद, लखों गये निर्वान। लोकशिखर ऊपर चढे, लियो सिद्ध शिवथान॥ लियो सिद्ध शिवथान आन लखि सोई सिद्ध कहाये। दर्शन ज्ञान चरन गुन तीनों, तिन शिवपुर पहुंचाये॥ जो जो दरसे सो सो भासे आप अचल ठहराये। सूरत सिद्ध कहे ऐसे गुरु जिनपुरानमें गाये॥३८॥ क्षक्षा लक्ष्मी जो वरे, गुन लक्षण-को वेव। लखे सुलक्षन परखिकें, तजे कुलक्षण टेव॥ तजे

कुलच्छन देव भेव लखि सिद्धरूपको ध्यावै । अरहत सिध आचार्य उपाध्याय साधन सीस नवावै ॥ जिनमत धर्म देव गुरु च्यारों, यह दिढता मन लावै । सूरत यह परतीत धरै मन, सो सम्यकपद पावै ॥ ३९ ॥ सम्यक्‌पदको जो लहै, करै वैनगुरु प्रीत । देव धरम गुरु ज्ञानको, परखि गहै निजरीत ॥ ॥४०॥ वारखडी हितसों कही, नहिं गुनियनकी रीस । दोहे तौ चालीस हैं, छंद कहे छत्तीस ॥ ४१ ॥

इति श्रीसूरतकविकृत बारहखड़ी समाप्ता ॥४३॥

१३ । तेरहवां अध्याय

फुटकर संग्रह ।

१६० । छहढाला ।

(स्वर्गीय पं० दौलतरामजी कृत)

सोरठा ।

तीन भुवनमें सार, वीतराग विज्ञानता ।
शिवस्वरूप शिवकार, नमौं त्रियोग सम्हारिकैं ॥

पहिली ढाल । चौपाई (१५ मात्रा) ।

जे त्रिभुवनमें जीव अनंत । सुख चाहैं दुखतैं भयवंत ॥
तातैं दुखहारी सुखकारि । कहैं सीख गुरु करुणा धारि ॥२॥
ताहि सुनो भवि मन थिर आन । जो चाहौ अपनो कल्यान ॥
मोह महामद पियो अनादि । भूलि आपको भरमत वादि ॥
३॥ तास भ्रमनकी है बहु कथा । पै कछु कहूं कही मुनि जथा ॥
काल अनंत निगोदमझार । बीत्यो एकेंद्रिय-तन धार ॥४॥
एक स्वासमें अठदश वार । जन्म्यो मर्‍यो भर्‍यो दुखभार ॥

निकसि भूमि जल पावक भयो । पवन प्रतेक वनस्पति थयं
५ ॥ दुर्लभ लहि ज्यों चिंतामणी । त्यों परजाय लही त्र
तणी ॥ लट पिपीलि अलि आदि शरीर । घर घर म
सही वहु पीर ॥ ६ ॥ कवहूं पंचेंद्रिय पशु भयो । मन
निपट अज्ञानी थयो ॥ सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर । निवल
हति खाये भूर ॥ ७ ॥ कवहूं आप भयो वलहीन । सवल
करि खायो अतिदीन ॥ छेदन भेदन भूख पियास । भारव
हिम आतप त्रास ॥ ८ ॥ वध वधन आदिक दुख घने । को
जीभतें जात न भने ॥ अति संक्लेशभावतें मर्‍यो । घोर श्
सागरमें पर्‍यो ॥ ९ ॥ तहां भूमि परसत दुख इस्यो । वि
सहस डसैं तन तिस्यो ॥ तहां राधशोणित वाहिनी । क्र
कुलकलित देह दाहिनी ॥ १० ॥ सेमरतरुजुत दलअसिपत्र
असि ज्यों देह विदारैं तत्र ॥ मेरु समान लोह गलिजाय
ऐसी शीत उष्णता थाय ॥ ११ ॥ तिल तिल करहिं देह
खंड । असुर भिडावें दुष्ट प्रचंड ॥ सिंधुनीरतें प्यास न जाय
तौ पण एक न बूंद लहाय ॥ १२ ॥ तीनलोकको नाज
खाय । मिटै न भूख कणा न लहाय ॥ ये दुख वहु सागर
सहे । कर्मजोगतें नरतन लहे ॥ १३ ॥ जननी उदर वस
नवमास । अंग सकुचतें पाई त्रास ॥ निकसत जे दुख पा
घोर । तिनको कहत न आवे ओर ॥ १४ ॥ वालपनेमें ज्ञा
न लह्यो । तरुणसमय तरुणीरत रह्यो ॥ अर्धमृतकसम वृद्ध
पनो । कैसें रूप लखै आपनो ॥ १५ ॥ कभी अकामनिर्जर
... । भवनत्रिकमें सुरतन धरे ॥ विषय-चाह-दावानल दह्यो

मरत विलाप करत दुख सह्यो ॥ १६ ॥ जो विमानवासी हूं थाय। सम्यकदर्शन विन दुख पाय ॥ तहँतैं चय थावर तन धरै। यों परिवर्तन पूरे करै ॥ १७ ॥

दूसरी ढाल। पद्धरि छंद।

ऐसें मिथ्या-दृगज्ञानचर्ण.—वश भ्रमत भरत दुख जन्ममरण ॥ तातैं इनको तजिये सुजान। सुन तिन संछेप कहूं वखान ॥१॥ जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व। सरधै तिनमांहि विपर्ययत्व ॥ चेतनको है उपयोग रूप। विन मूरति चिनमूरति अनूप ॥२॥ पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल। इनतैं न्यारी है जीवचाल ॥ ताकों न जान विपरीति मान। करि, करै देहमें निज पिछान ॥ ३ ॥ मैं सुखी दुखी मैं रंक राव। मेरो धन गृह गोधन प्रभाव ॥ मेरे सुत तिय मैं सबल दीन। वे रूप सुभग मूरख प्रवीन ॥ ४ ॥ तन उपजत अपनी उपज जानि। तन नशत आपको नाश मान ॥ रागादि प्रगट जे दुःखदैन। तिनहीको सेवत गिनहि चैन ॥ ५ ॥ शुभअशुभबंधके फलमझार। रति अरति करै निजपद विसार ॥ आतमहितहेतु विराग ज्ञान। ते लखै आपको कष्टदान ॥ ६ ॥ रोकी न चाह निजशक्ति खोय। शिवरूप निराकुलता न जोय। याही प्रतीतजुत कछुक ज्ञान। सो दुखदायक अज्ञान जान ॥ ७ ॥ इनजुत विषयनिमें जो प्रवृत्त। ताको जानो मिथ्याचरित्त ॥ यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह। अब जे गृहीत सुनिये न तेह ॥ ८ ॥ जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव। पोषै चिरदर्शन मोह एव ॥ अंतररागादिक धरै जेह। बाहर धन अंबरतैं सनेह ॥ ९ ॥

धारैं कुलिंग लहि महतभाव। ते कुगुरु जनम-जल-उपल-नाव॥ जे रागद्वेषमलकरि मलीन। वनितागदादिजुत चिन्हचीन ॥ १० ॥ ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव। शठ करत, न तिन भवभ्रमनछेव ॥ रागादिभाव हिंसासमेत। दर्वित त्रसथावर मरन खेत ॥ ११ ॥ जे क्रिया तिन्हें जानहु कुधर्म। तिन सरधैं जीव लहै अशर्म ॥ याकौं गृहीतमिथ्यात जान। अब सुन गृहीत जो है कुज्ञान ॥ १२ ॥ एकांतवाद दूषित समस्त विषयादिकपोषक अप्रशस्त ॥ कपिलादिरचित श्रुतको अभ्यास। सो है कुबोध बहु देन त्रास ॥ १३ ॥ जो ख्याति लाभपूजादि चाह। धरि करत विविधविध देहदाह ॥ आतम अनातमक ज्ञानहीन। जे जे करनी तनकरनछीन ॥ १४॥ ते सब मिथ्याचारित्र त्यागि। अब आतमके हित पंथ लागि॥ जगजालभ्रमनको देय त्यागि। अब 'दौलत' निज आतम-सुपागि ॥ १५ ॥

तीसरी ढाल। नरेंद्रछंद (जोगीरासा।)

आतमको हित है सुख, सो सुख आकुलता विन कहिये। आकुलता शिवमांहि न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिये। सम्यकदर्शन ज्ञान चरन शिव, मग सो दुविध विचारो। जो सत्यारथरूप सु निश्चय, कारन सो व्यवहारो ॥ १ ॥ परद्रव्यनितैं भिन्न आपमें, रुचि सम्यक्त भला है। आप रूपको जानपनो सो, सम्यक्ज्ञानकला है ॥ आपरूपमें लीन रहे थिर, सम्यकचारित सोई। अब व्यवहार मोक्षमग सुनिये, हेतु नियतको होई ॥२॥ जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बंध रु संवर जानो।

...र मोक्ष कहे जिन तिनको, ज्यौंको त्यौं सरधानो ॥ है
समकित व्यवहारी, अव इन रूप वखानौ। तिनको सु
सामान्यविशेषै, दृढ प्रतीति उर आनौ ॥३॥ वहिरातम अंत
आतम परमातम जीव त्रिधा है। देह जीवको एक गिनै वहि
रातमतत्त्व मुधा है॥ उत्तम मध्यम जघन त्रिविधिके अंतर
आतमज्ञानी। द्विविध संगविन शुधउपयोगी, मुनि उत्तम निज-
ध्यानी ॥४॥ मध्यम अंतरआतम हैं जे, देशव्रती आगारी।
जघन कहे अविरत-समदृष्टी तीनों शिवमगचारी॥ सकल
निकल परमातम द्वैविध तिनमैं घातिनिवारी। श्रीअरहंत सकल
परमातम, लोकालोकनिहारी ॥५॥ ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्म-
मलवर्जित सिद्ध महंता। ते हैं निकल अमल परमातम भोगैं शर्म
अनंता॥ वहिरातमता हेय जानि तजि, अंतर आतम हूजै।
परमातमको ध्याय निरंतर, जो नित आनँद पूजै।६। चेतनता
विन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं। पुदगल पंच वरन, रस
पन, गंध दु, फरस वसु, जाके हैं॥ जिय पुदगलको चलन सहाई
धर्मद्रव्य अनरूपी। तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन विनमूर्ति
निरूपी।७। सकल द्रव्यको वास जासमें, सो आकाश पिछानो।
नियत वरतना निशिदिन सो, व्यवहार काल परिमानो। यों
...जीव अव आस्रव सुनिये, मनवचकाय त्रियोगा। मिथ्या
...विरत अरु कपाय परमादसहित उपयोगा ॥८॥ ये ही आतमके
...कारन, तातैं इनको तजिये। जीवप्रदेश वँधै विधिसों सो,
... कवहुं न सजिये॥ शमदमसों जो कर्म न आवैं, सो संवर

...र धा;प्राप्त करे।

आदरिये। तपवलतें विधिझरन निरजरा, ताहि सदा आचरिये, ॥९॥ सकल करमतें रहित अवस्था, सो शिव थिरसुखकारी। इहिविधि जो सरधा तत्त्वनकी, सो समकित व्योहारी॥ देव जिनेंद्र गुरु परिग्रह विन, धर्म दयाजुत सारो। यहू मान समकितको कारन, अष्टअंगजुत धारो॥१०॥ वसुमद टारि निवारि त्रिसठता, पट अनायतन त्यागो। शंकादिक वसु दोष विना, संवेगादिक चित पागो। अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, अब संक्षेपहु कहिये। विन जानेतें दोष गुननको, कैसे तजिये गहिये॥ ११॥ जिनवचमें शंका न धारि वृष, भवसुखवांछा भानै। मुनितन मलिन न देख घिनावे, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै। निजगुन अर पर अवगुन ढांकै, वा जिनधर्म बढावै। कामादिककर वृपतें चिगते, निजपरको सु दृढावै॥ १२॥ धर्मीसों गउवच्छप्रीतिसम, कर जिनधर्म दिपावै। इन गुनतें विपरीत दोष वसु, तिनको सतत खिपावै॥ पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै। मद न रूपको मद न ज्ञानको, धन वलको मद भानै॥१३॥ तपको मद न मद जु प्रभुताको, करै न सो निज जानै। मद धारै तो येही दोष वसु, समकितको मल ठानै॥ कुगुरुकुदेवकुवृपसेवकको नहिं, प्रशंस उचरै है। जिनमुनि जिनश्रुत विन कुगुरादिक, तिन्हैं न नमन करै है॥१४॥ दोषरहित गुनसहित जे, सम्यकदरश सजे हैं। चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजे हैं॥ गेही पै गृहमें न रचै ज्यों, जलमें भिन्न कमल है। नगरनारिको प्यार यथा, कादेमें हेम अमल है॥ १५॥

१ प्रशम, संवेग अनुकंपा आस्तिक्य। २ धर्मसे। ३ माया।

थम नरक बिन षट भू ज्योतिष, वान भवन षँढ नारी। थावर
विकलत्रय पशुमें नहिं, उपजत समकित-धारी ॥ तीनलोक
तहुं कालमाहिं नहिं, दर्शनसम सुखकारी। सकलधरमको मूल
ही इस, बिन करनी दुखकारी ॥१६॥ मोक्षमहलकी परथम
सीढी, या बिन ज्ञान चरित्रा। सम्यकता न लहै सो दर्शन, धारो
भव्य पवित्रा ॥ 'दौल' समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा
मत खोवै। यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक
नहिं होवै ॥ १७ ॥

चौथी ढाल। दोहा।

सम्यकश्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यकज्ञान।
स्वपरअर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रकटावन भान ॥ १ ॥

रोला छंद २४ मात्रा।

सम्यकसाथै ज्ञान, होय पै भिन्न अराधो। लक्षण श्रद्धा जान, दुहूमें भेद अबाधो ॥ सम्यककारण जान, ज्ञान कारज है सोई। युगपत होतैं हू, प्रकाश दीपकतैं होई ॥२॥ तास भेद दो हैं परोक्ष, परतछ तिनमाहीं। मति श्रुत दोय परोक्ष, अक्ष मनतैं उपजाहीं॥ अवधिज्ञानमनपर्जय, दो हैं देशप्रतच्छा। द्रव्यक्षेत्र-परिमान लिये जानैं जिय स्वच्छा ॥ ३ ॥ सकल द्रव्यके गुन अनंत, परजाय अनंता। जानैं एकै काल, प्रकट केवलि भगवंता ॥ ज्ञान समान न आन, जगतमें सुखको कारन। इह परमामृत जन्म, जरामृतरोगनिवारन ॥४॥ कोटि जनम तप तपैं, ज्ञान बिन कर्म झरैं जे। ज्ञानीके छिनमांहि गुप्तितैं, सहज टरैं

१ नपुंसक।

ते ॥ मुनिव्रत धार अनंतवार, ग्रीवक उपजायो । पै निज आतमज्ञान विना सुख लेश न पायो ॥ ५ ॥ तातैं जिनवरकथित, तत्त्व अभ्यास करीजै । संशय विभ्रम मोह, त्याग आपो लखि लीजै ॥ यह मानुषपरजाय, सुकुल सुनिवो जिनवानी । इह विधि गये न मिलै, सुमणि ज्यों उदधिसमानी ॥६॥ धन समाज गज बाज राज, तो काज न आवै । ज्ञान आपको रूप भये, फिर अचल रहावै ॥ तास ज्ञानको कारन, स्वपरविवेक बखान्यो । कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आन्यो ॥७॥ जे पूरव शिव गये, जांय अब आगे जे हैं । सो सब महिमा ज्ञानतनी, मुनिनाथ कहे हैं ॥ विषयचाह-दव-दाह, जगतजन अरनि दझावै । तासु उपाय न आन, ज्ञानघनघान बुझावै ॥८॥ पुण्यपाप-फलमाहिं, हरष विलखो मत भाई । यह पुद्गल परजाय, उपजि विनसैं थिर थाई ॥ लाख बातकी बात, यहै निश्चय उर लावो ॥ तोरि सकल जगदंदफंद, निज आतम ध्यावो ॥९॥ सम्यकज्ञानी होई, बहुरि दृढ चारित लीजै । एकदेश अरु सकलदेश, तस भेद कहीजै ॥ त्रसहिंसाको त्याग वृथा, थावर न सँघारै । परवधकार कठोर निंद्य, नहिं वयन उचारै ॥ १० ॥ जल मृतिका विन, और नाहिं कछु गहै अदत्ता । निजवनिताविन सकल, नारिसों रहै विरत्ता ॥ अपनी शक्ति विचार, परिग्रह थोरो राखै । दश दिशि गमनप्रमान, ठान तसु सीम न नाखै ॥११॥ ताहूमें फिर ग्राम गली, गृह बाग बजारा । गमनागमन प्रमान ठान, अन सकल निवारा ॥ काहूके धन हानि, किमी जय हार

न चीतैं। देय न सो उपदेश, होय अघ वनिज कृषीतैं ॥१२॥ कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै। असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै॥ रागरोषकरतारकथा, कबहूं न सुनीजे। और हु अनरथदंड, हेतुअघ तिन्हें न कीजे ।१३। धर उर समताभाव, सदा सामायिक करिये। पर्वचतुष्टयमाहिं, पाप तजि प्रोषध धरिये॥ भोग और उपभोग नियम करि, ममतु निवारै। मुनिको भोजन देय, फेर निज करहि अहारै ॥१४॥ बारहव्रतके अतीचार, पन पन न लगावै। मरन समय सन्यास धारि तसु दोष नशावै ॥ यौं श्रावकव्रत पाल, स्वर्ग सोलम उपजावै। तहतें चय नरजन्म, पाय मुनि ह्वै शिव जावै ॥१५॥

पांचवीं ढाल। सखी छंद (मात्रा १४)

मुनि सकलव्रती बडभागी। भवभोगनतें वैरागी॥ वैराग्य-उपावन माई। चिंतो अनुप्रेक्षा भाई ॥ १ ॥ इन चिंतत समरस जागै। जिमि ज्वलन पवनके लागै॥ जबही जिय आतम जानै। तबही जिय शिवसुख ठानै ॥२॥ जोबन गृह गोधन नारी॥ हय गय जन आज्ञाकारी॥ इंद्रीय भोग छिन थाई। सुरधनु चपला चपलाई ॥ ३ ॥ सुर असुर खगाधिप जेते। मृग ज्यों हरि काल दले ते ॥ मणि मंत्र तंत्र बहु होई। मरते न बचावै कोई ॥ ४ ॥ चहुंगतिदुख जीव भरै हैं। परिवर्तन पंच करै हैं ॥ सबविधि संसार असारा । यामें सुख नाहिं लगारा ॥५॥ शुभ अशुभ करमफल जेते। भोगै जिय एकहि तेते॥ सुत दारा होय न सीरी। सब स्वारथके हैं भीरी ॥६॥

जलपय ज्यों जियतन मेला । पै भिन्न भिन्न नहिं भेला ॥ तो प्रकट जुदे धन धामा । क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा ॥ ७ ॥ पलरुधिरराधमलथैली । कीकस वसादितें मैली ॥ नवद्वार बहैं घिनकारी । अस देह करे किम यारी ॥ ८ ॥ जो जोग-नकी चपलाई । तातैं है आस्रव भाई ॥ आस्रव दुखकार घनेरे । बुधिवंत तिन्हें निरवेरे ॥ ९ ॥ जिन पुन्य पाप नहिं कीना । आतम अनुभव चित दीना ॥ तिन ही विधि आवत रोके । संवर लहि सुख अवलोके ॥ १० ॥ निज काल पाय विधि झरना । तासों निजकाज न सरना ॥ तप करि जो कर्म खपावै । सोई शिवसुख दरसावै ॥ ११ ॥ किन हू न करयो न धरै को । षटद्रव्यमयो न हरै को ॥ सो लोकमाहिं विन समता । दुख सहै जीव नित भ्रमता ॥१२॥ अंतिम ग्रीवकलोंकी हद । पायो अनंतविरियां पद ॥ पर सम्यकज्ञान न लाध्यो । दुर्लभ निजमें मुनि साध्यो ॥ १३ ॥ जे भाव मोहतें न्यारे । दृग ज्ञान व्रतादिक सारे ॥ सो धर्म जबै जिय धारै । तबही सुख अचल निहारै ॥ १४ ॥ सो धर्म मुनिनकरि धरिये । तिनकी करतूति उचरिये ॥ ताको सुनिकैं भवि प्रानी । अपनी अनुभूति पिछानी ॥ १५ ॥

छठी ढाल (हरिगीता छंद



षटकाय जीव न .विधि ..
भाव निवारतें हिंसा अ...
मृषा न जलतृन हू हे ।

शीलधर चिद्ब्रह्ममें नित रमि रहैं ॥ १ ॥ अंतर चतुर्दश
बाहिर संग दशधातैं टलैं। परमाद तजि चउकर मही
समिति ईर्यातैं चलैं ॥ जग सुहितकर सब अहितहर श्रु
सुखद सब संशय हरैं। भ्रमरोग-हर जिनके वचन मुखचं
अम्रत झरैं ॥ २ ॥ छ्यालीस दोष विना सुकुल श्रावकत
घर अशनको। लैं तप बढावन हेत नहिं तन पोषते तजि
रसनको ॥ शुचि ज्ञान संजम उपकरन लखिकैं गहैं लखिकैं
धरैं। निर्जंतु थान विलोक तन-मल मूत्र-श्लेषम परिहरैं ॥३॥
सम्यक प्रकार निरोधि मन-वच-काय आतम ध्यावते। तिन
सुथिरमुद्रा देखि मृगगन उपल खाज खुजावते ॥ रसरूप गंध
तथा फरस अरु शब्द शुभ असुहावने। तिनमें न राग विरोध
पंचेंद्रियजयन पद पावने ॥ ४ ॥ समता सम्हारैं थुति उचारैं
वंदना जिनदेवको। नित करैं श्रुतरति धरैं प्रतिक्रम तजैं तन
अहमेवको ॥ जिनके न न्हौन न दंतधोवन लेश अंबर आव-
रन। भूमाहिं पिछली रयनिमें कछु शयन एकासन करन ॥५॥
इक बार दिनमें लैं अहार खडे अलप निज पानमें। कचलोंच
करत न डरत परिषहसों लगे निज ध्यानमें। अरि मित्र
हल मसान कंचन काच निंदन थुतिकरन। अर्घावतारन
सिप्रहारन, में सदा समताधरन ॥ ६ ॥ तप तपैं द्वादश धरैं
दश रतनत्रय सेवैं सदा। मुनिसाथमें वा एक विचरैं चहैं
भवसुख कदा ॥ यों है सकल संजमचरित सुनिये स्वरू-
न अब। जिस होत प्रगटै आपनी निधि मिटै परकी
सब ॥ ७ ॥ जिन परम पैनी सुबुधि छैनी डारि अंतर

भेदिया। वरनादि अरु रागादितैं निज भावको न्यारा किया॥ निजमाहिं निजके हेतु निजकर आपको आपै गह्यो। गुन गुनी ज्ञाता ज्ञानज्ञेयमझार कछु भेद न रह्यो ॥ ८ ॥ जहँ ध्यान ध्याता ध्येयको न विकल्प वचभेद न जहां। चिद्भाव कर्म चिदेश करता चेतना किरिया तहां॥ तीनों अभिन्न अखिन्न शुध उपयोगकी निश्चल दशा। प्रगटी जहां दृग ज्ञान व्रत ये तीनधा एकै लशा ॥९॥ परमान नय निक्षेपको न उदोत अनुभवमें दिखै। दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा नहिं आनभाव जु मोविखै॥ मैं साध्य साधक मैं अबाधक कर्म अरु तसु फलनितैं। चितपिंड चंड अखंड सुगुन,-करंडच्युत पुनि कलनितैं ॥ १० ॥ यों चिंत्य निजमें थिर भये तिन अकथ जो आनँद लह्यो। सो इंद्र नाग नरेंद्र वा अहमिंद्रकै नाहीं कह्यो ॥ तब ही शुकलध्यानाग्निकर चउघाति विधिकानन दह्यो। सब लख्यो केवलज्ञानकरि भविलोकको शिवमग कह्यो ॥ ११ ॥ पुनि घाति शेष अघातिविधि छिनमाहिं अष्टमभू बसैं। वसु-कर्म विनशै सुगुन वसु सम्यक्त्व आदिक सब लसैं ॥ संसार खार अपार पारावार तिर तीरहिं गये। अविकार अकल अरूप शुध चिद्रूप अविनाशी भये॥ १२ ॥ निजमाहिं लोक अलोक गुन परजाय प्रतिबिंबित थये। रहि हैं अनंतानंत काल, यथा तथा शिव परनये॥ धनि धन्य हैं जे जीव नर भव पाय यह कारज किया। तिनही अनादी भ्रमन पंचप्रकार, तजि वर सुख लिया ॥ १३ ॥ मुख्योपचार दुभेद यों बडभागि रत्नत्रय धरैं। अरु धरेंगे ते शिव लहैं तिन सुजस

जल जगमल हरैं ॥ इमि जानि आलस हानि साहस, ठानि यह सिख आदरो । जबलों न रोग जरा गहै, तबलों जगत निज हित करो ॥ १४ ॥ यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये। चिर भजे विषय कषाय अबतौ, त्याग निज पद बेइये ॥ कहा रच्यो परपदमें, न तेरो पद यहै क्यों दुख सहै । अब 'दौल' होउ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूको यहै ॥ १५ ॥

दोहा—इक नव वसु इक वर्षकी, तीज शुकल वैसाख ।
करयो तत्त्व उपदेश यह, लखि बुधजनकी भाख ॥ १६ ॥
लघुधी तथा प्रमादतैं, शब्द अर्थकी भूल ।
सुधी सुधार पढो सदा, जो पावो भवकूल ॥ १७ ॥

इति दौलतरामकृत छहढाला समाप्त ॥

१६१ । समाधिमरण भाषा ।

पं० सूरचन्दजी रचित ।

नरेन्द्र छन्द ।

वंदों श्रीअरहंत परमगुरु, जो सबको सुखदाई ॥
इस जगमें दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई ॥
अब मैं अरज करूं प्रभु तुमसे, कर समाधि उरमांहीं ।
अंतसमयमें यह वर मांगूं, सो दीजै जगराई ॥ १ ॥ भव-भवमें तनधार नये मैं, भव भव शुभ संग पायो । भव भवमें नृपरिद्धि लई मैं, मात पिता सुत थायो ॥ भवभवमें तन पुरुषतनो धर, नारी हू तन लीनो । भवभवमें मैं भयो नपुंसक, आतमगुण नहिं चीनो ॥२॥ भवभवमें सुरपदवी पाई, ताके

तीर्थेश्वर स्वर्ग मुकतिमें जावो ॥ मृत्युकल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मझारे। ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे ॥ १६ ॥ इस तनमें क्या राचे जियरा दिन दिन जीरन हो है। तेज कांति वल नित्य घटत है या सम अथिर सु को है। पांचों इंद्री शिथिल भई अव, स्वास शुद्ध नहिं आवे। ता पर भी ममता नहिं छोडे, समता उर नहिं लावे। ॥ १७ ॥ मृत्युराज उपकारी जियको तनसे तोहि छुडावे। नातर या तन बंदीग्रहमें परचो परचो विललावे ॥ पुदगलके परमाणू मिलके पिंडरूप तन भासी। यही मूरत में अमूरती ज्ञानजोति गुणखासी ॥ १८ ॥ रोग शोक आदिक जो वेदन ते सव पुदगललारे। मैं तो चेतन व्याधि विना नित हैं सो भाव हमारे ॥ या तनसे इस छेत्र संवंधी कारण आन वन्यो है। खान पान दे याको पोष्यो अब सम भाव ठन्यो है ॥ १९ ॥ मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान विन यह तन अपनो जान्यो। इंद्रीभोग गिने सुख मैंने आपो नाहिं पिछान्यो तन विनशनतें नाश जानि निज यह अयान दुखदाई। कुटुम आदिको अपनो जान्यो भूल अनादी छाई ॥ २० ॥ अब निज भेद जथारथ समझ्यो मैं हूं ज्योतिस्वरूपी। उपजै विनसे सो यह पुदगल जान्यो याको रूपी ॥ इष्टऽनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सव पुदगल सागे। मैं जव अपनो रूप विचारों, तव वे सव दुख भागे ॥ २१ ॥ विन समता तनऽनन्त धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो। शास्त्र घात-तेऽनन्त वार मर नाना योनि भ्रमायो॥ वारअनंत हि अग्नि

माहिं जर, मूवो सुमति न लायो। सिंह व्याघ्र अहि ऽनन्त
वार मुझ, नाना दुःख दिखायो ॥ २२ ॥ विन समाधि ये दुःख
लहे में, अब उर समता आई। मृत्युराजको भय नहिं मानो
देवै तन सुखदाई ॥ यातें जब लग मृत्यु न आवे, तबलग
जपतपकीजे। जप तप विन इस जगके मांही, कोई भी ना
सीजे ॥ २३ ॥ स्वर्गसंपदा तपसे पावै, तपसे कर्म नसावे। तप
ही से शिवकामिनिपति है, यासों तप चित लावै ॥ अब मैं
जानी समता विन मुझ कोऊ नाहिं सहाई। मातपिता सुत
बांधव तिरिया, ये सब हैं दुखदाई ॥ २४ ॥ मृत्यु समयमें
मोह करें ये, तातैं आरत हो है। आरततैं गति नीची पावे
लख मोह तज्यो है ॥ और परिग्रह जेते जगमें, तिनसे
न कीजे। परभवमें ये संग न चालें, नाहक आरत कीजे
॥ जेजे वस्तु लसत है ते पर, तिनसे नेह निवारो।
तिमें ये साथ न चालें, ऐसो भाव विचारो ॥ जो परभवमें
हैं तुझ, तिनसे प्रीत सु कीजे। पंच पाप तज समता
दान चारविध दीजे ॥ २६ ॥ दशलक्षणमय धर्म धरो
करुणा उर लावो। षोडशकारण नित्य चिंतवो, द्वादश
वो ॥ चारों परवी प्रोषध कीजे, अशन रातको
समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो ॥
समयमें ये शुभ भावहि, होवैं आनि सहाई। स्वर्ग
हि दिखावै, रिद्धि देहिं अधिकाई ॥ खोटे भाव
त्यागो, उरमें समता लाके। जासेती गति चार
मोक्षपुर जाके ॥ २८ ॥ मन थिरता करके तुम

चिंतो चौ आराधन भाई। वे ही तोकों सुखकी दाता और हितू कोऊ नाहीं॥ आगें बहु मुनिराज भये हैं तिन गहि थिरता भारी। बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन आराधन उर धारी॥२९॥ तिनमें कछु इक नाम कहूं मैं सो सुन जिय चित लाके। भावसहित अनुमोदे तासे, दुर्गति होय न जाके॥ अरु समता निज उरमें आवे भाव अधीरज जावे। यो निसदिन जो उन मुनिवरको ध्यान हिये विच लावे॥३०॥ धन्य धन्य सुकुमाल महामुनि कैसे धीरज धारी। एक श्यालनी जुगबच्चाजुत पांव भख्यो दुखकारी॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी। तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥३१॥ धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी व्याघ्रीने तन खायो। तो भी श्रीमुनि नेक डिगे नहिं आतम सों हितलायो॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥३२॥ देखो गज मुनिके सिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी। शीस जले जिम लकड़ी तिनको, तो भी नाहिं चिगारी॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी। तो तुमरे जिय कौन दुःख है मृत्यु महोत्सव बारी॥३३॥ सनतकुमार मुनीके तनमें कुष्ट वेदना व्यापी। छिन्न भिन्न तन तासों ह्वो, तब चिंत्योगुण आपी॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चित धारी तो तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्युमहोत्सव बारी॥ ३४॥ श्रेणिकसुत गंगामें डूब्यो तब जिननाम चितार्यो। धर सलेखना परिग्रह छोड़्यो शुद्ध भाव उर धार्यो॥ यह उपसर्ग

ग्रारी ॥ ४१ ॥ विद्युतचरने बहु दुख पायो, तौ भी धीर त्यागी । शुभभावनसे प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी । तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ ४२ ॥ पुः चिलाती नामा मुनिको वैरीने तन घातो । मोटे मोटे कीः पड़े तन तापर निज गुण रातो ॥ यह उपसर्ग सह्यो धः थिरता आराधन चित धारी । तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ दंडक नामा मुनिकी देही बाणन कर अरि भेदी । तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि कर्म महारिपु छेदी ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ ४४ । अभिनंदन मुनि आदि पांचसौ घानी पेलि जु मारे । तौ भी श्रीमुनि समता धारी पूरव कर्म विचारे ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी । तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥४५॥ चाणक मुनि गौधरके माहीं मूंद अगिनि परजाल्यो । श्रीगुरु उर समभाव धारके अपनो रूप सम्हाल्यो ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी । तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ ४६ ॥ सात शतक मुनिवरने पायो हथनापुरमें जानो । बलि-ब्राह्मणकृत घोर उपद्रव सो मुनिवर नहिं मानो ॥ यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता आराधन चित धारी । तौ तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ ४७ ॥ लोहमयी आभूषण गढ़के ताते कर पहराये । पांचों पांडव मुनिके तनमें तौ भी

नाहिं विगाये ॥ यह उपसर्ग सह्यो घर थिरता आराधन चित धारी। तो तुमरे जिय कौन दुःख है ? मृत्युमहोत्सव वारी ॥ ४८ ॥ और अनेक भये इस जगमें समता रसके स्वादी। वे ही हमको हो सुखदाता हर हैं टेव प्रमादी ॥ सम्यक्दर्शन ज्ञान चरन तप ये आराधना चारों। ये ही मोकों सुखकी दाता इन्हें सदा उर धारों ॥४९॥ यों समाधि उरमाहीं लावो अपनो हित जो चाहो। तज ममता अरु आठों मदको जोतिस्वरूपी ध्यावो ॥ जो कोई नित्त करत पयानो ग्रामांतरके काजै। सो भी शकुन विचारैं नीके शुभके कारण साजै ॥ ५० ॥ मात-पितादिक सर्व कुटुम सो नीके शकुन वनावैं। हलदी धनिया पुंगी अक्षत दूव दही फल लावैं ॥ एक ग्रामके कारण एते करैं शुभाशुभ सारे। जब परगतिको करत पयानो तब नहिं सोचैं प्यारे ॥ ५१ ॥ सर्व कुटुम जब रोवन लागैं तोहि रुलावैं सारे। ये अपशकुन करैं सुन तोकों तू यों क्यों न विचारे ॥ अब परगतिको चालत विरियां धर्मध्यान उर आनो। चारों आराधन आराधो मोहतनो दुख हानो ॥ ५२ ॥ ह्वै निःशल्य तजो सब दुविधा आतमराम सुध्यावो। जब परगतिको करहु पयानो परम तत्त्व उर लावो ॥ मोह जालको काट पियारे अपनो रूप विचारो। मृत्यु मित्र उपकारी तेरी यों उर निश्चय धारो।५३।

दोहा—मृत्युमहोत्सव पाठको, पढो सुनो बुधिवान।
सरधा धर नित सुख लहो, सूरचंद शिवथान ॥ ५४ ॥
पंच उभय नव एक नभ, सवतैं सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय ॥ ५५ ॥

इति समाधिमरण समाप्त।

१६२। बारहमासा नेमिराजुलका प्रश्नोत्तर।

विनवे उग्रसेनकी लाडलडी करजोर नेमिजीके आगे खरी। तुम काहे पिया गिरनार चढे हमसेती कहो कहा चूक परी॥ यह समय नहीं पिय संजमको तुम काहेको ऐसी चित्त धरी। कैसें बारहमास वितावोगे तुम समझावो मोहिको सगरी॥ १॥

तुम आगें अषाढमें क्यों न लिया व्रत काहेको एती बरात बुलाई। अरु छप्पन कोड जुडे यदुवंशी व्याहन आये निशान बजाई॥ संग समुद्रविजय बलभद्र मुरारिहुकी तुम्हें लाज न आई। नेमि पिया उठि आवो घरें इन बातनमें कहो कौन बडाई॥ २॥ बडाई कहा करिये सुनि राजुल जीवन है निशको सुपनो। सुत बंधु बधू सब जात चले जलबूंद जैसे तन है अपनो॥ दिन चारकके महमान सबै थिरता न कछू सब है स्वपनो। तिहँतें इह जान अनित्य सबै हमरे अब सिद्धनको जपनो॥ ३॥

पिया सावनमें व्रत लीजे नहीं घनघोर घटा जुर आवेंगी। चहुं ओरतें मोर जु शोर करें वन कोकिल कुहक सुनावेंगी॥ पिय रैन अंधेरीमें सूझे नहीं कछु दामन दमक डरावेंगी। पुरवाईकी झोंक सहोगे नहीं छिनमें तपतेज छुडावेंगी॥ ४॥ या जियको कोइ न राखनहार कहो किसकी शरणागत जैये कालबली सबसे जगमें तिससे निशवासर देख डरैये॥ इंद्र नरेंद्र धनेंद्र सबै जम आन परे तब बांध चलैये। यातें कहा डर सावनको सुन राजुल चित्तको यों समझैये॥ ५॥

पिय भादवकी वरषा वरसै कैसें दिन रैन गमावोगे।
चहुं ओरतें पौन झकोर करै तब क्यों कर बूंद बचाओगे ॥
घर ही क्यों न आयकै योग करो वनमें बहु दुःख उठावोगे।
कहै राजमती पिय मान कही शिवसुंदर यों नहिं पावोगे॥६॥
या जगमें सुख नेकु न राजुल दुःखमें काल अनंत गँवायो।
योनिहिं लाख चुरासी फिर्यो गत चारूंही जाय महादुख पायो ॥ रोग ही शोक वियोग भरे फिर जामन मरण अनेक सतायो। भादवकी वरषा किस गिनतीमें नरक निगोदनमें फिर आयो ॥ ७ ॥

पिय लागैगो मास असोज जबै तव शीतल बूंद सुहावैंगी। कितहूं गरजै कितहूं वरषै कितहूं दुतिचंद दिखावैंगी ॥
छिन वायु वहै छिन ग्रीषमता छिनमें ऋतु तीन जनावैंगी।
कहै राजमती पिय मान कह्यो छिन ही छिन चित्त डुलावैंगी ॥ ८ ॥ कैसें कर चित्त डुलै सुन राजुल एकतें एक समाधि लगावैं। एक फिरै तिहुंलोकमें हिंडत एक विना फिर एक न पावै ॥ जाय जहां तहां है इकलो इकलो विडवै इकलोई गंवावै। आवत जात अकेलो रहै यह आदि अनादि अकेलो ही धावै ॥ ९ ॥

पिय कातिकमैं मन कैसें रहे जब भामिनि भौन सजावैंगी। रचि चित्र विचित्र सुरंग सबै घर ही घर मंगल गावैंगी ॥
पिय नूतन नार सिंगार किये अपनो पिय टेर बुलावैंगी।
पिय वारहिवार बरै दियरा जियरा तुमरा तरसावैंगी ॥१०॥

तो जियरा तरसै सुन राजुल जो तनको अपनो कर

जानें। पुदगल भिन्न है भिन्न सवे तन छांडि मनोरथ आन समानें ॥ बूड़ेगो सोई कलिधारमें जड चेतनको जो एक प्रमानें। हंस पिवे पय भिन्न करे जल सो परमातम आतम जानें॥ ११ ॥

हिमकी ऋतु आवेगी नाथ जवे तव शीतल पौन सुहावेगी। सव शीतल नीर समीर लगे तनअंवरप्रीत जनावेगी॥ सव भोजन पान सुहान लगे सगरी तनताप वुझावेगी॥ कहे राजमती अगहनमें जवे ऋतु नायक लायक आवेगी ॥१२॥ यह देह अपावन खेह भरी सुन राजुल यामें कहा थिर है। यह चामकी चादर ओट दिये इसमें क्रमिकीटनको घर है॥ यह मूतन पीव पुरीष भरी यह हाड़रु पिंजरको घर है। तिहि तें इसको हम नेह तज्यो हमको अव शीतको का डर है ॥१३॥

पिय पोषमें जाड़ो परेगो घनो विन सौड़के शीत कैसे भरहो। कहा ओढ़ोगे शीत लगे जव ही किधों पातनकी धुवनी धर हो॥ तुमरो प्रभुजी तन कोमल है कैसें कामकी फौजनसों लरहो। जव आवेगी शीत तरंग सवे तव देखत ही तिनकों डरहो॥ १४ ॥

आस्रव होय जहांपर शोभित शीत लगे अरु पौन झकोरे। इंद्रिय पांच पसार जहां तहां रागद्वेषतें नातो ही जोरे॥ आठ महामद मातें रहे परद्रव्यको देख जहां चित दौरे। जो पर-आप विचार न राजुल तो गृह आपतें आपही वोरे॥ १५ ॥

पिय माघ तुषार परेगो घनो तव पायरतें परिहो गिरकें। यह मानुष देह कहा वपुरी विन अंवर शीत नहीं ठरके॥

किन पावक होय सहाय जहां नहिं शीत तुषार नहीं हरकै ॥
कहै राजमती उठ मानु कह्यो जु समैसिर योग लियो फिरकै ॥
संवर अंवरमें रह राजुल शीत तुषार अनंत वचाऊं। राग
रु द्वेषवयार वहै तव छांय छिमा तन छानि छवाऊं। इंद्रिय
पांच निरोध किये करुणा करके मद आठ गवांऊं। आप लखों
परद्रव्य तजों समता गहिके मनको समझाऊं ॥ १७ ॥
पिय लागैगो फागुन मास जवै तव गावेंगी चहुंओरतें होरी।
केसरकी पिचकारी लिये कर फेंकैं गुलालनकी भर झोरी ॥
गावत गीत धमार वजावत ताल मृदंग लिये डफ गोरी।
तव भूलोगे पिया वात सवै जव खेलन आवेंगी सव ओरी ॥
हम होरी खेलें सुन राजुल यों अपने घर ऐसे खेल मचाऊं।
पांच सखी अपने संग लेकर द्वादश भांतिके नाच नचाऊं ॥
पांच सखी अपने संग लेकर निर्जरासे सव कर्म जराऊं। खेल
रचूं शिवसुंदरसों तव आठहि कर्मकी धूर उडाऊं ॥ १९ ॥
पिय लागैगो चैत वसंत सुहावनो फूलैगी वेल सवै वनमाई।
फूलैगी कामिनी जाको पिया घर फूलैगी फूल सवै वनराई ॥
खेलहिंगे व्रजके वनमें सव वाल गुपाल रु कुँवर कन्हाई। नेमि
पिया उठ आवो घरे तुम काहेको करहो लोग हँसाई ॥ २० ॥
तीनहु लोकको जान सवै पुरुषाकर चौदह राजु ऊँचाई।
ताके कहूं घनाकार सवै तीन सौ तेतालीस है चौराई ॥ वांत
वलैनसौं वेढि रह्यो हरता करता न कोई ठहराई। यह आदि
अनादिनैं आयो चल्यो सुन राजुल यामैं कहा है हँमाई ॥२१॥
पिय मास वैशाखकी ग्रीषमना ऋतु शीतल नीरकी प्यास

लगैगी। क्यों गिरिपै रहो नाथ मेरे अति घाम परे सब देह दगैगी। ऐसे कठोर भये कबतें ममता तजके सब प्रीति पगै गी। नेमि पिया उठ आवो घरे सुन एकहि वार न सिद्धि जगैगी॥ २२॥

धर्मतें सिद्धि नजीक है राजुल धर्म कियेतें कहा नहिं आवे। धर्मतें इंद्र नरेंद्र धनेंद्र सुरेंद्रनका सब ही पद पावे॥ धर्म सुदर्शन ज्ञान चरित्र करै तिहितें शिवमारग पावे। धर्म महत्त बडो जगमें जहां जीवदया तहां धर्म कहावे॥ २३॥

धर्मकी वात तो सांची है नाथ पै जेठमें कैसें धर्म रहेगो। लूह चलै सरवान कमान ज्यों घाम परे गिरमेरु वहेगो॥ पक्षी पतंग सबै डर है अपने घरको सब कोई चहेगो। भूखतृषा अति देह दहे तब ऐसो महाव्रत क्यों न वहेगो॥ २४॥

दुर्लभ है नरको भव राजुल दुर्लभ श्रावक योनि हमारी। दुर्लभ धर्म जु है दश लच्छन दुर्लभ षोडशभावना भारी॥ दुर्लभ श्रीजिनराजको मारग दुर्लभ है शिव सुंदर नारी। यह सब दुर्लभ जान तबै जब दुर्लभ है सन्यासकी त्यारी॥ २५॥

बारह मास जे पूरे भये तब नेमिहि राजुल जाय सुनाये। नेमहिं द्वादस भांति तबै उठ पीछेसों राजुलको समझाये॥ राजुलने तब संयम ले सब निर्जराकर वसु कर्म जराये। राजुलके पति नेमि जिनेश्वर उत्तर लालविनोदीने गाये॥ २६॥	इति।

१६३। बारहमासा सीतासतीका।

यति नैनसुखदासकृत।

रागनी हिंदोला चाल श्रावणकी मल्हार तथा निहाल्दे।

विन कारण स्वामी क्यों तजी विनवै जनकदुलारि। विन कारण स्वामी क्यों तजी॥ टेक॥

१ आषाढ़ मास।

साढ घुमडि आये वादरा, घन गरजै चहुंओर। निर्जन वनमें स्वामी तुम तजी, वैठनकूं नहिं ठौर॥ विनकारण स्वामी क्यों तजी, विनवै जनकदुलारि विन० ॥ १॥ क्या मैं सतगुरु निंदियो, क्या दियो सतियन दोष। क्या हम सत संजम तज्यो, किस कारण भये रोस॥ विनकारण० ॥२॥ क्या पर पुरुष निहारिकै, परभव कियो निदान। क्या इसभव इच्छा करी, क्या मैं कियो अभिमान॥ विनकारण० ॥ ३॥ कटुक वचन स्वामी नहिं कहे, हिंसा करम न कीन। परधनपर चित नहिं दियो, क्यों मन भयो है मलीन॥ विनकारण० ॥ ४॥

२ श्रावणमास।

श्रावण तुमसँग वनविषै, विपति सही भगवान। पावपयादी वन वन मैं फिरी, तनक न राखी आन॥ विनकारण स्वामी क्यों तजी॥ १॥ स्वसुर दिसौटा जिसदिन तुम दियो, कियो भरत सरदार। तादिन विकलप नहि कियो, तज संपति भइ लार॥ विनकारण० ॥ २॥ जनक पिताकी मैं हूं लाडली, मात विदेहाकीबाल। भ्रात प्रभामंडलसे वली, विपत भरूं वेहाल॥ विनकारण० ॥ ३॥ मातमंदोदरी गर्भसैं,

भन करैं, कांटे चुभैं जी कराल ॥ विनकारण० ॥ ३ ॥ कित बैठूं लेटूं कित प्रभू, पास खवास न कोय। अन्नकरूं ना पानी मैं पिऊं, बालककूं दूख होय ॥ विनकारण० ॥ ४ ॥ तुम सब जानत मेरे हालकूं, अष्टमवलि अवतार । तुम सूरज मैं पटवीजनी, क्या समझाऊं भरतार ॥ विनकारण० ॥ ५ ॥ समरथ है प्रभु क्यों कसी, प्रगट कियो क्यों ना दोष । धोका दे क्यों धक्का दियो, आवै नहिं संतोष ॥ विनकारण० ॥ ६ ॥

६ । फागुनमास ।

फागुन आई जी अठाइयां, अपने करम दे दोष । ध्यान धर्यो भगवानको, बैठ रही मनमोस ॥ विनकारण० ॥ १ ॥ अरज करौं प्रभु दरबारमें, ममता भाव निवार । तुमही पिता प्रभु तुम मात हो, तुमही भ्रात हमार ॥ विनकारण० ॥ २ ॥ निर्धनके प्रभु तुम धनी, निर्जनके परिवार । इकवर राम मिलायके, दीजियो दोष उतार ॥ विनकारण० ॥ ३ ॥ तुम हो प्रभु राजा धरमके, परजा लगायो हमैं दोष । शीलमें मेरे सब संशय करैं, राम रुसाए हुए रोस ॥ विनकारण० ।

त्याग दिये हम रामजी, त्यागि दियो संसार ' ग

संजोगसे, इससे हुई हूं लाचार ॥

दिन प्रभु पक्षापाक हो, मिलै मो

धारूं धरमको, त्यागूं सब संसार ॥

मनावैं तौ भी ना मनूं, करि जाऊं

रघुवीरके, चोटी धरूंगी उपार ॥

यों सीता बैठी ध्यावै पद

दर गयो गढलंकमें, भेजी तुम सुंदरी भगवान। विनका० ॥१॥ तुमविन वैठी रोऊं बागमें, रामही राम पुकार। अन्न कियो ना पानी में पियो, परवश पडीथी लाचार ॥ विनकारण० ॥ २ ॥ मुख धुलवायो हनुमानने, तुम आज्ञा परवान। प्राण बचाये मेरे विपतिमें, करवायो जलपान ॥ विनकारण० ॥ ३ ॥ तुर तही भेज्यो तुमरे चरणमें, चूडामणि दियो तारि। गाय फसी है गाडी गारमें, खैंच निकारोजी भरतार ॥ विनकारण० ॥४॥

७ पौष मास।

पोष चढे जो गढ लंकपै, युद्ध कियो भगवान। गारत किये लाखों सूरमा, मार कियो घमसान ॥ विनकारण० ॥ १ ॥ काटा सिर लंकेशका, लक्ष्मीधर वर वीर। कूद पडे जी जोवा लंकमें, लवण समुंदर नीर ॥ विनकारण० ॥ २ ॥ ल्या- ये तुरत छुडायके, अशरण शरण अधार। इतनी कर ऐसी क्यों करी, घरमें दई क्यूं निकार ॥ विनकारण० ॥ ३ ॥ पग मारीजी गिरिगिर में पडूं, शरण सहाय न कोय। अपनी कही ना मेरी तुम सुनी, बहुत अंदेशा है मोहि ॥ विनका- रण० ॥ ४ ॥

८। माघमास।

माघ प्रभुजी पाला पड रहा, पडनेहूं नहीं सेज। ओढ नहूं नहीं कांबली, दई क्यूं विपतिमें भेज ॥ विनकारण० ॥१॥ सिंह घडूकें कूकें भेडिए, मारे गज चिंघाड। घर घर कंपै यागे कामिनी, स्यालिनी रही है दहाड ॥ विनकारण० ॥२॥ नाचें भूत पिशाचगन, रुंड मुंड विकराल। मनन मनन मारा

न करें, कांटे चुभें जी कराल॥ विनकारण०॥ ३॥ कित
ठूं लेटूं कित प्रभू, पास खवास न कोय। अन्नकरूं ना
ानी में पिऊं. वालकक्ूं दूख होय ॥ विनकारण० ॥ ४॥
तुम सव जानत मेरे हालकूं, अष्टमवलि अवतार। तुम सूरज
ं पटवीजनी, क्या समझाऊं भरतार॥ विनकारण० ॥ ५॥
मरथ है प्रभु क्यों कसी, प्रगट कियो क्यों ना दोप। धोका
दे क्यों धक्का दियो, आवे नहिं संतोप॥ विनकारण०॥ ६॥

६। फागुनमास।

फागुन आई जी अठाइयां, अपने करम दे दोप। ध्यान धर्‍यो भगवानको, वैठ रही मनमोस॥ विनकारण०॥ १॥ अरज करों प्रभु दरवारमें, ममता भाव निवार। तुमही पिता प्रभु तुम मात हो, तुमही भ्रात हमार ॥ विनकारण०॥ २॥ निर्धनके प्रभु तुम धनी, निर्जनके परिवार। इकवर राम मिलायके, दीजियो दोप उतार॥ विनकारण०॥ ३॥ तुम हो प्रभु राजा धरमके, परजा लगायो हमें दोप। शीलमें मेरे सव संशय करें, राम रुसाए हुए रोस॥ विनकारण०॥ ४॥ त्याग दिये हम रामजी, त्यागि दियो संसार। गर्भवती हूं संजोगसे, इससे हुई हूं लाचार ॥ विनकारण०॥ ५॥ जिस दिन प्रभु पलापाक हो, मिले मोहि भरतार। भरम मिटाके धारूं धरमको, त्यागूं सव संसार॥ विनकारण०॥ ६॥ राम मनावें तो भी ना मनूं, करि जाऊं वनकूं विहार। करूं श्री रघुवीरके. चोटी धरूंगी उपार॥ विनकारण०॥ ७॥ भावे यों सीता वैठी भावना. ध्यावे पद नवकार। पाप घट्यो भग-

अपने शीलकी, होवे मेरी पटनार ॥विनकारण०॥३॥ सीता सती प्रण धारियो, होवे कुंड तयार। अगन जलाओ देरी मत करो, सो जोजन विसतार ॥ विनकारण० ॥४॥ साड़ी कसि त्यारी करी, अंग ढक्यो वड़भाग। कुंड खुदायो मनभावतो, चेतन कर दई आग ॥ विनकारण० ॥ ५ ॥ जाय चढी ऊंचे दमदमे, देखें सब संसार। सत मूरत सूरत सोहनी, मनमें हर्ष अपार ॥ विनकारण० ॥ ६ ॥ देखें सुरगण देवता, देखें भवनपतीस। चंद्र सूरज देखें ज्योतिषी, देखें भूत पतीस ॥ विनकारण० ॥ ७ ॥ देखें सब विद्याधरा, देखें गण गंधर्व। कमर कसी फौजें आ पड़ी, देखें राजा सर्व ॥ विनकारण० ॥ ८ ॥ अगनि लपट ऊठी गगनलों, तड़तड़ाट भयो घोर। कहत प्रजा श्रीरामसों, क्यों प्रभु भए हो कठोर ॥ विनकारण० ॥ ९ ॥ बच बचे ना ऐसी अगनिमें, फाटे धरणि पताल। पर्वत फटि मठ गिर पड़ें, हे प्रभु कीजिये टाल ॥ विनकारण० ॥ १० ॥ राम खडग सूत्यो हाथमें, मत कोइ कहो जी बनाय। आज्ञा माने मेरी जानकी, देवे भरम मिटाय ॥ विनकारण० ॥११॥ हुकम दियो रघुवीरने, शीलपरीक्षा देह। नातर क्यों आई तू यहां, परजा करे है संदेह ॥ विनकारण० ॥ १२ ॥ पंच परमगुरु वंदिके, करि पतिकूं परणाम। छिमा कराई सब जीवसों, देखें लछमन राम ॥ विनकारण० ॥१३॥ पुत्र जुगल छोड़े रोवते, सोहैं चंदसमान। हरष भरी सतवंती सदा, बोली वचन महान ॥ विनकारण० ॥ १४ ॥ जो परपुरुष निहारिके, मैं कछु कियो है कुभाव। भस्म अगनि माहि कीजियो, नातर जल हो जाव ॥ विनकारण स्वामी० ॥१५॥

१२। जेठ मास।

जेठ तपै सूरज आकरो, नीचे अगनि प्रचंड। आसपास जल थल सवी, सूकि गए वनखंड॥ विनकारण०॥ १॥ कूदपड़ी जलती अगनिमें, शांति भई ततकार। उभरे कँवल अकाश लों, लीनी अधर सहार॥ विनकारण०॥ २॥ जल लहरावै वोलैं हँसनी, कर रहो मीन कलोल। छत्र फिरैंजी उसके सीस पै, इंद्र चँवर रहे ढोल॥ विनकारण०॥३॥ शीतल मंद सुगंध जुत, मीठी मीठी चलत वयार। वरपैं मनु अमृत कणी, देव करैं जै जैकार॥ विनकारण०॥ ४॥ धन्य सती धन सतवंतिनी, धन धन धीरज येह। धिग धिग हम उनकूं करैं, जिनके मनसंदेह॥ विनकारण०॥ ५॥

वारह भावना सीताजीकी।

सीता भावै मनमें भावना, यह संसार अनित्य। धर्म विना तीनों लोकमें, शरण सहाई ना मित्त॥ विनकारण०॥ ६॥ उलट पुलट चालै रहटसा, ये संसारी चक्र। एक अकेलो भटकै आतमा, क्या पशु पंछी क्या शक्र॥ विनकारण०॥ ॥ ७॥ ना कोई जगमें आपना, औ न हम काहूके मीत। अशुचि अपावन तनविपै, करम करै विपरीत॥ विनकारण०॥ ८॥ संवर जल विन ना वुझै, तृष्णा अगनि प्रचंड। कर्म खिपाये विन ना खपै, भटकैं सव ब्रह्मंड॥ विनकारण०॥ ९॥ दुर्लभवोधि जगतमें, दुर्लभ श्रीजिन धर्म। दुर्लभ स्वपथ विचार है, कर्मन डारयो भर्म॥ विनकारण०॥ १०॥ परवस भोगी भारी वेदना, स्ववश

सही नहिं रंच। सास्वत सुख जासों पावती, लई करमने खेंच विनकारण० ॥ ११ ॥ अब मैं सब वेदन सही, कीनी धरम सहाय। परतिज्ञा पूरी करूं, मोह महा दुखदाय ॥ विनकारण० ॥ १२ ॥ राम कहे प्यारी चल घराँ, त्या भुजमें भुज डार पाडि शिखा करपे धरि दई, त्याग्यो हम संसार ॥ विनकारण० ॥ १३ ॥ तुम त्यागी निर दोष कूं, हम त्यागे लख दोष। करि के छिमा में संजम लियो, करियो मत अफसोस ॥ विनकारण० ॥१४॥ गई सतीजी वन खंडकूं, भई अरजिका धीर। छम उग्र तप वह करे, सब दुख सहे है शरीर ॥ विनकारण० पूरी करि परजायकूं, अच्युत सुरगमझार। इंद्र भईजी पुण्य संजोगमां, भोगे सुक्ख अपार ॥ विनकारण० ॥ १६ ॥ इति

१६४ चोवीस दंडक।

दोहा—वंदौं वीर सुधीरको, महावीर गंभीर।
वर्द्धमान सन्मति महा, देवदेव अतिवीर ॥ १ ॥
गत्यागत्य प्रकाश जो, गत्यागत्य विहीन।
अद्भुत अतिगत सुगति जो, जैनेश्वर जगदीश ॥२॥
जाकी भक्ति बिना विफल, गये अनंते काल।
अगिनत गत्यागति धरी, घटयो न जगजंजाल ॥३॥
चौबीसों दंडक विषै, धरी अनंती देह।
लह्यो न निजपद ज्ञानबिन, शुद्ध स्वरूप विदेह ॥४॥
जिनवाणीपरसादतैं, लहिये आतमज्ञान।
लहिये गत्यागत्य सब, गहिये पद निर्वान ॥ ५ ॥
चौबीसों दंडक तनी, गत्यागति सुनि लेहु।
सुनकर [illegible] चहुंगति [illegible] देहु ॥ ६ ॥

चौपाई ।

पहिलो दंडक नारिके तनो । भवनपती दसें दंडक भनो ॥ ज्योतिसंव्यंतरस्वर्गनिवास । थावर पंचें महादुखरास ॥ ७ ॥ विकलत्रयं अरु नरं तिर्यंच । पंचेंद्री धारक परपंच ॥ यह चौवीस दंडके कहे । अब सुन इनमें भेद जु लहे ॥ ८ ॥ नारककी गति आगति दोय । नर तिर्यंच पंचेंद्री जोय ॥ जाय असेनी पहला लगें । मनविन हिंसाकर्म न पगें ॥ ९ ॥ सरीसर्प दूजे लों जाय । अरु पक्षी तीजे लों थाय ॥ सर्प जांय चौथे लों सही । नाहर पंचम आगें नही ॥ १० ॥ नारी छठे लगही जाय । नर अरु मच्छ सातवें थाय ॥ एतौ नारक आगति कही । अब सुन नारककी गति सही ॥ ११ ॥ नरक सातवेंको जो जीव । पशुगति ही पावे दुखदीव ॥ अरु सब नारक मर नर पशू । दोउं गति आवे परवशू ॥ १२ ॥ छट्टेको निकस्यो जु कदाप । सम्यक सह श्रावग निष्पाप ॥ पंचम निकस्यो मुनि हू होय । चौथेको केवलि हू कोय ॥ १३ ॥ तृतिय नर्कको निकस्यो जीव । तीर्थंकर भी हो जगपीव ॥ यह नारककी गत्यागती । भाषी जिनवाणीमें सती ॥ १४ ॥ तेरह दंडक देव निकाय । तिनको भेद सुनो मनलाय ॥ नर तिर्यंच पंचेंद्री विना । औरनको नहिं सुरपद गिना ॥ १५ ॥ देव मरे गति पांच लहाहिं । भू जल तरुवर नर तिरमांहि ॥ दूजे सुरग उपरले देव । थावर है न कह्यो जिनदेव ॥ १६ ॥ सहस्रारतें ऊंचे स्वर्ग । मरकर होवें निश्चय नरा ॥ भोगभूमिके तिर्यंच नरा । दूजे देवलोकतें परां ॥ १७ ॥ जाय न

यह निश्चय कही। देवन भोगभूमि नहि गही॥ कर्मभूमियं नर अरु ढोर। इन विन भोगभूमिकी ठौर ॥१८॥ जाइ न तातैं आगति दोइ॥ गति इनकी देवनकी होइ॥ कर्म भूमिया तिर्यग बुद्ध। श्रावकव्रत धर बारम शुद्ध ॥ १९॥ सहस्रार ऊपर तिर्यंच। जाय नहीं तज है परपंच। अव्रत सम्यक दृष्टी नरा॥ बारमतें ऊपर नहिं धरा॥ २०॥ अन्यमती पंचागिनि साध। भवनत्रिकतें जाइ न बाद॥ परिव्राजक त्रिदंडी देह। पंचम परे न उपजे जेह॥ २१॥ परमहंस नामें परमती॥ सहस्रार ऊपर नहिं गती। मोक्ष न पावे परमत मांहि। जैन विना नहिं कर्म नसाहिं ॥ २२॥ श्रावक आर्ये अणुव्रत धार। बहुरि श्राविकागण अविकार॥ सोलह स्वर्ग परें नहिं जाय। ऐसो भेद कहैं जिनराय॥ २३॥ द्रव्यलिंगधारी जे जती। नवग्रीवक ऊपर नहिं गती। नवहि अनुतर पंचोत्तरा॥ महामुनी विन और न धरा॥२४॥ केई बार जीव सुर भया। पण केइक पद नाहीं गया। इंद्र भयो न शची हू भयो। लोकपाल कबहूं नहिं थयो॥ २५॥ लौकांतिक हूवो न कदापि। नहीं अनुतर पहुंच्यो आप। ए पद धर बहु भव नहि धरे। अलपकालमें मुकतिहि वरैं॥ २६॥ है विमान सरवारथ सिद्ध। सबतें ऊंचो अतुल सुरिद्ध॥ ताके सिरपर है शिवलोक। परें अनंतानंत अलोक॥ २७॥ गत्यागत्य देवगति भनी। अब सुन भ्रात मनुषगति तनी। चौवीसों दंडक के मांहि। मनुष जांहि यामें शक नाहि ॥२८॥ मोक्ष हू पावे मनुष मुनीश। सकल धराको जो अवनीश॥ मुनि विन

मोक्ष नहीं कोऊ वरै। मनुप विना नहिं मुनि ह्वे तरै॥ २९॥
सम्यक दृष्टी जे मुनिराय। भवजल उतरें शिवपुर जाय।
तहां जाय अविनाशी होय॥ फिर पीछे आवे नहिं कोय॥
॥ ३०॥ रहे शाश्वते शिवपुरमांहिं। आतमराम भयो सक
नांहिं। गति पचीस कहीं नरतनी। आगति फुनि बाईसहि
भनी॥ ३१॥ तेजकाय अरु वाय जु काय। इन विन और
सवे नर थाय। गति पचीस आगति वाईस॥ मनुपतनी जो
भाखी ईस॥ ३२॥ ताहि सुरासुर आतमरूप। ध्यावे चिदा-
नंद चिद्रूप॥ तौ उतरो भवसागर जिया। और न शिवपुर
मारग लिया॥ ३३॥ यह सामान्य मनुष्यकी कही। अत्र सुन
पदवीधरकी सही॥ तीर्थंकरकी दो आगती। स्वर्ग नरकतैं
आवे सती॥ ३४॥ फेरि न गति धारैं जगदीस। जाय वि-
राजैं जगके सीस॥ चक्री अर्धचक्रि अरु हली। सुरगलोक
तैं आवैं वली॥ ३५॥ इनकी आगति एक हि जान। गति
की रीति कहूं जु वखानि। चक्रीकी गति तीन जु होय।
सुरग नरक अरु शिवपुर जोय॥ ३६॥ तप धारै तौ शिवपुर
जांय। मरैं राजमैं नरकहि ठांयें॥ आखरिमैं ह्वे पद निर्वांन।
पदवी धारक वडे प्रधान॥ ३७॥ वलभद्रनकी दोय हि गती
सुरग जांहि कै ह्वे शिवपती॥ तप धारैं ये निश्चय भया। मुक्ति
पात्र ये श्रुतमें लह्या॥ ३८॥ अर्द्धचक्रि को एकहि भेद।
नारक होय लहे अनि खेद। राजमांहिं ये निश्चय मरैं। तद
भव मुक्तिपंथ नहिं धरैं॥ ३९॥ आखिर पावै जिनवरलोक।
पुरुप शलाका शिवके थोक॥ ये पद कवहुं न पाये जीव॥ ये

पद पाय होय शिवपीव ॥४० और हु पद कइयक नहिं गहे। कुलकर नारदपद हु न लहे॥ रुद्र भए न मदन ना भए। जिन वर मातपिता नहि थये ॥४१॥ ये पद पाय जीव नहिं रुलै। थोडेहि दिनमें जिन सम तुलै ॥ इनकी आगति श्रुतमें जानि गतिको भेद कहूं जो वखानि ॥ ४२ ॥ कुलकर देवलोक ही गहै। मदन सुरग शिवपुरको लहैं । नारद रुद्र अधोगति जाय। लहैं कलेश महादुख पाय ॥ ४३ ॥ जन्मांतर पावें निरवान। वडे पुरुष जे सूत्र प्रमान ॥ तीर्थंकरके पिता प्रसिद्ध स्वर्ग जांयके हो हैं सिद्ध ॥ ४४ ॥ माता स्वर्गलोक ही जाय आखिर शिवपुरलोक लहाय। ये सब रीति मनुपकी कही। अव सुन तिरयंचन गति सही ॥ ४५ ॥ पंचेंद्री पशु मरण कराय। चौवीसौं दंडकमे जाय॥ चौवीसौं दंडकतैं मरै। पशु होय तौ नाह न करै ॥ ४६ ॥ गति आगती कही चौवीस। पंचेंद्री पशुकी जिन ईस। तौ परमेश्वरको पथ गहो॥ चौविस दंडक नाहीं लहो ॥ ४७॥ विकलत्रयकी दश ही गती। दश आगती कहीं जगपती ॥ पांचों थावर विकल जु तीन। नर तिर्यंच पंचेंद्री लीन ॥ ४८ ॥ इनहीं दशमें उपजें जाय। पृथिवी पानी तरवर काय॥ इनहींतें विकलत्रय आय। इन ही दसमें जन्म कराय ॥ ४९ ॥ नारक विन सब दंडक जोय पृथ्वी पानी तरुवर सोय। तेज वायु मरि नवमें जाय। मनुप होय नहिं स[illegible] [illegible] विकलत्रय ठौर। ये नवगति [illegible] वाय। होय सही गावै। [illegible] । इनकूं त्याग

परम पद लहे ॥ इनमें रुलै सु जगको जीव । इनतें रहित सु त्रिभुवनपीव ॥५२॥ जीवईसमें और न भेद । ए करमी वे कर्म उछेद ॥ कर्म बंध जोलों जगजीव । नाशे कर्म होय शिव पीव ॥

दोहा–मिथ्या अव्रत योग अर, मद परमाद कषाय ।
इंद्रियविषय जु त्याग ये, भ्रमन दूरि ह्वै जाय ॥
जिन विनगति भवतें धरी, भयी नहीं सुरझार ।
जिन मारग उर धारिये, हो हैं भवदधि पार ॥ ५५ ॥
जिन भज सब परपंच तज, बडी बात है येह ।
पंच महाव्रत धारिकै, भवजलकों जल देह ॥ ५६ ॥
अंतर करण जु सुद्ध ह्वै, जिनधर्मी अभिराम ।
भाषा कारण कर सकूं, भाषी दौलतराम ॥ ५७ ॥ इति

१६५ । श्रीचौवीसतीर्थंकरोंके चिह्न ।

वृषभनाथका 'वृषभ' जु जान । अजितनाथके 'हाथी' मान ॥
संभवजिनके 'घोडा' कहा । अभिनंदनपद 'बंदर' लहा ॥ १ ॥
सुमतिनाथके 'चकवा' होय । पद्मप्रभके 'कमल' जु जोय ॥
जिनसुपासके 'सथिया' कहा । चंद्रप्रभपद 'चंद्र' जु लहा ॥२॥
पुष्पदंतपद 'मगर' पिछान । 'कल्पवृक्ष' शीतलपद मान ॥
श्रीश्रियांसपद 'गेंडा' होय । वासुपूज्यके 'भैंसा' जोय ॥ ३ ॥
विमलनाथपद 'शूकर' मान । अनंतनाथके 'सेही' जान ॥
धर्मनाथके 'वज्र' कहाय । शांतिनाथपद 'हिरन' लहाय ॥ ४ ॥
कुंथुनाथके पद 'अज' चीन । अरजिनके पद चिह्न जु 'मीन' ॥
मल्लिनाथ पद 'कलश' कहा । मुनिसुव्रतके 'कछुआ' लहा ॥५॥
'लालकमल' नमिजिनके जोय । नेमिनाथ पद 'संख' जु जोय ॥
पार्श्वनाथके 'सर्प' जु कहा । वर्द्धमानपद 'सिंह' [illegible] लहा ॥६॥

१६६ संक्षिप्त सूतक विधि।

सूतकमें देव शास्त्र गुरुका पूजन प्रक्षालादिक करना, तथा मंदिरजीकी वस्त्रादिको स्पर्शन करना नहिं चाहिये। सूतकका समय पूर्ण हुये बाद पूजनादि पात्रदानादि करना चाहिये।

१—जन्मका सूतक दश दिन तक माना जाता है।

२—यदि स्त्रीका गर्भपात (पांचवें छठे महीनेमें) हो तो जितने महीनेका पात हो उतने दिनका सूतक माना जाता है।

३—प्रसूति स्त्रीको ४५ दिनका सूतक होता है कहीं कहीं चालीस दिनका माना जाता है। प्रसूति स्थान एक मास तक अशुद्ध है।

४—रजस्वला स्त्री चौथे दिन पतिके भोजनादिकके लिये शुद्ध होती है प देवपूजन, पात्रदानके लिये पांचवें दिन शुद्ध होती है। व्यभिचारिणी स्त्रीके सद सूतक रहता है।

५—मृत्युका सूतक तीन पीढ़ी तक १२ दिनका माना जाता है। चौथी पी छह दिनका, पांचवीं छठी पीढ़ी तक चार दिनका, सातवीं पीढ़ीमें तीन, आठवीं मे एक दिन रात, नवमी पीढ़ीमें स्नानमात्रसे शुद्धता होजाती है।

६—जन्म तथा मृत्युका सूतक गोत्रके मनुष्यको पांच दिनका होता है। दिनके बालककी मृत्युका एकदिनका और आठ वर्षके बालककी मृत्युका तीन दिनका माना जाता है। इसके आगे १२ दिनका।

७—अपने कुलके किसी गृहस्थगोत्रका संन्यास मरण, या किसी कुटुम्बीका ग्राममें मरण होजाय तो एक दिनका सूतक माना जाता है।

८—यदि अपने कुलका कोई देशान्तरमें मरण करे और १२ दिन पहले ख सुने तो शेष दिनोंका ही सूतक मानना चाहिये। यदि १२ दिन पूर्ण होगये हों स्नानमात्र सूतक जानो।

९—गौ, भैंस, घोड़ी आदि पशु अपने घरमें जने तो एक दिनका सूतक औ घरके बाहर जने तो सूतक नहिं होता। दासी दास तथा पुत्रीके घरमें प्रसूति होय त एक दिन, मरण हो तो तीन दिनका सूतक होता है। यदि घरसे बाहर हो तो सूत नहीं। जो कोई अपनेको अग्नि आदिकमें जलाकर या विष खाकरके आत्मघात करे तो छह महीने तकका सूतक होता है। इसीप्रकार और भी विचार है सो आदिपुराणसे जानना।

१०—बच्चा हुये बाद भैंसका दूध १५ दिन तक, गायका दूध १० दिन तक, बकरीका ८ दिन तक अभक्ष्य (अशुद्ध) होता है। देशभेदसे सूतक विधानमें कुछ न्यूनाधिक भी होता है परन्तु शास्त्रकी पद्धति मिलाकर ही सूतक मानना चाहिये।

• समाप्त •